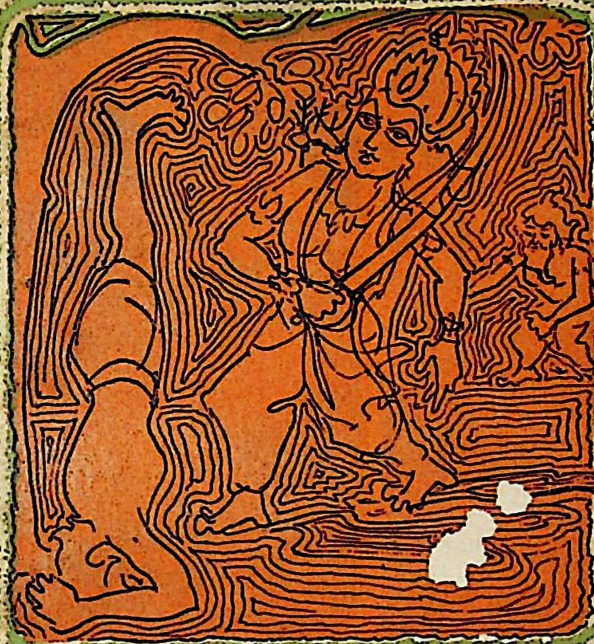


रामायण रहस्य

योगी मनोहर

पुरूषोत्तम निरंजनआप्पा
सुरेवार
टाईप II / बि. न. १८
खोली - ४१४
आर. सी. एफ. टाउनशीप
चेंबूर, मुंबई - ४०००७
प. पू. जगद्गुरू महाराज यांचे चरणी
अर्पण १६/४/१९८३



रामायण-रहस्य

(हिन्दी)

रामायण इतिहास का विलक्षण क्रान्ति-दर्शन

लेखक

योगी मनोहर

वैदिक विश्व प्रकाशन

तुलसीबाग मार्ग; नागपुर-४४०००२

☐ प्रकाशक :

वैदिक विश्व प्रकाशन
त्र्यम्बक हरकरे
तथा
दत्ता हरकरे
तुलसीबाग मार्ग,
नागपुर–४४०००२

☐ प्रथमावृत्ति शकाब्दी १८९९
द्वितीयावृत्ति शकाब्दी १९०३

☐ प्रतियाँ : तीन हजार

☐ मूल्य : तीस रुपये

☐ मुद्रक :
तु० ना० चौधरी, साम्य योग मुद्रणालय, मगनवाड़ी, वर्धा के लिए
श्रीकृष्ण मुद्रणालय, दारानगर, वाराणसी से मुद्रित

अनुक्रम

प्रकाशक का प्रकटन

मूल मराठी 'रामायण रहस्य' पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। परन्तु यह अनुवाद मराठी 'रामायण रहस्य' के लेखक योगी मनोहरजी ने स्वयं किया है। अल्पकाल में रामायण रहस्य का द्वितीय संस्करण होना इस पुस्तक की लोक प्रियता दिखाती है। विशेषतः बुद्धिमान और वैज्ञानिक ढंग से विचार करने वाले जनों में यह पुस्तक विशेष प्रिय हुई है। सभी रामायणों का मूल आधार संस्कृत में लिखा हुआ महर्षि वाल्मीकि की रामायण है, यह सब जानते हैं। वाल्मीकि लिखित रामायण एवं अन्य लेखकों द्वारा सम्पादित की हुई रामायण में बहुत अन्तर पाया जाता है। अन्य रामायण-लेखकों ने मूल रामायण को तोड़-मरोड़कर ऐसी अन्य कथाएँ लिखी हैं जिनका आशय मूल वाल्मीकि रामायण से एकदम भिन्न है। इस यत्न से रामायण की आत्मा ही विभिन्नता लिये हुए दिखाई देती है। उत्तर भारत में तुलसी रामायण जैसा प्रिय ग्रन्थ नहीं है। परन्तु वह लोकप्रिय ग्रन्थ भी मूल रामायण की छवी जनता के सन्मुख रखने में असमर्थ है, यह कथन करने में धृष्टता अवश्य लगेगी, परन्तु यह सत्य है। वाल्मीकि रामायण ग्रन्थ लिखने के पश्चात् प्रसिद्ध रामायण अनुवाद ग्रन्थों में से एक भी ग्रन्थ में मूल वाल्मीकि रामायण का सत्य आशय नहीं आया है, यह कहना अनुचित नहीं होगा।

वाल्मीकि ऋषि ने अपना रामायण ग्रन्थ लिखने के पश्चात् उसका सत्य-आशय और रहस्य जनता के सन्मुख प्रस्तुत करनेवाले महान पुरुष योगी मनोहरजी हैं, इसमें हमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार सुयोग्य रामायण का रहस्य बताने की चेष्टा अन्य किसी के द्वारा हुई हो, यह दिखाई नहीं देती है और यदि हो तो भी वह केवल तर्क-विलास था, प्रत्यक्ष योगानुभव की बैठक इसमें नहीं थी। योगी मनोहरजी स्वतः उच्च श्रेणी के योगसाधक होने के कारण स्वतः के गहन योगानुभवों को लेकर ही उन्हें रामायण में गहन गूढ़ रहस्य का आकलन किया जिसके द्वारा वे रामायण इतिहास पर बिलकुल नया प्रकाश डाल सके। उनका रामायण का रहस्य रामायण इतिहास में एकदम क्रान्तिकारक एवं पुरानी कल्पनाओं से संस्कारित जनों को विलक्षण धक्कादायक लग सकता है। रामायण ग्रन्थ केवल इतिहास नहीं वरन् हर एक मानव को उसे अपने प्रत्यक्ष जीवन में लाने योग्य एक आध्यात्मिक आदर्श है,

यह योगीजी का आग्रह हमें यथार्थ लगता है। इसलिए केवल भारत के ही नहीं वरन् सारे संसार के मानव इस ग्रन्थ द्वारा आदर्श जीवन की ओर अग्रसर हो सकते हैं, यह योगीजी का आशावाद भी यथार्थ है।

योगी मनोहरजी का यह ग्रन्थ संसार की सारी भाषाओं में अनुवादित हो और इसमें निहित ज्ञान सर्वजन सुलभ हो, यह हमारे जैसा सब विचारवान जनों को लगेगा, ऐसा विश्वास है। रामायण पर बहुत सारी पुस्तकें लिखी गयी हैं परन्तु उसका सच्चा अन्तरंग योगीजी की प्रस्तुत पुस्तक में ही उद्घाटित किया गया है। यह निःसन्देह ! इसी पृष्ठभूमि पर योगी मनोहर जी लघु महाभारत, गीता, उपनिषदादि वैदिक जीवन का सत्य-उद्घाटन करने वाले ग्रंथों का सत्य-परिचय करा देने का सोच रहे हैं। पुस्तक में उपयोगित सब चित्र और ब्लाक योगीजी ने स्वयं अंकित किये हैं। योगीजी उत्तम गायक, चित्रकार, लेखक, कवि, वक्ता और कुशल संगठक हैं, यह उनके विविध जीवन से दिखाई देता है। उनकी अनेक पुस्तकों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि वे एक उच्च अभिरुचि सम्पन्न साहित्यिक एवं अन्वेषक हैं। प्रस्तुत पुस्तक का उनका उद्घाटन बड़े-से-बड़े विद्वान एवं अन्वेषकों को भी चकित करने वाला है, यह प्रस्तुत पुस्तक पढ़ कर सब मान्य करेंगे; यह विश्वास है। इतना सब होकर भी योगी मनोहरजी अपने महान योग-बुद्धि का सर्वश्रेय योगीसन्त ज्ञानेश्वर महाराज को ही देते हैं, यह उनके नम्र और उदार वृत्ति का परिचायक है।

'रामायण रहस्य' का अंग्रेजी अनुवाद हो, ऐसी इच्छा अनेकों ने प्रकट की है जिससे कि संसार के सब आध्यात्मिक जन उससे लाभ लेकर स्वयं का आदर्श-जीवन बना सकें। योगीजी यह काम स्वयं करने का सोच रहे हैं परन्तु उनके भारत में कार्य के लिए सतत भ्रमण से उन्हें यथोचित समय मिलेगा तभी सम्भव होगा। आशा है, प्रस्तुत 'रामायण रहस्य' का अंग्रेजी अवतरण शीघ्र हो। रामायण और रामजीवन संसार के अखिल मानवों का आदर्श ग्रंथ है, यह योगीजी का आशावाद शीघ्र सफल होगा, हम ऐसी आशा करते हैं।

प्रकाशक
त्र्यम्बक हरकरे
दत्ता हरकरे
तुलसीबाग मार्ग, नागपुर—२
(भारत)

रामपत्र

एक समय ऐसा था कि स्वयं लेखक ही रामायण-महाभारत ये भारत के ऐतिहासिक प्राचीन ग्रन्थ हैं, यह मानता था और उस अनुसार अपना मत सिद्ध करने के लिए लेखक ने अपनी वैज्ञानिक बुद्धि लगा कर बहुत लेख लिखे थे। परन्तु उस समय लेखक को योगाभ्यास द्वारा प्राप्त जटिल अनुभव एवं योगबुद्धि नहीं थी। इसलिए परम्परागत विचारों का प्रभाव अधिक रहने से रामायण-महाभारत में कुछ अन्य आध्यात्मिक रहस्य रह सकते हैं, यह लेखक सोच नहीं सकता था और परम्परागत विचारों को लेकर लेखन करने में लेखक स्वयं को धन्य मानता था। ईसा शताब्दी १९२५ के १२ नवम्बर में 'यंग इंडिया' नामक वृत्तपत्र में गांधीजी का महाभारत पर मत-प्रदर्शन करने वाला एक लेख आया था। उस समय उक्त लेख समझ में आ सके इस उम्र का लेखक अवश्य था, परन्तु उस समय के अन्य भारतीय शास्त्री पंडित जैसा लेखक महात्मा गांधीजी का सत्य-कथन नहीं समझ सका। आखिर किशोर क्या समझ सकता है ?

बिहार का अनुभव :

सार्वजनिक कार्य करने के लिए लेखक कई साल बिहार, बंगाल, आसाम, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में रहा था। बिहार प्रदेश के एक गाँव की बात है। उस गाँव में एक महान योगी रहा करते थे। लेखक उस समय २४-२५ साल का और शिक्षा की दृष्टि से तीन विषयों में पदवी प्राप्त था, याने विचार की दृष्टि से कुछ कम समझ का नहीं था। परन्तु रामायण-महाभारत समझने के लिए आवश्यक साधना प्राप्त ऐसी बुद्धि नहीं होने के कारण एक महान योगी द्वारा रामायण का महान ज्ञान बताने के बाद भी लेखक उस बाबत कोरा ही रहा, और इसका कारण था उसके मन पर परम्परागत विचारों की जबरदस्त गिरफ्त ! एक दिन लेखक उस महान योगी के दर्शन हेतु गया था जैसा कि वह नित्य जाता था। योगी ने बात करते-करते एक प्रश्न पूछा, "भैया, भगवान राम ने शिव धनुष के कितने टुकड़े बनाये ?" लेखक एकदम उत्तर नहीं दे सका। कारण इतना सरल साधारण प्रश्न एक श्रेष्ठ योगी कैसे करेगा, यह आशंका लेखक के मन में थी। लेखक के उत्तर की

राह न देखते हुए योगीजी कहने लगे, "अच्छा मेरे पीछे आ जाइये और मेरूपृष्ठ पर ऊपर से नीचे तक अपनी उंगलियाँ घुसेड़ने की चेष्टा कीजिये।" मेरूपृष्ठ मजबूत हड्डियों का बना हुआ दुर्ग है फिर उसमें उंगलियाँ कैसे जायेंगी ? परन्तु आशंका करने के लिए समय नहीं था। जैसा बताया वैसा किया गया। आश्चर्य यह कि उनके मेरूपृष्ठ में लेखक की उंगलियाँ दो स्थान पर आर-पार चली गयीं। यह मात्र भ्रम नहीं था वरन् एक प्रत्यक्ष अनुभव था !

"भैया कितने टुकड़े हुए ?" योगी प्रश्न करते रहे। जब कि दो स्थान में उंगलियाँ घुसेड़ी गयीं तो उत्तर सीधा ही था, "तीन टुकड़े हुए।" "बस इतने ही टुकड़े भगवान राम ने शिव धनुष के बनाये थे?" योगी ज्ञान देते रहे। परन्तु आलसी के ऊपर गंगा आने पर भी वह कोरा ही रहता है उसी प्रकार सुयोग्य ज्ञान के अभाव से लेखक योगीजी की तरफ प्रश्नार्थक मुद्रा से केवल ताकता ही रहा। उस सार्वजनिक कार्य से वापस लौटने के पश्चात और व्यावहारिक परम्परा से छुटकारा पाने के बाद तथा योग-मार्ग में एक गहन अनुभव प्राप्त करने के बाद लेखक को योगीजी के उस कथन ज्ञान का अनुभव कई सालों के बाद हुआ। बताना अथवा सुनना एक बात है और उस अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होना दूसरी बात है। ज्ञान के लिए प्रत्यक्ष अनुभूति की आवश्यकता रहती है।

और दो समान अनुभव :

महाराष्ट्र में साईबाबा नाम के एक महान योगी हो गये हैं। उनके जीवन चरित्र में एक कथा आयी है जो कि उनके एक भक्त ने लेखक को बताई थी। कथा सुनने पर वह योगशास्त्र के आधार पर थी, यह लेखक का मत हुआ। कथा इस प्रकार है। उस समय साईबाबा पूना के पास शिरडी नामक गाँव में रहा करते थे। एक दिन की बात है। एक पठान जो कि साईबाबा का शिष्य था, साईबाबा के दर्शन के लिए शिरडी गाँव गया था। मध्यान्ह का समय था। भोजन के पश्चात् साईबाबा नित्य जैसे उनके लिए बनायी हुई एक वास्तु में आराम के लिए जाते थे। वास्तु का नाम था द्वारकामाई मठ। नित्य जैसे साईबाबा भोजन के पश्चात् उस द्वारकामाई के मठ में आराम के हेतु गये थे। द्वारकामाई के मठ में जाने के पश्चात् साईबाबा से मिलने के लिए कोई न जाय, इस प्रकार का प्रतिबन्ध था और उस नियम के अनुसार सब भक्त जन वर्तन करते थे। साईबाबा के आराम के समय वह पठान भक्त

आया था और बिना साई का दर्शन लिए वह ठहरना नहीं चाहता था। लोगों ने उसे बहुत समझाया परन्तु वह पठान किसी की बात मानने के लिए तैयार नहीं था। वह द्वारकामाई के मठ की ओर गया और साईबाबा का दर्शन करने के लिए मठ का द्वार खोलता है और देखता है अन्दर, "तौबा, तौबा" चिल्लाते हुए वह पठान पीछे घूमकर दौड़ने लगा। "अरे क्या हुआ ?" सब लोग पूछने लगे। "या अल्ला, बाबा का सिर और हाथ-पांव किसी ने काटकर उनके धड़ से अलग कर दिया है। अब कैसा होगा ?" पठान घबड़ाकर बोलने लगा। सब लोग रोते धोते बाबा की ओर दौड़कर आये और द्वार खोलकर देखते हैं तो बाबा अपने आसन पर शान्त मुद्रा में बैठे हैं। पठान शर्म के मारे पानी पानी हो गया था, परन्तु उसकी देखी हुई बात बिलकुल सत्य थी इसलिए वह उतने ही जोरों से कहता था। सब भक्तगण साईबाबा की लीला का श्रद्धाभाव से स्मरण कर हर्षयुक्त अन्तःकरण से अपने अपने स्थान लौटे। सब कह रहे थे, "धन्य बाबा की लीला !" सामान्य जनों को साईबाबा के उस अतिन्द्रीय योगावस्था का क्या ज्ञान रहेगा ? वे बाबा की लीला मानकर एक प्रकार की धन्यता में स्वयं को खो बैठे थे। इस प्रकार की अवस्था को हठयोग में अवयव छेदन, ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार की अवयव छेदन अवस्था महान योगी अपने शरीर के किसी भी अवयव में कर सकता है। साईबाबा ने अवयव छेदन की अवस्था अपने हाथ, पांव और सिर से की थी इसलिए पठान को बाबा के हाथ, पांव और गर्दन धड़ से अलग किये हुए दिखाई दिये थे।

इसी प्रकार एक आश्चर्यजनक अनुभव सातारा के एक योगसाधक श्री वसन्तरावजी को आया था। प्रवचन के लिए लेखक सातारा गया था। उस समय उनसे लेखक का परिचय हुआ था। श्री वसन्तरावजी की योगमार्ग में अच्छी प्रगति थी। लेखक ने उन्हें अपनी लिखित मराठी 'रामायण रहस्य' पुस्तक पढ़ने के लिए दी थी। उस पुस्तक में राम द्वारा शिवधनुषभंग याने योगसाधक की मेरुदण्ड प्रक्रिया है, ऐसा लिखा था। लेखक के उपर्युक्त प्रतिपादन पर श्री वसन्तरावजी असहमत थे। कारण इस प्रकार मत प्रतिपादन कर लेखक परम्परागत श्रद्धा को ही नष्ट करना चाहता है, यह उनका स्पष्ट मत था। परन्तु श्री वसन्तरावजी की योगसाधना चालू ही थी। योग साधनाओं में उच्च साधनाएं किस प्रकार करनी चाहिए, इसका प्रत्यक्ष ज्ञान लेखक ने उन्हें दिया था और उस अनुसार वे अपनी योग साधना प्रतिदिन मध्य रात्रि में करते थे। एक साल बाद उनका लेखक को पत्र आया कि

उनके मेरुदण्ड में दो स्थान पर अति वेदना होती है। लेखक ने उन्हें तब भी अपनी साधना चालू रखने के लिए कहा था। फिर एक दिन श्री वसन्तरावजी का पत्र आया कि उनके मेरुदण्ड के तीन टुकड़े बन गये। वे बहुत घबड़ा गये थे। लेखक उन्हें धीरज रखने के लिए कहा और कुछ दिन बाद उनकी मेरुपृष्ठ की वेदना नष्ट होकर मेरुदण्ड भी पूर्व जैसा एक संघ लगने लगा।

उस समय से श्री वसन्तरावजी मानने लगे कि भगवान राम ने शिवधनुष के तीन टुकड़े बनाये थे और वह शिवधनुष और कहीं न होकर योगसाधक के मेरुदण्ड में ही है। अब श्री वसन्तरावजी मानने लगे कि रामायण कुछ जड़ ऐतिहासिक घटना नहीं, वरन् योगसाधना प्राप्त अनेकानेक जटिल साधना एवं अनुभवों की कथारूप संहिता है। बिना अनुभव ज्ञान नहीं, यह सत्य है। राम द्वारा किया हुआ शिवधनुष भंग याने प्रत्यक्ष शिव के धनुष का भंग न होकर अपने मेरुदण्ड की साधना द्वारा प्राप्त अवयव छेदन की प्रक्रिया एवं अनुभूति है। इस प्रकार की जटिल प्रक्रिया जीवात्मा के लिए कल्याणप्रद याने शिवप्रद रहती है इसलिए रामायणकार उसे शिवधनुष कहते हैं। इस प्रकार के मेरुदण्डरूप शिवधनुष का भंग कर साधक रूप राम स्वानुभूति रूप सीता से स्वयंवर द्वारा विवाह करते हैं। अपनी कायावृत्ति सीता एवं विवेकरूप लक्ष्मण को लेकर रामरूप साधक चौदह साल दण्डकारण्य में तपस्या करते हैं। दण्डकारण्य याने पुनः अपना मेरुदण्ड ही है जिसके बारे में अधिक स्पष्टीकरण आगे चलकर आनेवाला है। मेरुदण्ड को अपने नियंत्रण में लाकर याने शिवधनुष भंग कर साधक को चौदह वर्ष मेरुदण्ड की याने दण्डकारण्य में तपस्या करनी पड़ती है, तब कहीं साधक भगवान राम बन सकता है।

इसी दण्डकारण्य में स्थित पंच प्राण साधना स्वरूप पंचवटी में राम-सीता सह वर्तमान रहते हैं जहाँ से रावणस्वरूप ब्रह्मज्ञान अवस्था द्वारा सीता का हरण होता है। उसके पूर्व राम लक्ष्मण जप द्वारा प्राप्त अहंकार रूप शूर्पणखा के नाक कान छेदन करते हैं जिस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए रावण मायावी मारिच को चञ्चल काञ्चन लक्ष्मी का रूप लेकर सीता-वृत्ति को बहलाने के लिए कहता है। सीता के आग्रह के कारण राम उस काञ्चन मृग की हत्या करते हैं। मायावी मृग राम जैसे चिल्लाकर सीतावृत्ति को भ्रम पैदा करता है और विवेकरूप लक्ष्मण भैया को सीता को अकेली छोड़कर राम के पीछे दौड़ना पड़ता है। इस अवसर का लाभ उठाकर रावणवृत्ति संन्यासी का स्वाँग कर सीतावृत्ति का माया केन्द्र रूप लंका में हरण करती है। सीता रूप स्वानुभूतियों का पुनर्सहवास या प्राप्ति न होने से रामसाधक सीता के

लिए दिनरात शोक करता है। इस प्रकार राम सीता के लिए किसी गँवार जैसे शोक न करे, यह उपदेश विवेकरूप लक्ष्मण साधकरूप राम को सदा करता है परन्तु राम सीता-शोक में सदा व्याकुल रहते हैं।

रावण-वृत्ति द्वारा हरण होते समय सीता वृत्ति अपने वृत्ति रूप अलंकार मार्ग में छोड़ती है जिन्हें देख कर राम लक्ष्मण सीता का शोध करते हुए पम्पा सरोवर पर पहुँचते हैं जहाँ पर उनकी उच्च तत्वानुभूति रूप वायुसुत हनुमान द्वारा उनका सुग्रीव साधना अवस्था से परिचय होता है। परिचय के फलस्वरूप राम और सुग्रीव में यह संधि होती है कि राम वाली वध कर सुग्रीव को पुनः किष्किधा का राजा बनायें और उपकार में सुग्रीव राम-पत्नी सीता की खोज कर अपनी वानर सेना द्वारा रावण का पारिपत्य कर सीता को राम से पुर्नमिलन करवा दें। उच्च वायुतत्व साधना रूप वायुसुत हनुमान द्वारा सीता का शोध होता है। काञ्चन, कीर्ति और कामिनी माया रूप लंका में जाकर हनुमान सीता का शोध करते हैं और मायारूप लंका का दहन कर पुनः राम साधक से मिलते हैं। ब्रह्ममाया स्वरूप रावण से सीता का छुटकारा विना वृत्ति युद्ध हुए नहीं हो सकता, यह साधक रूप राम जानते हैं। युद्ध की तैयारियाँ हुई। उच्च वायुतत्व रूप बानर राम सेना में थे तो राक्षसी वृत्ति रूप राक्षस रावण सेना में थे। वृत्ति युद्ध छिड़ गया।

इस वृत्ति रूप युद्ध में रावण भ्राता कुम्भकर्ण अवतरित होता है। हमने कुम्भ जैसा वहुत कुछ सुना है, अव हमने पूर्ण ब्रह्म जाना है, याने हम ब्राह्मण बन गये हैं, इस प्रकार की अहं वृत्ति रखने वाले साधक की कुम्भकर्ण अवस्था युद्ध में राम लक्ष्मण द्वारा मारी जाती है। कुम्भकर्ण के पश्चात रामवृत्ति से युद्ध करने के लिए रावण पुत्र इन्द्रजीत आता है। इन्द्रजीत को बहुत शूरवीर और पराक्रमी वताया गया है। इन्द्रजीत अदृश्य रह कर भी युद्ध करता था। इन्द्रजीत का वध करने के लिए राम लक्ष्मण को वहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। कारण भी उसी प्रकार महत्वपूर्ण था। 'अपनी इन्द्रियों को अपने काबू में रख कर हमने अपनी वृत्तियों को जीत लिया है' इस प्रकार की अयोग्य अतएव राक्षसी वृत्तियों को रामायणकार इन्द्रजीत कहते हैं। इन्द्रजीत अदृश्य रह कर भी युद्ध कर सकता था। कई वार हमारी नीच राक्षसी वृत्तियाँ हमें अपने अन्दर रहने के वाद भी दिखाई नहीं देती हैं, यही इन्द्रजीत का अदृश्य रह कर युद्ध करना है। इसलिए इन्द्रजीत से युद्ध करने के लिए राम लक्ष्मण बहुत हैरान हो गये थे। एक बार तो विवेकरूप लक्ष्मण

भी इन्द्रजीत द्वारा बुरी तरह आहत किया गया। लक्ष्मण को जिला कर लक्ष्मण द्वारा ही राम इन्द्रजीत का वध कराते हैं।

अब आखिरी कथित ब्रह्मवृत्ति रूप रावण अवस्था राम से युद्ध करने युद्ध-भूमि पर आती है। घमासान युद्ध होता है। रावण के दशमुख काटे जाते हैं फिर भी रावण नहीं मरता। ठीक ही तो है। दशमुख याने दशग्रन्थों की जानकारी का अहंकार नष्ट हो गया था फिर भी अहंकार का मूल स्थान हृदय अविद्ध था। राम भगवान ने रावण के उसी अज्ञान-केन्द्र पर अपना ब्रह्म पर मारे जाने वाला शर चलाया। हृदय ब्रह्मज्ञान रूप शर से विद्ध हुआ और रावण युद्ध भूमि पर मर पड़ा। अब रावणवृत्ति आनन्दमय रामरूप बन जाती है। राम और रावण एक हो जाते हैं। परन्तु उस एकता का अग्निदिव्य होना बाकी रह जाता है। सीता को अग्निदिव्य करना पड़ता है और बाद में राम सीता का पुर्नमिलन होता है। परन्तु वह सीता पहले की तपस्यालीन और वल्कल पहननेवाली नहीं थी। मायानगरी लंका में रह कर उस पर माया के बीज का अन्तर्गत परिणाम था। राम सीता को लेकर फिर अयोध्या में जाकर राज्यासीन और सुखासीन बनते हैं। भरतरूप वृत्ति अब अयोध्या राज से हट जाती है। अब अयोध्या के राजा केवल आनन्द याने राम पानेवाला साधक बन जाता है। आनन्द याने राम किसी भी मनोहारी घटनाओं से पाया जाता है। साधक कायावृत्ति सीता फिर सुखासीन बनती है। राम सीता संभोग द्वारा सीतावृत्ति में राम का बीज गर्भ रह जाता है।

परंतु रामराज्य में एक भद्र नामक राम साधक का भद्र याने कल्याण चाहने वाला व्यक्ति था। उससे पूछने पर वह राम को सत्य बता देता है और वह यह कि अयोध्या निवासी राम ने संसार सागर पार कर एवं माया बीज लंका को उध्वस्त करा कर अपनी स्वानुभूति सीता को ब्रह्म जानने वाले अहंकार वृत्तिरूप रावण को मार कर छुड़ाया है इसलिए राम की बहुत प्रशंसा करते हैं। परन्तु इतने दिन रावण के अधीन रहने वाली सीता को बगैर जाने बूझे राम ने अपने घर लाया, यह बात अयोध्यानिवासी अच्छी नहीं मानते हैं। राम ने भद्र की कल्याणकारक बात एकदम मान ली और बिना जाँच किये ही सीता को पुनश्च वन में तपस्या करने के लिए भेजने का निश्चय किया। विवेकरूप लक्ष्मण भ्राता को बुला कर सीता-वृत्ति को पुनः वन में भेजने का आदेश दिया गया। लक्ष्मणजी तुरन्त आये और रामाज्ञा का पालन करने के लिए उन्होंने भाभी सीता को पुनः संसाररूप

रथ पर सवार होने के लिए कहा। रथ तेजी से दौड़ते हुए जा रहा था। कहाँ, किधर ? बेचारी सीता कुछ नहीं जानती थी।

सीताकाया को तपस्या करने के लिए घने जंगल में छोड़ा गया ! परन्तु इतने साल भोग में रत रहनेवाली सीता अब पुनश्च वन में आने के पश्चात घबड़ा गयीं। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ? वे रोती धोती जा रही थी ! उसके भाग्य से उसका आर्त स्वर ऋषि वाल्मीकि ने सुना। वे अपने आश्रम में उसे ले गये। वाल्मीकि याने चीटिओं की बोम्वी अथवा बहुत ऊँची बढ़ी हुई घास। जो साधक इतनी घोर तपस्या करे कि उसकी चारों ओर इस प्रकार ऊँची घास और बोम्बी यादि बढ़ जाय तो भी उसे उस बात का पता नहीं है, क्या उसे खुद वाल्मीकि नहीं कहा जायेगा ? ऐसे वाल्मीकि साधक की सीता काया को अपने वाल्मीकि आश्रम में ले जाते हैं। सीता का बनवास याने तपस्या फिर शुरू हो जाती है। अब सीता के उदर में रामवृत्ति के बीज गर्भ धारण किये गये थे। गर्भ पूर्णमात्रा में याने नवम मास वर्धित हुए और एक सुअवसर पर सीता ने कुश और लव नामक दो बालकों को जन्म दिया। कुश याने घास का आसन। बिना आसन लगाये ध्यान और समाधि का अभ्यास नहीं हो सकता है। इसलिए सीता का ज्येष्ठ जुड़वा पुत्र कुश था और बाद में लव नामक पुत्र हुआ। लव याने क्षण ! अब रामरूप साधक के सीतारूप काया तपस्या के कारण उसका ध्यान गहराई में जाकर उसी क्षण में समाधि लग जाती थी। इस प्रकार साधक राम के दो पुत्र हुए थे— कुश और लव को ऋषि वाल्मीकिजी ने राम स्वरूप बनाने के लिए सब आध्यात्मिक अस्त्र-शस्त्र सिखाये। वाल्मीकिजी ने राम जीवन पर अपना अतुल्य ग्रंथ रामायण लिखा और उसे कुश लव को कण्ठस्थ कराया। बालक रामायण अच्छा गाते थे।

इधर सीता का त्याग करने पर राम अस्वस्थ थे। उन्हें दिन-रात सीता के बिना चैन नहीं थी। राम का मन अत्यन्त अस्वस्थ था। राम के मन को स्वस्थता याने चैन मिले इसलिये गुरु वशिष्ठजी ने राम को अश्वमेध यज्ञ करने के लिए कहा। अब अश्वमेध यज्ञ करा कर याने एक गरीब जानवर का गला काट कर राम को मनस्वास्थ्य कैसा मिलने वाला था ? परन्तु हाँ, बात सही है। वह क्या है वह आगे चल कर देखेंगे। परन्तु अश्वमेध यज्ञ के समय अन्य स्थान के कवि, भाट, नट, गायकों जैसे कुश लव भी यज्ञ स्थान पर रामायण गाने के लिए वाल्मीकि द्वारा भेजे गये। बालकों का सुस्वर रामायण सुन कर सारी अयोध्या के लोग और राम भी बहुत प्रसन्न हुए।

बाद में पता चला कि वे बालक सीता के जाये हुए हैं। अयोध्यावासियों के आग्रह से सीता को पुनः सभा में बुलाया गया और सर्वजनों के सन्मुख स्वयं पूर्ण निर्दोष सिद्ध करने को कहा गया। सीता आईं और यदि वह पूर्ण अकलंकित हों तो पृथ्वी माता उन्हें पुनः अपनी गोद में निगल ले, यह कहने लगीं। पृथ्वी में दरार उत्पन्न हुई, सर्वासमक्ष सीता माता पृथ्वी में समा गईं।

अब राम से न रहा गया। राम लक्ष्मण को कठोर वचन बोलते हैं। लक्ष्मण सरयू पर जाकर समाधि में मग्न हो जाते हैं और अपने प्राण ब्रह्माण्ड में खींच कर ब्रह्मलीन हो जाते हैं। विवेक चला जाने से अब जीवन में क्या रहा? राम भी सरयू पर जाकर स्वयं को सरयू में विसर्जित करते हैं और उनके साथ सारी अयोध्या नगरी भी! ब्रह्मरूप जाननेवाली सरयू। "प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते।' आत्मा परमात्मा में मिल जाती है, जीव शिवमय बन जाता है। रामायण समाप्त होती है।

श्रेष्ठ साधकों के मत

लेखक अकेला ही रामायण महाभारत के बारे में यह मत रखता है ऐसा नहीं, वरन् योगीराज वासुदेवानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी एवं पूज्य गोलवलकर गुरुजी भी रामायण महाभारत के बारे में इस प्रकार मत रखते थे, यह उनके लेखों द्वारा स्पष्ट हुआ। परन्तु हमारे विद्वान इतिहासकार शास्त्री और पंडितों ने इनके मतों की ओर बिलकुल ध्यान न देकर अनुल्लेख नीति द्वारा उनके मतों को नष्ट करने का प्रयास किया। और कारण भी वैसा ही था। रामायण महाभारत ग्रंथ योगसाधना द्वारा प्राप्त दिव्य अनुभूतियों के वर्णनसंहिता ग्रंथ होने से इस प्रकार की दिव्य अनुभूतियों की कल्पना वह शास्त्री, पण्डित, विद्वान और इतिहासकार कैसे कर सकते थे? वह समझने के लिए इस प्रकार दिव्यानुभूतियों की प्रत्यक्ष अनुभूति रखना आवश्यक है। यदि अनुभूति नहीं है तो उनमें से कौन-से भी प्रमेय निकाल कर सिद्धान्त भी प्रस्थापित किये जा सकते हैं। परन्तु उस प्रकार निराधार तर्कविलास करने से उसका परिणाम भारतीय समाज पर किस प्रकार होगा, इसका विचार उन्होंने बिलकुल नहीं किया, यह बहुत खेद के साथ कहना पड़ता है। राम बाहर से आया आर्य था, उसने एतद्देशीय अनार्य रावण के राज्य पर हमला कर उसे मार डाला। इस प्रकार के प्रचार का परिणाम

हुआ कि तमिलनाडु आदि प्रदेश के बुद्धिमान लोग भी स्वतः को रावण वंश के मान कर राम की प्रतिमा-पुतलों का दहन करते हैं और परिणामतः भारतीय संघ राज्य से बाहर निकल कर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का सोचते हैं।

कहा जाता है कि राम ने शूद्र शम्बुक का वध किया, कारण कि उसने अपने शूद्र धर्म के अनुसार उच्च वर्गीय भारतीयों की सेवा न कर उच्च वर्गीयों जैसी तपस्या की और वह भी ऊपर पाँव और नीचे शिर कर! शास्त्री पण्डित मानते हैं कि उस समय भारतीय समाज-रचना के अनुसार राम ने बिलकुल ठीक किया, तो विद्वान और इतिहासकार मानते हैं कि राम के जीवन में यह एक भूल मानी जानी चाहिए। नवबौद्ध और सुधारवादी जन तो यह कहते हैं कि उच्च वर्णियों ने हम शूद्र और एतद्देशीय अनार्यों पर कैसे-कैसे नृशंस अत्याचार किये हैं इसका एक सजीव उदाहरण याने राम का शूद्र शम्बुक का उसका दोष न रहते हुए गला काटना है। रामायण यदि प्रत्यक्ष इतिहास माना जाय तो शम्बुक वध, बाली वध, शूर्पणखा एवं ताटका वध जैसी रामजीवन को और उसके साथ वैदिक परम्परा को कलंकित करनेवाली घटनाओं का हम किस प्रकार समर्थन कर सकते हैं? सीता का कोई दोष न होते हुए सीता को अग्निदिव्य कराने लगना और भद्र के कथन पर विश्वास रख कर बिना जाँच किये एक निरपराध गर्भवती अबला पत्नी को वन में खदेड़ देना, यह बात आज-कल की विचारवान पत्नी महिलाओं के मन में घृणा पैदा करती है। गो-ब्राह्मण प्रतिपालक शिवाजी महाराज को माननेवाले लोग राम जैसे सरसहा ब्राह्मण पुरुष और महिलाओं की गर्दने काटते हुए देख कर प्रक्षुब्ध नहीं होते हैं, यह भगवान राम का भाग्य ही मानना चाहिए। रामायण-महाभारत को इतिहास माननेवाले जन उस प्रकार न माननेवालों पर अपनी सारी बुद्धि-शक्ति और समय पर शारीरिक शक्ति लगा कर किसी गीद्ध जैसे टूट पड़ते हैं और रामायण-महाभारत ऐतिहासिक ग्रंथ न होकर उन कवियों का कल्पना-विलास है, यह मानने वाले विद्वान ऊपरनिर्दिष्ट आर्तजनों की मूर्ख कल्पनाओं की ओर देख कर मन ही मन हँसते हैं। इस प्रकार की धुंधली से बाहर निकलने के लिए हमें योगीराज वासुदेवानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी तथा पूजनीय गोलवलकर गुरूजी के मन को देखना, जानना आवश्यक है।

योगीराज वासुदेवानन्द सरस्वती :

उन्नीसवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में एक अत्यन्त्य कर्मठ और दसग्रन्थी विद्वान ब्राह्मण योगी हो गये। वे दत्तोपासक और योगमार्गी थे। सारे

महाराष्ट्र में तथा मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश में उनको माननेवाले सहस्रावधि भक्तजन थे। रामायण के बारे में उनका मत देखिये—

दशेन्द्रियरथो देही राजा दशरथः स्मृतः।
कौसल्या तत्प्रिया बुद्धिः रामस्तत्रोद्भुतः परः॥ १॥

(१) दसेन्द्रीययुक्त शरीर रूप रथ का स्वामी राजा दशरथ हैं। उसकी कुशल बुद्धि उसकी प्रिय पत्नी कौसल्या हैं। परन्तु राम उन सबों से भिन्न जीवात्मा हैं।

वृत्वां सीतां स्वानुभूतिं सुखमास्तेऽथ दैवतः।
संसार विपिनं प्रापाहंकारो रावणाभिद्यः॥ २॥

(२) सीता यह साधक जीवात्मा राजस अनुभूति है। ऐसे स्वानुभूतिरूप सीतासह रामरूप साधक सुख से रहता है। संसार एक विपिन याने दण्डकारण्य है और उसमें रावणरूप अहंकार-वृत्ति प्रवेश करती है।

राजसः स्वानुभूतिं तां सीतां यत्नाज्जहार ह।
रामः परात्मापि ततः स्वानुभूतिं वियोगतः॥ ३॥

(३) साधना यत्न द्वारा प्राप्त राजस-वृत्ति याने सीता है। इस राजस-वृत्ति रूप सीता का ब्रह्मरूप रावण ने हरण किया। राम जीवात्मा परमात्मस्वरूप रह कर भी राजस-वृत्तिरूप सीता का हरण होने पर उसे सीता-वियोग के कारण अति दुःख होता है।

प्राप्तो दीनदशां दुःखि सुशोच विरहातुरः।
परिभ्रमन् हनुमतां विवेकेन च संगतः॥ ४॥

(४) बिरहातुर होकर भ्रमण करनेवाले राम से विवेक वृत्ति रूप हनुमान से भेंट हुई और सीता कहाँ है, यह राम ने उससे प्रश्न किया।

तेन सीता स्वानुभूति स्थितिवार्ता प्रकाशिता।
ततो वानरसह वृत्तिसैन्येन च हनुमता॥ ५॥

(५) साधक की अनेक वृत्तियाँ याने चञ्चल बानर हैं। इस प्रकार के वृत्तिरूप वानरों की सेना लेकर विवेकरूप हनुमान ने स्वानुभूति रूप सीता की खोज कर राम की स्थिति पर प्रकाश डाला।

सेतुं बध्वा सजलधौ साधनाश्मभित्कटैः।
ततो भवाब्धिमुउल्लंघ्य दीप ज्ञानाग्निना भृशम्॥६॥

(६) प्रपंचरूप सागर पर साधनारूप पत्थर डालकर हनुमान ने सेतु तैयार किया और उस साधना सेतु द्वारा सबों ने भवसागर पार किया। दिव्य प्रज्वलित ज्ञान से युक्त हनुमानादि सर्व लोग लंका पर धावा करते हैं।

सूक्ष्मे देहाख्य लंकांच दग्ध्वोपनिषद स्त्वतः ।
कामक्रोधादि रक्षांसि हत्वा वुध्दे सहस्त्रतः ॥ ७ ॥

(७) देह में वास्तव्य करनेवाली सूक्ष्म इच्छारूप लंका का उपनिषदरूप अग्नि द्वारा दहन कर हनुमान ने कामक्रोध रूप सहस्त्रावधि राक्षसों का अपनी चतुर बुद्धि द्वारा नाश किया ।

साध्विकाहंकारं विभीषण सहाय्यतस्ततः ।
कुम्भकर्णं तामसाहंकारं राजसमप्यथ ॥ ८ ॥

(८) सात्विक अहंकाररूप विभीषण की सहायता से राम ने तामस अहंकाररूप कुंभकर्ण और राजस अहंकाररूप रावणादियों का नाश किया ।

निहत्य रावणं स्वानुभूतिं सीतां प्रगृह्यच ।
रामः स्वरूप साम्राज्येऽभिषिक्तोऽरींर मत्तया ॥ ९ ॥

(९) इस प्रकार ब्रह्मरूप सात्विक अहंकारी रावण के चंगुल से स्वानुभूति रूप सीता को छुड़ाकर राम अपने वृत्तिरूप घर को वापस आते हैं और स्वरूप साम्राज्य रूप सिंहासन पर अभिषिक्त होते हैं, यह मेरा मत है ।

इससे योगीराज वासुदेवानन्द सरस्वतीजी का रामायण के बारे में क्या मत है, यह बात बुद्धिवानों के ध्यान में आ सकती है ।

महात्मा गांधी :

महात्मा गांधी एक जगत विख्यात महापुरुष हो गये हैं । कथित हिन्दुत्व-निष्ठों ने उनके मनों को विरोध दर्शाया होगा तो भी अब उन्हीं हिन्दुत्वनिष्ठ कहने वाले लोगों ने महात्मा गांधी का समाजवादी मत ग्रहण किया है इसलिए ऐसे लोगों को महात्मा गांधी का निम्न मत ग्रहण करने में अड़चन नहीं मालूम होनी चाहिए । महाभारत के बारे में गांधीजी ने अपना मत १२ नवम्बर १९२५ के 'यंग इंडिया' नामक पत्रिका में लिखा था । वे कहते हैं—

'Gita stands for non-violence and not for violences. The poet when writes is not conscious of all the interpretations his compositions is capable of. The truth is that he reaches the highest fights of his fancy is often not to be met with in his life. And who are Dhritrastra and yudhisthira and Arjun ? Who is Krishna ? Were they all historical characters . And does Gita describe them as such ? I regard Duryodhan

and his party as the baser impulses in man and Arjun and his party as the higher impulses. The field of battle is our own body. An eternal battle is going on between the two camps. The poet has vividly described it. Krishna is the Dweller within ever whispering in a pure heart. Like the watch the heart needs the winding of purity or the Dweller cease to speak'.

आशय यह है । 'गीता हिंसा के लिए नहीं वरन अहिंसा के लिए है । अपने काव्य का क्या आशय निकाला जा सकता है यह कल्पना अपना काव्य लिखते समय कवि को भी ऐसा नहीं दीखता है । काव्य का सौंदर्य इसमें है कि कवि की प्रतिभा को लांघकर वह पार चला जाता है ; काव्य लिखते समय कवि इतनी उच्च अवस्था में चला जाता है कि उसका प्रत्यय उसे उसके प्रत्यक्ष जीवन में नहीं आता है । घृतराष्ट्र, युधिष्ठिर और अर्जुन कौन हैं ? कृष्ण कौन हैं ? क्या वह सब ऐतिहासिक पुरुष हैं ? और क्या गीता उन सबों का वैसा वर्णन करती है ? मैं यह मानता हूँ कि दुर्योधन और उसका पक्ष मानव की नीच वृत्तियाँ अतएव अर्जुन और उसका पक्ष मानव की उच्च वृत्तियाँ हैं । महाभारत की युद्धभूमि याने अपना शरीर या पिंड है । इस दो प्रकार की वृत्तियों में सदा संघर्ष चल रहा है । कवि ने उसका स्पष्ट व रोचक वर्णन किया है । निर्मल अन्तःकरण में सदा बसने वाला महान अस्तित्व याने कृष्ण हैं । घड़ी को चाबी देते हैं इस प्रकार अन्तःकरण को सदाचरण की प्रेरणा की आवश्यकता होती है अन्यथा अन्तर्यामी परमात्मा का अस्तित्व ही नष्ट हो जायेगा ।

महात्माजी के लेख का प्रत्येक शब्द सत्य है । परन्तु एक हिन्दु-संगठनवादी को यह लेख दिखाने के बाद उन्होंने गांधीजी के उपर्युक्त 'Gita stands for non-violence and not for violence' इस वाक्य को पढ़कर ही एकदम से माखौल करना शुरू किया । वे कहते रहे, "देखिये, गांधीजी जहाँ हैं वहाँ अपना सत्य अहिंसावाद लाना चाहते हैं । गीता तो युद्ध-भूमि पर भगवान ने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रवृत्त करने हेतु से बताई है । फिर यहाँ अपना अहिंसावाद लाने की क्या आवश्यकता है ?" सतत संस्कारों के कारण महत्वपूर्ण बात हमारे ध्यान में नहीं आती है और वह यह कि अन्य धर्मपंथों का विस्तार उनके विस्तारकों ने जिस प्रकार एक हाथ में उनका धर्मग्रन्थ और दूसरे हाथ में तलवार अथवा बन्दूक लेकर किया है तद्वत् क्या गीता के तत्वज्ञान

का श्रवण भगवान श्रीकृष्ण से प्राप्त कर अर्जुन कौरवों का संहार करने के लिए सिद्ध हुआ था? यदि ऐसा माना जाता है तो फिर गीता अन्य आक्रामक धर्मग्रन्थों की पंक्ति में अपने आप खरी हो जायेगी। फिर गीता जैसे उच्च आध्यात्मिक ग्रंथ का क्या प्रयोजन है? अन्य मज़हवें छलवल से वढ़ायी गयी हैं परन्तु वैदिक परम्परा का आज का स्वरूप याने हिन्दु धर्म प्रेम द्वारा वर्धित हुआ है इस प्रकार के हमारे कथन में क्या आधार रहा? इसलिए गीता इस भौतिक युद्ध को प्रेरणा देनेवाला ग्रन्थ नहीं वरन् सन्त श्रेष्ठ तुकाराम महाराज कहते हैं उस प्रकार साधक के अन्तर्युद्ध की लड़ाई करने की प्रेरणा देनेवाला ग्रन्थ है, यह महात्मा गांधी का समर्थन सही मानना पड़ेगा। तुकाराम महाराज कहते हैं, 'दिन रात हमें युद्ध का प्रसंग।' महात्माजी भी यही कहते हैं 'Gita stands for non-violence and not for violence'।

योगीसन्त कबीरजी इसी प्रकार कहते हैं—

शूर संग्राम को देख भागै नहीं, देख भागै सोही शूर नाहीं ॥१॥
काम औ क्रोध मद लोभ से जूझना, मँडा घमसान तहँ खेत माहीं ॥२॥
शील औ सौच संतोष साही भये, नाम समशेर तहँ खूब बाजै ॥३॥
कहै कबीर कोइ जूझि है शूरमा, कायरां भीड़ तहँ तुरत भाजै ॥४॥

गुजरात के प्रसिद्ध सन्त श्री नरसी मेहता भी कहते है—'हरिनो मारग छे शूरानो कायरनु नहीं काम रे।' हरी का मार्ग शूरों का है, कायरों का नहीं है। अर्जुन इसी प्रकार अन्तर्युद्ध को जीतनेवाला शूरवीर है जो कि हर एक के अन्तःकरण में है। 'अर्' याने सर्व बाधाओं को चीरते हुए आगे जाना और अर्जुन याने सकल बाधाओं को चीरते हुए आगे जानेवाला साधक है। इस प्रकार आगे बढ़कर प्रगति करनेवाले पराक्रमी साधक को आर्य कहा जाता है। आर्य यह कोई जाति विशेष अथवा वंश विशेष नहीं है। अर्य नामक वंश या जाति कभी भी अस्तित्व में नहीं थी और न आज है। किसी वंश या जाति को नाम देना ही है तो वह अन्य दिया जा सकता है। आर्य याने सकल बाधाओं को सफलता से सन्मुख हो उनसे भी आगे बढ़कर अपना मार्ग निकालकर ध्येय की ओर गतिमान रहनेवाला पराक्रमी पुरुष है। इसलिए किसी भी मानववंश का व्यक्ति आर्य बन सकता है फिर चाहे वह निग्रो हो या अन्य!

दक्षिण भारत में इसी आर्य शब्द का अन्य रूप प्राचीनकाल से आजतक चला आया है जैसे कि अय्यर, अय्या, मुदल अय्यर, मुदलियार, नय्यर, नायर

इत्यादि। अर्जुन, कृष्ण और राम इसी आशय से आर्य माने जाते हैं। गीता ग्रन्थ ऐसी ही आर्य-वृत्ति रखनेवाले सब साधकों के लिए है फिर वह हिन्दू, इसाई अथवा मुसलमान रहे। भगवान श्रीकृष्ण ऐसे अर्जुन राम के रथ के सारथी हैं। उपनिषदकार बुद्धि को प्रत्यक्ष परमेश्वर मानते हैं—'आत्मानं रथिनं विधि शरीरं रथमेव तु। बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥' आत्मा रथ का स्वामी, शरीर यह रथ है और उस शरीररूप रथ का चालक अथवा सारथी बुद्धि है। इसी प्रकार अर्जुन के रथ के सारथी को भगवान श्रीकृष्ण करते हैं। अर्जुन, राम और श्रीकृष्ण हर व्यक्ति में हैं, उन्हें केवल जानकर अपना पूर्णत्व प्राप्त करना है। अर्जुन और राम तो हम जान गये हैं। भगवान श्रीकृष्ण के बारे में शास्त्र कहता है—'कर्षति इति कृष्णः' याने जो विश्व में स्थित अनेक शक्तियों का अपने में कर्षण करता है उसे कृष्ण कहा जाता है। राम और अर्जुन को धनुर्धारी बताया गया है। उस समय जो शास्त्र प्रमुख माने जाते थे वही धनुष और वाण राम और अर्जुन के हाथों में दिये हैं। परन्तु धनुष और शर क्या है, और उस शर का सन्धान कहाँ पर करना चाहिए इस बारे में उपनिषद कहते हैं—

'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते।'

याने प्रणव अथवा साधना धनुष है। आत्मा यह शर याने तीर है और वह आत्मारूप तीर ब्रह्मरूप लक्ष्य पर मारना चाहिए। इसलिए राम एवं अर्जुन के शर सदा अचुक मारे जाते थे। कारण कि ये सदा ब्रह्म में ही मारे जाते थे। आज का कोई भी साधक इसी उपनिषद आशय से राम, अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं। सम्पूर्ण रामायण और महाभारत इसी उपनिषद् महावाक्य का कथारूप वैदिक विस्तार है। वाल्मीकि रामायण में यही बताते हैं— 'रामायणं महाकाव्यं सर्वं वेदार्थ संमतम्।' रामायण वेदसम्मत आचार-विचारों का महाकाव्य है, परन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें केवल इतिहास बनाकर छोड़ा गया है जिससे इसकी मूल गरिमा नष्ट-सी हो गयी है।

पूजनीय गोलवलकर गुरूजी

साधारणतः चालीस साल पहले की बात है। नागपुर के एक पुराणमतवादी गृहस्थ ने जिनका नाम जामदार था, रामायण पर अपना एक ग्रन्थ लिखा था। उस ग्रन्थ के लिए उस व्यक्ति ने पू० गोलवलकर गुरुजी का अभिप्राय मंगवाया था। गोलवलकर गुरुजी ने अपना अभिप्राय अंग्रेजी में लिखा था। उसका आशय सामान्य जनों को विदित हो इसलिए उस

अभिप्राय का भाषांतर मराठी में करने का काम लेखक पर सौंपा गया था। वह पुस्तक और गुरुजी गोलवलकरजी का अभिप्राय अब कहाँ होगा, यह लेखक नहीं ज्ञानता परन्तु उस अभिप्राय लेख में गुरुजी गोलवलकरजी ने यह स्पष्ट लिखा था कि रामायण इतिहास न होकर मानवीय जीवन को समृद्ध बनाने के लिए लिखा हुआ आदर्श महाकाव्य है। श्रेष्ठ पुरुष, फिर वे योगीराज वासुदेवानन्द सरस्वती रहें अथवा महात्मा गांधी या गोलवलकरजी रहें, जो बतायेंगे वह एक ही सत्य रहेगा जैसा कि प्राणवायु, इग्लैण्ड में तैयार किया हो अथवा भारत में, एक ही गुण और घटना की रहेगी। तद्वत् सच्चे साधकों का मत एक ही रहेगा। 'एकं सत्' वेद कहते हैं।

रामायण महाभारत का सत्य आशय इन महापुरुषों ने अपने जीवन में प्रत्यक्ष लाने की चेष्टा की थी और इसीलिए वे अपने-अपने क्षेत्रों में श्रेष्ठ पुरुष बन सके। आदर्श प्राप्त करने के लिए कथाएँ प्रत्यक्ष इतिहास ही हों, इस प्रकार का आग्रह कोई भी सुबुद्ध नहीं करेगा। इस दृष्टि से प्रसिद्ध बंग साहित्यिक बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा विख्यात 'आनन्दमठ' उपन्यास का उदाहरण ले सकते हैं। भारत में उस समय अंग्रेजों का राज्य था और उनके राज्य के विरुद्ध कुछ लिखकर भारत की स्वाधीनता दिलाई जाय इस प्रकार का साहित्य लिखने पर अंग्रेजों ने पाबन्दी लगाई थी। श्री बंकिम चन्द्रजी ने 'आनन्दमठ' नामक उपन्यास लिखा जिसमें किसी समय प्राचीन जनता ने अपने क्रूर सौर दुष्ट राजा से छुटकारा पाने के लिए विराट आन्दोलन छेड़ी थी और फलस्वरूप जनता ने अपनी स्वाधीनता प्राप्त की थी, ऐसा लिखा था। 'आनन्दमठ' उपन्यास सारी बंगभूमि में और महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में इतना लोकप्रिय हुआ कि 'आनन्दमठ' उपन्यास में लिखा गीत 'वन्देमातरम्' सारे भारत के कोने-कोने में गूंज उठा। बच्चा बच्चा भी वन्देमातरम् गीत कहकर अंग्रेजों के जुलमों के खिलाफ आवाज उठाने लगा। भारतीय क्रान्तिकारी वन्देमातरम् गीत गाते-गाते फाँसी के तख्ते पर बड़े आनन्द से लटकने जाते थे। सारा देश वन्देमातरम् से गूंज उठा और भारत को स्वाधीनता दिलाने का एकमात्र मन्त्र वन्देमातरम् बना जो कि आज भी भारतीय सार्वभौम राज्य का राष्ट्रीय गीत माना जाता है। वन्देमातरम् द्वारा भारतीय स्वाधीनता का इतिहास उत्पन्न हुआ। आनन्दमठ उपन्यास इतना लोकप्रिय बना कि उसके द्वारा भारतीय इतिहास घटित हुआ।

फ्रान्स देश के उस समय के अन्यायी राजा के प्रशासन और व्यवस्था के खिलाफ 'लॉ मिज़रेबल्स' नामक उपन्यास लिखा गया। उपन्यास इतना

लोकप्रिय बना कि फ्रान्स में महान क्रान्ति हुई और फ्रान्स की जनता ने राजा को विस्थापित कर फ्रान्स में प्रजातन्त्र प्रस्थापित किया। रामायण ग्रंथ भी रामजीवन के पूर्व लिखा गया, यह रामायण में ही स्पष्ट लिखा है। इसलिए रामायण ग्रन्थ को इतिहास न मानकर एक आदर्श ग्रन्थ मानना ही उचित होगा। इस आशय से राम तब तक रहेंगे जब तक रामायण ग्रन्थ विद्यमान है। सारे संसार के लिए रामायण एक आध्यात्मिक आदर्श ग्रन्थ था और यदि रामायण का सही प्रचार किया जाय तो आज भी रामायण ग्रन्थ सारे संसार का पुनश्च आध्यात्मिक ग्रन्थ बन सकता है। इसीलिए रामायणकार वाल्मीकिजी रामायण के बालकाण्ड सर्ग २. श्लोक ३६ में लिखते हैं—'यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितस्य महीतले। तावद्रारायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥' जब तक संसार में भाषा सरिता बहती रहेगी तब तक रामायण कथा लोगों में प्रचारित होती रहेगी और राम का आदर्श लेकर समाज में रामजीवन साकारता रहेगा।

रामायण का विश्व संचार :

रामायण एवं रामजीवन अपने देश में घटित हुआ इस प्रकार बताने वाले देश इस धरातल पर अनेक हैं। रामायण और महाभारत यह ग्रन्थ प्रत्यक्ष इतिहास है अथवा कल्पित काव्य-रचना है इस विषय को लेकर कुछ वर्ष पूर्व सारे भारत में बहुत विवाद उत्पन्न हुआ था। उस समय आस्तिपक्ष और नास्तिपक्षों में बहुत शाब्दिक युद्ध हुआ था। उस समय एक अफगानी विद्वान ने यह सिद्ध किया था कि अफगानिस्तान में ही रामजीवन साकारा गया था जिसकी परिपूर्ति के लिए वे अफगानिस्तान में सरयू, अयोध्या, लंका, किष्किंधा आदि रामायणीन स्थान दिखाने के लिए तैयार थे। अति दूर सुरीय देश के विद्वान इसी प्रकार रामायण इतिहास उनके देश का प्राचीन इतिहास है, यह मानते हैं। दक्षिण का हिन्देशिया देश तो स्वयं को रामायण देश ही कहलाता है। हालांकि अफगानिस्तान, सुरीय और हिन्देशिया ये देश आज इस्लामी देश माने जाते हैं। इताली देश में पोप के आधीन स्थान में घेटिकन शहर है जिसका उत्खनन इतिहास शोध संस्थान द्वारा हो रहा है। उस शहर के नीचे दबे हुए प्राचीन मकानों की दीवारों पर रामायण-महाभारत को अंकित करने वाले कई चित्र दिखाई दिये हैं। अर्थात् उन चित्रों की शैली उनके देश के प्राचीन रोमन-पद्धति जैसी है, परन्तु चित्र बिलकुल रामायण महाभारत में लिखित प्रसंगों को अंकित करने वाले हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि ईसापूर्व काल में पश्चिम एशिया, एशिया माइनर एवं यूरप के प्राचीन देशों में रामायण ग्रंथ इतना लोकप्रिय बना था कि उन्हें रामायण उनके ही देश का ऐतिहासिक ग्रंथ लगता था और यह सत्य है। ऋषि वाल्मीकिजी ने रामायण ग्रंथ समस्त संसार के मानवों के कल्याण के लिए लिखा था और उस प्राचीन काल में रामजीवन देशविदेश में साकारा था। वाल्मीकिजी की इच्छा उस समय फलित भी हुई थी। कालान्तर से उस प्रज्वलित अंगार पर रक्षा के आवरण चढ़े और आज रामायण ग्रंथ उस रक्षा के ढेर के नीचे इतना दव गया है कि रामायण ग्रंथ केवल भारत का ही प्राचीन इतिहास माना जा रहा है। भारतीय मध्यकाल के विद्वानों ने रामायण को एक केवल भारतीय प्राचीन इतिहास वना कर छोड़ा है। भारत के मुहल्ले-मुहल्ले में रामायण के पाठ और संकीर्तन किये जाते परंतु उसे आदर्श ग्रन्थ मान कर नहीं वरन् एक पुराना इतिहास मान कर। फलतः आज यह अवस्था उत्पन्न हुई है कि रामायण कथा सुनानेवाले और सुननेवाले सब रामकथा सुना कर और सुन कर एक दिव्य आलोकित जगत में झूमते हुए मस्त रहते हैं और उस सम्मोहित अवस्था से वाहर आते ही तमाम कामिनी, कांचन और कीर्ति की दुनियादारी करते हुए दिखाई देते हैं। उनके लिए रामकथा उनके दुर्गुणों को छिपानेवाली एक संरक्षक मात्र वन गयी है।

एक आदर्श जीवन का कितना अधःपतन हमने किया है यह देख कर महर्षि वाल्मीकिजी की आत्मा को कितना दुःख होता होगा, इस बारे में कोई सोचता नहीं है। सभी झूम-झूम कर रामजीवन गाते हैं, अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए, धन के लाभ के लिए और समाज में अपना कलंकित जीवन अच्छा बनाने के लिए ! रामायण को केवल इतिहास वनाने से यह सब हुआ है !!

रामायण में रामवन्दना एवं वाल्मीकि प्रशस्ती :

साधारणतः सभी हिन्दू-ग्रंथों में ग्रन्थारम्भ करते समय गणेशवन्दन करते हैं परन्तु रामायण में गणेशवन्दन के वजाय 'रामचन्द्राय नमः' इस प्रकार लिख कर रामवन्दन किया गया है। परन्तु महाभारत में गणेशवन्दन किया गया है। इसका आशय यह कि रामायणकाल में गणेशवन्दन की प्रथा प्रचलित होने के लिए गणेश देवता को उतनी प्रधानता नहीं प्राप्त हुई थी। लेखक का यह मत है कि गणेश देवता को भगवान व्यास ने प्रधानता देकर आज का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करा दिया है। महाभारत पूर्वकाल में गणेश देवता को

आज जैसा प्रथमारम्भ का महत्वपूर्ण स्थान नहीं रहा होगा। गणेश एक कल्पित आदर्श देवता मान कर भगवान वेद व्यासजी ने जैसे गणेशजी को महाभारत ग्रंथारम्भ में वन्दन किया है उसी प्रकार रामचन्द्र यह एक आदर्श मान कर ऋषि वाल्मीकि ने रामवन्दन किया होगा अन्यथा एक ऐतिहासिक पुरुष को ग्रंथारम्भ में वन्दन करने की वैदिक परिपाटी नहीं थी और न है। अपने आदरणीय व्यक्ति को ग्रन्थारम्भ में एवं सब कार्यों में वन्दन करने की व्यक्ति-पूजन परम्परा और परिपाटी बौद्ध एवं जैन समाजों ने शुरू की है। वैदिक परम्परा में इस प्रकार व्यक्तिपूजन नहीं था। आदर्शपूजन अवश्य था जो कि रामायण एवं महाभारत ग्रंथों में किया है। इसलिए रामचन्द्र और गणेश वन्दन आदर्श के प्रति वन्दन है न कि प्रत्यक्ष ऐतिहासिक व्यक्ति के प्रति किया हुआ वन्दन ! वाल्मीकिजी को जो आदर्श मान्य था उस आदर्श को वन्दन कर वे अपना ग्रंथारम्भ करते हैं। इसके पश्चात का श्लोक वाल्मीकि स्तवन का है।

'तपः सवाध्यायनिरतं तपस्वीं वाग्विदांवरम्।
नारदं परिप्रच्छ वाल्मीकिः मुनिपुंगवम् ।। श्लोक १, बालकाण्ड, सर्ग १ ।।'

उपर्युक्त श्लोक के बारे में कुछ विद्वानों का यह मत है कि श्लोक में उपयोगित सर्व गुणविशेषण जैसे कि तपःस्वाध्याय निरतं तपस्वी, वाग्विदांवरम् और मुनिपुंगवम् स्वर्गीय देवर्षि नारद के बारे में है न कि स्वयं वाल्मीकि के बारे में ! वाल्मीकि जैसे नारद एक प्रत्यक्ष ऐतिहासिक व्यक्ति माने जाने से उपर्युक्त कल्पना सही मानी जा सकती है, अन्यथा ऊपरनिर्दिष्ट सब गुण-विशेषण वाल्मीकिजी ने स्वयं अपने वाल्मीकि अवस्था को लेकर उद्देशित की है, यह मानना ही पड़ता है। विशेषतः मुनि पुंगव यह विशेषण केवल वाल्मीकि का ही है कारण नारद मुनी नहीं वरन् देवर्षि माने जाते थे। एक इतिहासकार स्वयं को अधिकाधिक एक श्रेष्ठ इतिहासकार इस प्रकार सम्बोधित कर सकता है। परन्तु स्वयं को इतिहासकार नहीं मानकर मुनिपुंगव मानना अप्रस्तुत एवं अहंकारदर्शक माना जा सकता है। परन्तु रामायण जैसा अद्वितीय ग्रन्थ लिखने वाला ऋषि इस प्रकार अहंकारी होगा, यह कोई भी विचारवान व्यक्ति नहीं मानेगा। इसलिए स्वतः को मुनिपुंगव कहलाने में वाल्मीकि का कोई अवश्यमेव उद्देश्य होना चाहिए।

वाल्मीकि याने चिंटियाँ बनाती हैं वह बाम्बी है अथवा चारों ओर बढ़ने वाली घास को भी वाल्मीकि कहते हैं। जो असाधारण साधक तप में लीन रहने से जिसके शरीर के चारों ओर बाम्बी अथवा घास बढ़ जाती है उसे

रामायणकार वाल्मीकि कहते हैं। याने रामायण जैसा अद्वितीय ग्रंथ लिखने के लिए लेखक को कठोर तपस्या कर वाल्मीकि बनना पड़ेगा, अन्यथा वह व्यक्ति रामायण ग्रन्थ नहीं लिख सकता, यह स्वयं को 'तपःस्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदांवरम्, वाल्मीकि एवं मुनिपुंगवम्' इत्यादि परमश्रेष्ठ युग विशेषण लगाकर रामायणकार बनाना चाहते हैं। रामायणकार का यह अहंकार दर्शन नहीं वरन् अधिकार दर्शन है यह ध्यान में रखना पड़ेगा। रामायण में और एक स्थान पर (देखिये बाल काण्ड सर्ग ३०, श्लोक २) रामायणकार स्वयं को मुनि पुंगव कहलाते हैं जो कि बाद में बताया जायेगा। स्वयं का स्थान निरपेक्ष रीति से बनाने में अहंकार नहीं वरन् अधिकार है। व्यासजी भी स्वयं को भगवान वेद व्यास कहलाते हैं। योगीसन्त ज्ञानेश्वर महाराज भी एक स्थान पर स्वयं को योगीराज कहते हैं, 'योगीराज विनवणें मना आले वो माये।' वंग महापुरुष रामकृष्ण परमहंस देव इन्होंने भी उन्हें 'देव' यह उपाधि देते समय किसी अनजाने बालक जैसे तालियाँ बजायी थीं। उसमें उनका अहंकार नहीं वरन् निरागस अधिकार था। उसी प्रकार रामायणकार स्वयं को वाल्मीकि और मुनिपुंगव कहलाते हैं, इसका कारण यह है कि रामायण जैसा परम आदर्श ग्रन्थ लिखने के लिए उन्हें स्वयं कठोर तपस्या कर 'वाग्विदांवरम् और मुनिपुंगव' वाल्मीकि बनना पड़ा अन्यथा रामायण जैसा ग्रन्थ लिखना ऐरे गैरे इतिहासकारों का काम नहीं है।

इन सब दृष्टि से विचार करने से यह स्पष्ट होगा कि रामायण महाकाव्य केवल इतिहास न होकर मानवीय जीवन के लिए आदर्श आध्यात्मिक मार्ग द्वारा अनुभूत अवस्थाओं का सुन्दर कथारूप संकलन है। इस पर कुछ विद्वान इस प्रकार विवाद करते हैं कि रामायण यदि इतिहास नहीं हो तो भी आज अखिल भारतीय जनता के मानसपटल पर रामायण एक सत्य ऐतिहासिक घटना है। यह जो भावना स्थिर हो गई है उसको रामायण इतिहास नहीं, यह कहकर चोट पहुँचाना अथवा उनका श्रद्धाभाजन करना उचित नहीं है। अपने इस तर्क-विवाद के लिए वे भगवद्गीता का एक चरण उद्धृत करते हैं– 'न बुद्धिभेदं जनभेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्'। परन्तु सच्चे आदर्श को अपने अज्ञान के द्वारा हमने खाद और पानी देकर केवल एक इतिहास क्यों बनाकर छोड़ा, यह प्रश्न महत्व रखता है। और वैसा यदि हुआ हो तो उस अज्ञान को क्रमागत ढंग से और मुलायम कौशल्य से दूर हटाना हमारा परम कर्तव्य है। अध्यात्म में अज्ञान को कदापि स्थान नहीं रह सकता। परम्परागत अज्ञान के कारण रूढ़ कल्पनाओं को वैसे ही रखने से समाज में विलक्षण

विस्मरण एवं आध्यात्मिकता उत्पन्न हो सकती है इसका ज्वलन्त उदाहरण स्थान-स्थान पर स्थित नवनाथों की समाधियों का है।

मध्यान्तर काल में भारत पर मुसलमानों का जुलमी राज्य फैला हुआ था जिस कारण स्थान-स्थान पर स्थित नवनाथों की समाधियों के ऊपर हरी चादरें चढाकर वह वैदिक नवनाथ पीर बनाये गये और वे समाधियाँ कब्रें बनाई गईं। स्वाभिमानी हिन्दुओं ने उस अन्याय और अधर्माचरण के बारे में न्यायालय द्वारा सतत संघर्ष कर उनपर भगवा ध्वज पुनः फहराया। उन धर्मपुरुषों के अथक परिश्रमों से बलात् बनाई गयी कब्रें पूर्ववत् समाधियाँ बन गईं। कश्मीर के ईश्वरी नामक एक हिन्दू लड़की को वहाँ के कुछ मुसलमान बलात् ले भागे और उससे उनके मज़हबी कानून के अनुसार उन्होंने एक मुसलमान से जबरदस्ती निकाह लगाया। नि ाह लगाने के पश्चात् फिर ऐसे निकायत स्त्री को कोई भी उसके पूर्व धर्म में नहीं ले जा सकता है ऐसा मुसलमानी धर्म का़नून है, यह माना जाता है। बस, ईश्वरी के प्रकरण में भारत सरकार और अन्य जनता चूप बैठी। आज वह निरपराध अबला बेआबरु का असहाय जीवन व्यतीत कर रही है।

मूल वाल्मीकि रामायण पर इसी प्रकार धर्म-संकट आया है। उसे दूर करना धार्मिक वृत्ति रखने वाले सज्जनों का आद्य कर्तव्य है। जन-मानस पर अनजाने जो कुछ अज्ञान की परतें छा गई हों उसे निकाल कर सच्चा ज्ञान उन्हें बताना परम आवश्यक है। अपने बचपन में हम माता से पूछते थे, 'माँ बरसात कैसे होती है ?' माँ बताती थी, 'अरे, बादलों पर इन्द्र बैठता है और वह झारियों से पानी बरसाता है।' बचपन के अज्ञान के कारण हमारा समाधान हो जाता था और इन्द्र की कथा सुनकर हम एक सुखद धुन्द में रहते थे। परन्तु क्या आज के वैज्ञानिक युग के बच्चों को वैसा ही बताकर अज्ञान में रखा जाय ? बाइबिल ने सूर्य को पृथ्वी की चारों ओर घूमने के लिये लगाया था। परन्तु एक कोपर्निकस निकला जिसने बताया कि सूरज नहीं बरन पृथ्वी सूर्य की चारों ओर परिक्रमा करती है। जैसा दिखता है वैसा नहीं है। कोपर्निकस को बहुत छल सहना पड़ा। उसे जेल में ठूसा गया परन्तु यूरप के लोगों ने पोप के बजाय कोपर्निकस का कहना माना, कारण कि वह सत्य था। आज पूर्व जैसी पृथ्वी सूर्य की चारों ओर परिक्रमा कर रही है। इसी प्रकार रामायण-महाभारत के बारे में सत्य बताना परम आवश्यक है फिर भले ही समाज या समाज के कथित विद्वान बताने वालों को कितना भी अनुल्लेख द्वारा अथवा प्रत्यक्ष सताकर उसका सत्य

कथन नष्ट करने की चेष्टा करें। लेखक यह महान कार्य कर रहा है, फिर भले ही उसकी कितनी भी माखौल हो अथवा उसे अन्य कष्ट सहने पड़े।

रामायण महाभारत का सच्चा आशय संसार के सामने आने से उनपर छाया हुआ भारतीय ऐतिहासिक आवरण निकल कर वह ग्रन्थ पूर्व जैसे अखिल मानव समाज के आध्यात्मिक आदर्श ग्रन्थ बनेंगे, इसमें सन्देह रखने का कोई कारण नहीं है। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि राम और कृष्ण यद्यपि भारतीयों के लिए महान पुरुष हैं तो भी अभारतीय जन उन्हें अपना आदर्श क्यों मानें? हर देश के महापुरुष उनके लिए परम आदरणीय एवं आदर्शवत् हैं। अमरिकी जनों को वाशिंगटन आदर्श पुरुष लगता है कारण उसने अमेरिका को स्वाधीनता दिलाई। भारत के देश-नेता उनके आदर्श क्यों रहें? भारत के लोग शिवाजी महाराज, राणा प्रताप और गोविन्दसिंहजी को छोड़कर केवल वाशिंगटन को ही आदर्श पुरुष क्यों मानें? और यदि वैसा वह मानते हैं तो उन्हें क्या देशभक्त और बुद्धिमान माना जायेगा? उसी प्रकार अन्य देशों के जनों के सामने उनके आदर्श पुरुष रहते हुए भारतीय ऐतिहासिक ढंग से माने गये राम और कृष्ण को वे क्यों उनके आदर्श पुरुष मानें? परन्तु राम और कृष्ण यह भारतीय ऐतिहासिक आदर्श न होकर अखिल मानव समाज के लिए बनाये गये आध्यात्मिक आदर्श हैं, यह सत्य जानने पर अभारतीय जन भी राम और कृष्ण का आध्यात्मिक आदर्श अपने जीवन में उतारने की चेष्टा अवश्य करेंगे।

जागतिक आदर्श :

यह होने पर भारत के बाहर की जनता भी उनके धर्मपुरुष जैसे राम और कृष्ण को अपना धर्मपुरुष मानेगी जैसा कि पूर्वकाल में हुआ था। हिन्देशिया में आज भी रामजीवन आदर्श माना जाता है फिर वह व्यक्ति हिन्दू, मुसलमान अथवा ईसाई रहे। राम और कृष्ण को उनका सच्चा आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त करा देना हर भारतीय का धार्मिक कर्तव्य है। फिर वह करते समय अपने देश में अन्ध श्रद्धालु जनों का कितना भी विरोध हो। भारतीय मुसलमान आक्रमक चंगेज खाँ को अपना आदर्श पुरुष मानते हैं फिर भलेही वह मुसलमान न हो। मुहम्मद गोरी, तुगलक, बाबर, औरंगजेब को अपना आदर्श मानते हैं, कारण उनके सामने भारतीयों ने राम एवं कृष्ण का सच्चा आदर्श नहीं रखा। भारत के मुसलमान राम और कृष्ण को हिन्देशिया के

मुसलमान जैसे आदर्श पुरुष मान सकते हैं जबकि वे उनका सत्य स्वरूप जानेंगे। भारतीय ही नहीं वरन् अखिल ईसाई जगत राम और कृष्ण को ईसा जैसे अपना परम पुरुष मानेंगे जबकि वे राम-कृष्ण का आदर्श स्वरूप जानेंगे। बाइबल में लिखा है कि ईसा के समय के इज़राइली लोग ईसा के धर्म-प्रचार के विरुद्ध नहीं थे। ईसा स्वयं को क्रिस्त कहलाता था इस बात पर उन इज़राइली लोगों का क्रोध था। वे ईसा को क्रिस्त मानने के लिए तैयार नहीं थे। ईसा के सामने क्रिस्त यह आदर्श था और इसलिए क्रिस्त जैसा व्यवहार कर ईसा स्वयं को क्रिस्त कहता था जैसा कि रामायणकार ने स्वयं को वाल्मीकि कहा है और महाभारतकार ने स्वयं को वेदव्यास कहा है।

हो सकता है कि वाल्मीकि और व्यास को उनके समय में ईसा जैसे छल और कष्ट सहने पड़े हों। व्यास ने अपने महाभारत के अन्त में स्पष्ट लिखा है कि मैं इस महाभारत द्वारा जगत को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मार्ग बताना चाहता हूँ। परन्तु मेरी बात कोई सुनता ही नहीं।

'उर्ध्वबाहुविरोमैष न च कश्चित् श्रुणोति में।
धर्मात् अर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥'

इस प्रकार महामानव ने अपने सामने भगवान कृष्ण का आदर्श रखा था जो कि ईसा ने भी अपने सन्मुख रखा था और वह आदर्श था कृष्ण का। कृष्ण को इज़राइली भाषा में उस समय क्रिस्त कहते थे जो कि ईसा बनना चाहता था इसीलिए ईसा स्वयं को कृष्ण याने क्रिस्त अथवा क्राइस्ट कहता था। ईसा क्राइस्ट या कृष्ण नहीं था इसलिए वह क्राइस्ट कृष्ण बनना चाहता था, नाम धारण कर! उस समय के इज़राइली लोग कृष्ण इस आदर्श को भली भांति जानते थे और ईसा जैसा एक आदमी स्वयं को कृष्ण कहे, यह वे नहीं सह सकते थे। इसलिए उस जमाने के इज़राइली धार्मिकों ने ईसा का छल किया एवं उसको उनके देश से खदेड़ कर बाहर निकाल दिया। ऐसा कहा जाता है कि ईसा फिर अपनी मातृभूमि भारत वापस आया और श्रीनगर में उसने अपनी देह छोड़ी।

आज की क्रिश्चियन मज़हब याने कृष्णनीति का इज़राइली रूप है।

काल-गणना :

रामायण महाभारत में वर्णित कुछ ज्योतिष विषयक वर्णनों का आधार लेकर कोई विद्वान् रामायण काल को ईसापूर्व ५००० साल एवं महाभारत

काल को ईसापूर्व ३००० साल तक ले जाना चाहते हैं। परन्तु इस प्रकार के काल-गणना में विद्वान अपने मन में कुछ कल्पना गृहित करते हैं और उस आधार पर फिर काल-गणना का गणित आधारित किया जाता है। इसी प्रकार एक समय परम्परागत कल्पनाओं से भारित रहने से लेखक ने रामायण काल एक वृहत लेख लिखा था जिसमें लेखक ने यह सिद्ध किया था कि रामायण काल आज से पूर्व आठ लाख तिरसठ हजार और कुछ वर्ष पूर्व का है। लेखक विज्ञान का विद्यार्थी होने से उसने उस लेख में कई वैज्ञानिक कारण परम्पराओं की भरमार कर अपना लेख लिखा था जिससे कि लेखक उस समय एक वड़ा विद्वान माना गया था। परन्तु उस समय लेखक को आध्यात्मिक ज्ञान न रहने के कारण लेखक का वह लेख केवल गृहित कल्पनाओं का विलास था, न कि प्रत्यक्ष सत्य ! वाल्मीकि रामायण में रामायण काल के बावद स्पष्ट खुलासा रहकर भी उस काल को लेखक ने नहीं मानकर अपने तर्क-विलास की कसरत कर उपरनिर्दिष्ट लेख लिखा था और आचर्श्य यह कि उस लेख की देश में बहुत सराहना हुई थी। आज लेखक की बुद्धि साधनाद्वारा ठीक होने के कारण वह रामायण के काल का सरल गणित समझ सकता है। रामायण काल बुद्धकाल के समकक्ष काल है। वाल्मीकि रामायण में उसका उल्लेख है—

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धः।
तथागतं नास्तिकमंत्र विद्धि॥
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां।
'स नास्तिके नाभिमुखो बुद्धः स्यात्॥ अयोध्या काण्ड २।९०९।३४॥'

आशय यह कि तथागत बुद्ध को चोर और नास्तिक माना और यदि सम्भव हो तो बुद्धिमान जनों को उसका मुखतक नहीं देखना चाहिए। यह उद्धरण स्वयं वाल्मीकि रामायण का होने से उसको झूठ मानना उचित न होगा। कुछ लोग इस उद्धरण को प्रक्षिप्त मानने का सोचेंगे परन्तु जो हमें मान्य नहीं है उसे प्रक्षिप्त मानना सिवाय जिद के और कुछ नहीं है। इस प्रकार हर कोई भी पंक्ति प्रक्षिप्त मानी जा सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि रामायण काल बुद्धकाल से समकालीन है। बुद्ध काल ईसा के पूर्व ६००-७०० वर्षों का माना जाता है और वही काल रामायण का माना जाना चाहिए अन्यथा तथागत बुद्ध का इतना स्पष्ट उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं रहता।

रामायण और महाभारत काल :

जैसा कि सर्वत्र माना जाता है रामायण काल महाभारत काल से पूर्व का है। इसका कारण भी स्पष्ट है। रामायण के लगभग सभी पात्र और विशेष व्यक्ति महाभारत में आये हैं परन्तु महाभारत का कोई भी विशेष पात्र रामायण में आया नहीं है। पुरानी कृत्तिओं का उल्लेख नये में आ सकता है नया का पुराना में नहीं। वैसे अर्जुन का उल्लेख रामायण में आया है परन्तु रामायण का वह अर्जुन महाभारत में नहीं वरन् वेदों से लिया गया है। वेदों में अर्जुन का उल्लेख है। 'अर्' याने आगे बढ़ना और अर्जुन याने आगे बढ़ने वाला श्रेष्ठ साधक। अर्जुन कोई ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं है। परन्‍ यह भी ध्यान में रखा जाय कि रामायण और महाभारत काल में बहुत अन्तर नहीं है। अन्तर है केवल पचीस पचास साल का। रामायण जैसा सुन्दर ग्रन्थ देखकर उसी प्रकार अपना भी एक सुन्दर आध्यात्मिक रूपात्मक वर्णन ग्रन्थ रहे यह धारणा मन में रखकर व्यास नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति ने अपना भी महाभारत नामक बृहत ग्रन्थ लिखा जो कि रामायण से भी अधिक मानव स्वभावों की बारीकी का यथातथ्य चित्रण करने वाला और योगानुभावों का अधिक सूक्ष्म परिचय करा देने वाला निकला। विशेषतः महाभारतकार ने भगवान गोपाल कृष्ण का जो संपूर्ण आदर्श संसार के सम्मुख रखा वह तो अद्वितीय और अपूर्व है।

रामायणकार ने रामचरित को मर्यादा पुरुषोत्तम के हिसाब से दर्शाया है इसलिए रामजीवन में सम्पूर्णता की दृष्टि से कुछ कमी रह जाती है। राम बार-बार गलतियाँ करता है और स्वयं को सुधारने की चेष्टा करता है परन्तु अपने स्वभाव के अनुसार वह पुनः वही गलतियाँ करता है, कारण वह मर्यादा पुरुष है। राम का सीता के वियोग के कारण किया जाने वाला विलाप सुनकर लक्ष्मण और सुग्रीव उसे कई बार, उसकी भर्त्सना कर, धैर्य और संयम रखने के लिए कहते हैं! अपना भाई लक्ष्मण उसी प्रकार अपनी पत्नी विरहित है यह देखकर राम लक्ष्मण का धैर्य एवं संयम रखने में असमर्थ बनता है। वरन् लक्ष्मण ही राम को बार बार समझाता है। सीता का चारित्र्य मालूम होकर भी राम केवल जनमत के कारण निर्दोष सीता का त्याग करता है और फिर पछताता है। सीता के सिवाय उसे एक क्षण भी चैन नहीं रहती है। राम का यह चञ्चल और स्त्रैण स्वभाव किसी भी धीर

पुरुष को शोभा नहीं देता। परंतु राम को एक मर्यादा पुरुषोत्तम बनाने का विचार रामायणकार ने जो किया था उस भूमिका को लेकर रामायणकार ने राम चरित ठीक रंगाया है। साधारण आदमी गलतियाँ करता है, राम भी गलतियाँ करते हैं।

महाभारतकार के सामने रामजीवन की यह त्रुटियाँ अवश्य थीं। उन्होंने अपने एकदम नये अविष्कार के द्वारा मानव को पूर्णावतार गोपाल कृष्ण बनाने का सोचा। गोपाल कृष्ण के जीवन में एक भी भूल नहीं पायी जायेगी। गोपाल कृष्ण पूर्ण पुरुष दिखाये गये हैं। राम केवल सुन्दर और धनुधारी ही बताये हैं। कृष्ण सुन्दर तो अवश्य हैं परन्तु उनमें सर्व कला, कुशलता, मल्ल की शक्ति और कुशलता, तत्वज्ञान में परिपूर्णता, अप्रतिम गायक वादक, राजनीति निपुणता, मुत्सद्दीपन, समय सूचकता, निर्लोभी परन्तु कर्तव्य दक्ष स्वभाव, समय पर कर्तव्य कठोरता समाज के लिए सदा रत परन्तु आत्मोन्नति के समय अनासक्तता इत्यादि पूर्ण पुरुष सर्व गुण बहुत सुन्दर ढँग से दिखाये गये हैं। राम को बार-बार समझाना पड़ता है परन्तु भगवान श्री कृष्ण सबको समझाते हैं। पत्नी के लिए विलाप करने की बात कृष्ण जीवन में नहीं है। कृष्ण पत्नियों पर अवश्य प्रेम करते हैं परन्तु पत्नी के लिए राम जैसे मजनू बनना कृष्ण पसन्द नहीं करते हैं। एक समतुल्य, धीर गंभीर, उदात्त, सम्पूर्ण जीवन गोपाल कृष्ण द्वारा भगवान व्यासजी ने चितारा है। एक उतुंग बुद्धिमत्ता का परिचय भगवान कृष्ण द्वारा भगवान व्यास देते हैं। इसीलिए व्यास को 'विशाल बुद्धिः' कहा गया है। अपना व्यास नाम भी उस महापुरुष ने वाल्मीकि जैसे एक उपाधि रूप से लिया है।

अथ च हम इस सत्य पर आते हैं कि रामायण काल और महाभारत काल तथागत् बुद्ध के समय का है जो कि आज से २७०० साल पूर्व का है। रामायण काल महाभारत काल से पचीस-पचास वर्ष ही पूर्व का है। रामायण में तथागत बुद्ध को चोर और नास्तिक कहा है इसलिए कुछ बौद्ध पण्डित रामायणकार पर नाराज हैं। ऐसे क्षूद्र शब्द तथागत बुद्ध जैसे एक महान विश्वबन्धु मानव के बारे में उपयोगित अच्छा नहीं है, ऐसा उनका कहना है। बात सही है परन्तु वैदिक परम्परा के बारे में और यज्ञ संस्था आत्मवाद के बारे में बौद्ध पण्डितों ने और स्वयं बुद्ध ने कुछ कम प्रलाप नहीं निकाले हैं। बौद्ध ग्रन्थों में वैदिक कर्मकाण्ड के बारे में अति नीच शब्दों का प्रयोग किया है इसलिए रामायणकार ने तथागत बुद्ध के बारे में जो भी

शब्द प्रयोग किये हों वह 'शठे प्रति शाठ्यम्' इस नाते से ठीक ही है। वैदिक परम्परा के नाम पर यज्ञ में पशु-हिंसा करना स्वर्ग की कामना के लिए इस जगत से उदासीन रहकर किंवहुनां पाप कर्म करना ये बातें किसी धर्म को शोभा नहीं देतीं, यह सत्य है। परन्तु बौद्ध धर्म में गौतम बुद्ध के पश्चात जो भोग-प्रवृत्ति और दम्भाचार आया वह भी उसी प्रकार निन्दनीय था। रामायणकार की कटु आलोचना इस प्रकार के ढोंग और भोगवाद पर थी। तथागत बुद्ध के नाम पर जो लोग अनाचार करते थे उनके अनाचार का मूल तथागत बुद्ध ही रामायणकार ने निंदनीय माना। बौद्ध मत के विरुद्ध रामायणकार नहीं थे अन्यथा शबरी, हनुमान और सुग्रीव को श्रमणी, श्रमण और भिक्खु वताकर उसका प्रेम सम्पादन करने के लिए राम को रामायणकार न लगाते। रामायण का मुख्य कर्ता तो हनुमान हैं जो कि रामायणकार द्वारा भिक्खु और श्रमण वताया गया है।

उस समय का बौद्ध मत वैदिक परम्परा को ही नष्ट करना चाहता था इसलिए वैदिक परम्परा को जीवित रखने के लिए उस मत-प्रवाह का मूल जो तथागत बुद्ध उसको चोर और नास्तिक कहना रामायणकार ने उचित माना। तथागत बुद्ध पर केवल एक ही स्थान पर इस प्रकार टीका है, अन्य स्थान पर बौद्ध मत के अच्छे संस्कारों का गौरव लिखा है, परन्तु वह सुन्दर कथारूप में बौद्धों ने वैदिक परम्परा का जो श्रद्धा-भाजन शुरू किया था उसको परिणामकारक रोकथाम देने के लिए रामायणकार इसी एक स्थान पर तथागत बुद्ध के बारे में यह शब्द प्रयोग करते हैं। साधारण जनता नर्भगर्भित भाषा को नहीं समझाती है, उसे प्रचलित भाषा ही अच्छी लगती है। और इसका परिणाम उस समय की भारतीय जनता पर अवश्य हुआ। रामायण महाभारत ग्रन्थ तदन्तर काल में इतने प्रिय बने कि जहाँ जहाँ बौद्ध मत का प्राबल्य वढ़ गया था वहाँ वहाँ उस समय का समाज पुनः वैदिक परम्परा की ओर श्रद्धा से देखने लगा और वैदिक बनने लगा। रामायण महाभारत ग्रन्थ यदि नहीं होते तो भारत में पूर्वकाल में बौद्ध, मुसलमान काल में मुस्लिम और अंग्रेजों के जमाने में ईसाई दीख पड़ते, यह निश्चित है। व्यक्ति की श्रद्धा एक बार उसके श्रद्धा स्थान से हट जाने से वह व्यक्ति फिर श्रद्धा के हिसाब से किसी काम का नहीं रहता, जैसा कि स्त्री अपने पति से श्रद्धा हटाकर और किसी अन्य पुरुष से शरीर भोग करती हो, कुछ ही समय के बाद कुटला या वेश्या बन जाती है। संसार में जहाँ-जहाँ बौद्धमत का प्राबल्य था वहाँ के लोग थोड़ा दबाव आने पर मुस्लिम या

ईसाई बन गये, यह इतिहास बताता है। वैदिक समाज शरीर में यह जो अश्रद्धा रूप रोग मूल पकड़ रहा था उसे शल्यक्रिया द्वारा उखाड़ कर फेंकना रामायणकार ने अपना आद्य कर्तव्य माना। और उसका सुयोग्य परिणाम भी हुआ।

सारा भारत पुनः वैदिक परम्परा को लेकर चलने वाला बना। बौद्धमत का भारत में नाम तक नहीं रहा। बौद्ध स्तूप, बौद्ध विहार फिर से रामकृष्ण के यशगान गाने वाले मन्दिर बने। गौतम बुद्ध की अशास्त्रीय एवं अशोभनीय व्यक्ति-पूजा का स्थान राम और कृष्ण जैसे अव्यक्त, अजन्मा और आदर्शवत् व्यक्त मूर्तरूप ने लिया। बुद्धजन गौतम बुद्ध जैसे एक जड़शरीरी ऐतिहासिक व्यक्ति की पूजा और आरती करते थे और आज भी कर रहे हैं, परन्तु राम और कृष्ण कोई जड़शरीरी ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं वरन मानव-समाज के लिए उच्च आध्यात्मिक एवं सामाजिक आदर्श हैं। हर कोई मानव फिर व भले ही किसी भी पंथ, सम्प्रदाय अथवा अर्थ-व्यवस्था मानने वाला हो, राम और कृष्ण का आदर्श मान सकता है, उनका भजन कर यजमान बन सकता है। यह असंभव कार्य रामायण-महाभारत ने संभव कर दिखाया। इस नाते एक समय सारा विश्व राम कृष्ण को आदर्श मानता था। फिर ईसाई और मुस्लिम लहरों ने विश्व का शुद्ध शीतल गंगा जल प्रदूषित कर सारे संसार में धर्म के नाम पर झगड़े और मानव-हानि के नृशंस अत्याचार शुरू किये। संसार में धर्म के नाम पर जितने अत्याचार और संहार हुए उसने स्यात् अन्य किसी कारण से हुए हों। रामायण महाभारत का यह ऐतिहासिक कार्य बिना युद्ध अथवा मानवसंहार हुआ यह बात सुवर्णाक्षरों से लिखने लायक है, यह विचारवान न भूलें। बौद्ध आत्मा नहीं मानते थे और न मानते हैं। मानव एक ऐसा उत्क्रान्त प्राणी है कि जो बिना श्रद्धा स्थान नहीं रह सकता। वैदिक समाज की आत्मा की श्रद्धा बौद्ध मत ने फिर जड़ शरीरी बुद्ध ने ली। 'सर्वं' क्षणिक मानने वाले बुद्धिमान बुद्ध जड़ शरीर की पूजा करने लगे। इसी प्रकार इसाई और मुस्लिम पंथ में शुरू हुआ। आत्मा यह जगतधारणा की एक अवस्था है जो कि आज का विज्ञान भी मानता है। उस मूल आत्मरूप से सारा संसार प्रकट हुआ है, यह वैदिक परम्परा मानती है। परन्तु बौद्ध, इसाई और मुस्लिम जगत ने इस अमूर्त अजन्मा आत्मावस्था को न मानकर उनके पंथ के उद्गाता जो बुद्ध, ईसा और महम्मद को माना है, जो कि जड़ है, अशाश्वत है, अपूर्ण है। यह सब शरीरासक्त और भोगप्रवण बनें। केवल उनके मसीहा पर श्रद्धा रखने से

मानव का उद्धार हो जायेगा इस प्रकार का अशास्त्रीय विचार वे रखते हैं। उसका सहज परिणाम यह था कि अपने धर्मपुरुष को न मानने वालों के बारे में असहिष्णुता उत्पन्न हुई। यही कारण है कि अवैदिक बौद्ध, इसाई और मुस्लिम मतपंथ अत्यन्त अनुदार और अपने पंथ के विस्तार के लिए अति छल बल करने वाले क्रूर निकले। आत्मा का त्याग करने का यह स्वाभाविक फल था। वैदिक परम्परा का व्यक्ति शत्रू में भी आत्मरूप देखता है जैसा कि राम ने रावण में देखा था। इसलिए आत्मा को मानने वाली वैदिक परम्परा ही उदार, सहिष्णु और मानवतावादी है। वैदिक परम्परा का प्राण आत्मारूप में एवं उसका प्रकाश प्रेम में है परन्तु अनात्मवादी अवैदिक पंथ का अस्तित्व केवल जड़ में एवं द्वेष में है। इसाई कितना भी मुख से प्रेम और सेवा की बातें करें परन्तु उनके नस नस में संकुचित साम्प्रदायिक एवं जड़मूर्ति ईसा का ही प्रेम और आदर रहता है। मुस्लिम पंथ के बारे में तो बोलना ही बेकार है।

रामायण का ऐतिहासिक कार्य :

बौद्धमत का प्रचार देश और विदेश में हुआ था। समस्त देश-विदेशों में बौद्ध-मत द्वारा आदान-प्रदान शुरू हुआ था। बौद्धजन भारत से बाहर जाते थे और बाहर से भारत में आते थे। केवल वाचालता में ही पूर्णता माने जाने के कारण समाज का कर्तव्य एवं देश-राष्ट्र का कर्तव्य बौद्धजन भूल रहे थे। परिणामतः भारतीय समाज देश-रक्षा के बारे में एवं सामाजिक स्वास्थ्य के बारे में बलहीन एवं असंगठित बना। समाज हर समय उच्च तत्वावधान में नहीं रह सकता। बाहरी देशों के समाज भारत पर आक्रमण करने लगे। शक, हूणों के बाद भारत पर आक्रमण करने वाला नृशंस अत्याचारी एक बौद्ध था, और वह था चंगेज खाँ! भारत के बौद्ध चंगेज खाँ जैसे आक्रामकों को अपना धर्म बन्धु मानते थे; जैसे कि आज का भारतीय मुसलमान भारतीयों को छोड़ कर किसी भी मुस्लिम समाज को अपना मानता है। परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता शक, हूण और चंगेज का मुकाबला न कर सकी। भयानक संहार हुआ, अबलाओं पर अत्याचार हुए और देश पराधीन बना। इन सब दुष्ट चक्रों से बचाने के लिए भारतीय समाज को फिर से श्रद्धावान और पराक्रमी बनाना अति आवश्यक था। राम और कृष्ण जैसे आत्मनिष्ठ और शूर पराक्रमी आदर्शों ने भारत को फिर से देशनिष्ठ, समाजनिष्ठ और आत्मनिष्ठ बनाया। रामायण महाभारत का यह ऐतिहासिक कार्य है, न कि रामायण महाभारत का इतिहास है!

बौद्धमत का वैदिक जीवन पर परिणाम :

क्रिया-प्रक्रियाओं का परिणाम होकर उस द्वारा एक नया मंथित तत्व समाज धारणा के लिए अपने आप ग्रहण किया जाता है। वैदिक कर्मकाण्ड, यज्ञ संस्था में पशु-हत्या और स्वर्ग कल्पना के लिए यज्ञयाम इत्यादि अनावश्यक और अशास्त्रीय कल्पनाओं पर सतत बौद्धमत द्वारा प्रहार होने से वैदिक जीवन भी बहुत कुछ सुधारा गया। आज वैदिक परम्परा में न तो यज्ञ होते हैं, न तो यज्ञ में पशुहिंसा होती है और कर्मकाण्ड का बड़ेजाव होता है। यह सब परिणाम बौद्धमत के प्रहारों का है, यह बात माननी पड़ेगी। जैन मतावलंबी के सत्य अहिंसावादी होने से उनके प्रहार इतने कड़े नहीं थे जितने कि बौद्धों के थे। बौद्ध जैन समाज सब समय भारतीय समाज का एक अंग रहा इसलिए जैनमत प्रणाली से झगड़ने का भारतीय समाज को कोई कारण नहीं था। सिवाय जैनमत का प्रचार भारत के बाहर अगण्य-सा रहा इसलिये समस्त जैन समाज भारत राष्ट्र से सदा निष्ठा रखनेवाला था। पीला और नीला रंग मिलाने से हरित रंग बनता है जिसमें कि पीले और नीले रंग के कण स्थान-स्थान पर एकत्रित रहते हैं, उसी प्रकार बौद्धमत प्रहारों के कारण पशु-हिंसा और यज्ञ कर्मकाण्ड की तीव्रता भारतीय समाज में कम हुई परन्तु बौद्धमत के व्यक्ति-पूजा का परिणाम भारतीय समाज पर अजानते हुआ।

अब भारतीय समाज रामकृष्ण को बुद्ध जैसे ऐतिहासिक पुरुष मान कर उनकी बुद्ध जैसी पूजा करने लगा। रामकृष्ण के आदर्श हट कर भारतीय समाज अब केवल उनकी पूजापाठ में ही मशगुल रहने लगा। बौद्धमत का वैदिक समाज पर यह स्पष्ट परन्तु अनिष्ट परिणाम है, यह मानना पड़ेगा। बौद्धमत में जाति-व्यवस्था को स्थान नहीं था इसलिए बौद्धों ने जाति-व्यवस्था पर भी कड़ी आलोचना की थी। परिणामस्वरूप हर कोई अपनी जाति-व्यवस्था को उस प्रहार से बचाने के लिए अधिक जातिनिष्ठ बना। वैदिक काल में इस प्रकार जाति-निष्ठा नहीं थी जैसा कि आज है। आज की जातिनिष्ठा बौद्ध प्रचार का परिणाम है। एक समय बौद्धों में भी जातिनिष्ठाएँ पालन की जाती थीं, इसका उल्लेख इतिहास में मिलता है। इस प्रकार के बौद्ध ब्राह्मण का उल्लेख रामायणकार रावण द्वारा करते हैं, कारण रावण राज्य में चैत्यप्रसाद और बौद्ध स्तूप अनेक स्थानों पर दिखाये गये हैं जिसका विध्वंस भिक्खु हनुमान ही राम के लिए करता है। रामायणकार ने इन सब बानरों को भी ब्राह्मण बताये हैं जो कि

वेशमुद्रा से भिक्खु याने बौद्ध थे। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय भारत में बौद्ध और वैदिक मतावलम्बी परस्पर जाति-व्यवस्था माननेवाले और पाखंडी जीवन व्यतीत करनेवाले थे। उन सब पाखंडियों का मतहनन करना रामायण का कार्य था इसलिए वैदिक कर्मकाण्डी राम बौद्ध मतावलम्बी शबरी और हनुमानादि व्यक्तियों का सहारा लेकर न तो वैदिक और न तो बौद्ध जीवन से निष्ठा रखनेवाले रावण जैसे पाखंडी ब्राह्मण का वध करते हुए रामायणकार दिखाते हैं। रामायण में बौद्ध अथवा वैदिक मतों का झगड़ा नहीं परन्तु पाखण्डी जीवन को नष्ट करने का अथक झगड़ा है। रामायण-महाभारत ग्रंथ यदि बौद्धकाल के पूर्व लिखे जाते तो स्यात् संसार में बौद्धमत का उदय नहीं होता। रामायणकार पाखंड के और दिखावटी अध्यात्म के विरुद्ध थे न कि किसी मत के विरुद्ध !

कार्ल मार्क्स के ग्रन्थ का परिणाम संसार पर दिखाने के लिए हमारे भारतीय साम्यवादी सदा उत्सुक रहते हैं परन्तु रामायण-महाभारत का विश्व की पुनंरचना करनेवाला महान कार्य उनकी नजरों में नहीं आता है।

जैन-बौद्ध मत एवं रामायण :

साम्यवादी विचार परम्परा में विरोध, विकासवाद यह सामाजिक प्रगति का कारण भाव माना गया है। उस अनुसार बौद्धमत प्रस्थापित होने के लिए उस समय भारत में बौद्धमत को स्थान मिले इस प्रकार अवश्यमेव परिस्थिति होनी चाहिए, यह स्पष्ट है। पूर्व एवं मध्य वैदिक काल में समाज में उच्च आचर-विचारों का सामंजस्य था यह वैदिक वाङ्मय द्वारा और उस समय के कुछ इतिहास अन्वेषण द्वारा दीख पड़ता है। तत्वज्ञान वह जिसमें विचारों जैसा आचार होता है। और वह आचार-विचार भी समाज-स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभप्रद भी होने चाहिए। भड़कीले विचार समाज में कुछ समय रह सकते हैं परंतु उनकी व्यर्थता और अनिष्ठता ध्यान में आने के बाद उस समाज के कुछ विचारवान पुरुष जाग उठते हैं और कुछ विचार-मंथन भी करते हैं। उन विचार-मंथनों का परिणाम समाज पर होकर समाज से एक तीव्र आन्दोलन पैदा होता है जो कि समाज का पूर्ण मंथन कर एक नया समाज पैदा करता है। एक ही तरह की बात समाज में हर समय सदा के लिए रहेगी, ऐसा नहीं। समाज-परिवर्तनशील है और समय-समय पर समाज धारणा के लिए आवश्यक वह विचार और आचार समाज की धारणा बनाते हैं। एकाद महापुरुष उसी समाज-चिन्तन को आगे ले जाता है और सामाजिक

अस्त्रस्थता को बचा देता है। सन्त, महात्मा और महापुरुषों का जन्म इसीलिए होता है। ऐसे महामानवों की विचार-वाणी समाज के अन्य लोग सुनकर प्रभावित होते हैं और उन महामानवों की मृत्यु के पश्चात् उनका सत्य-कथन एक पंथ या सम्प्रदाय अथवा धर्मपंथ भी बन सकता है। फिर वह पंथ अपने ही समाज से विलग बनकर एक स्वतंत्र जीवन आरम्भ कर देता है। बौद्धमत के बारे में यही हुआ है। आज बौद्धमत एक हिन्दू विरोधी मंच बना हुआ दिखाई देता है। परंतु कोई भी तत्वज्ञान या पंथ-विरोध एवं द्वेष के विष पर कभी भी अधिक समय तक पाला नहीं जा सकता। आज का नवबौद्ध समाज इसी राह का राही बन रहा है, यह एक दुःखद सत्य है।

आखिरी वैदिक काल में याने उपनिषद काल के पश्चात् भारतीय समाज में यज्ञ-प्रक्रिया और कर्मकाण्ड इन पर अधिक जोर दिया जाता था जिससे स्वर्ग और नरक की कल्पना को बहुत महत्व मिल गया था। यज्ञ के नाम पर पशु-पक्षी, दूध-दही और घी आदि की आहुतियाँ देकर उसके द्वारा स्वर्ग प्राप्त करा लेने की कल्पना को बहुत प्रधानता मिली थी। यज्ञ में पशु-हत्या कर धर्म के नाम पर जिह्वालौल्य के लिए मांस भक्षण चल रहा था, यह दीखता है। आज यही हालत सब धर्मसम्प्रदायों में दीख पड़ती है। अन्य देशों में इस प्रकार के मांस-भक्षण के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठ सकी, कारण उन देशों का मुख्य आहार मांसाहार ही माना गया था। भारतीय जनता का मुख्य आहार पहले से ही अनाज अथवा फल सब्जी आदि का था। इसलिए अन्य देश की देखा-देखी भारत में भी जब यज्ञ द्वारा पशु-पक्षी के मांस का भोजन करना शुरू हुआ तब भारतीय जैन और बौद्धों ने पशु-हिंसा के विरूद्ध अपना प्रचार जारी रखा। बौद्ध मत मांसाहार के विरूद्ध नहीं था। बौद्ध केवल धर्म के नाम पर पशु-हिंसा करने के विरोध में थे। मांसाहारी रहकर भी कोई भी बौद्ध बन सकता था। यही कारण है कि बौद्धधर्म भारत के बाहरी मांसाहारी देशों में पनप सका।

जैनमत :

जैन मत में मांसाहार के बारे में कड़ा नियम था। जैन मत सच्चा अहिंसावादी रहने से कोई भी जैनी मांसाहार नहीं कर सकता था। यही कारण है कि जैन मत भारत छोड़कर अन्य देशों में नहीं बढ़ सका। वेदकाल से ही

ऋषियों के नाम के साथ जैन मुनियों का नाम सदा लिया जाता है। ऋषि का नाम लेते ही मुनि का नाम आता है इतना जैन मुनियों क. प्रभाव प्राचीन काल से ही भारतीय वैदिक जीवन पर था। इस पर से जैनमत कितना प्राचीन है, इसकी कल्पना आ सकती है। वैदिक काल में जैन मुनियों को बहुत आदर का स्थान था। परन्तु जैन समाज ने अपना मत कायम रखकर भी भारतीय समाज से अपना विलग अस्तित्व कभी नहीं किया। भारतीय समाज का एक अंग जैसा ही जैन समाज था। वेदकाल से चली आयी हुई संस्कृत भाषा जैनों ने अपनी ही भाषा मानी। संस्कृत में जिसे ज्ञान कहा जाता है इसका सही उच्चारण 'ज्याँन' ऐसा है। जो इस ज्याँन को प्रत्यक्ष जानता है उसे जैनी कहते थे। जैनी याने ज्ञानी है। वैदिक समाज का एक अंग इस नाते से जैन समाज सहस्रावधि वर्ष के अन्य भारतीय समाज के साथ रहा है। परन्तु कालान्तर से यह समाज अपने को मूल वैदिक समाज से स्वयं को विभिन्न मानने लगा, परंतु राष्ट्र-दृष्टि से जैनमत समाज आखिर तक अन्य भारतीय समाज के साथ ही था और आज भी है।

वैदिक काल में उच्च आचार-विचारों से परिपूर्ण ऋषि ब्रह्म जानने के कारण ब्राह्मण कहलाते तव्दत् अपने सुयोग्य मनन और चिन्तन से एवं वैराग्य-पूर्ण जीवन से समाज में मान्यता पानेवाले मुनि जैन समझे जाने लगे। वैदिक समाज में केवल ऋषि और ब्राह्मण मांसाहार नहीं करते थे परंतु सारा जैन समाज ब्राह्मण जैसा मांसाहार को वर्जित मानता है। जैन यह ब्राह्मण है। ब्रह्म जानने वाले सब ब्राह्मण कहे जाते थे। ब्राह्मणत्व की जातीयता बाद में प्राप्त हुई। अपने तत्वों के अनुसार अहिंसा, सत्य, अक्रोध, प्रेम और शुचि व्यवहार रखनेवाला एक ही समाज भारत में था और है, और वह है जैन समाज। ऋषियों की सन्तान कहलाने वाले वैदिक मांसाहार में रुचि लेने लगे परंतु जैन समाज अपने तत्वों पर दृढ़ था। अन्य वैदिक समाज का मांसाहार और अशुचि व्यवहार देखकर जैन समाज स्वयं को शुद्ध आचरण वाला रखने के लिए इतरजनों से अलग रखने लगा। जैन समाज सब प्रकार के स्वार्थ एवं लोभ से बहुत समय अलिप्त रहा। तुकाराम, कबीर जैसा कड़ा वैराग्य जैन समाज की विशेषता थी। जैन समाज एक आदर्श वैदिक समाज ही है, यह लेखक का मत है। परन्तु आज जैन मतावलम्वी अपना आदर्श छोड़कर अब धन, लालच, भोग, असत्य एवं मांसाहार के अधीन हो रहे हैं, यह भारतीय आदर्श की दृष्टि से अच्छी बात नहीं है।

बौद्धमत :

बौद्धमत प्रवाह जैनमत प्रवाह के बाद का होना चाहिए, यह दीखता है। इसके कारण भी अनेक हैं। जैन समाज ने अपनी भाषा उत्तर वैदिक समाज जैसी संस्कृत ही रखी थी। बौद्ध समाज ने अपनी भाषा संस्कृत से हटाकर पाली रखी थी। यह सब तदन्तर काल की अवस्था है। वैदिक समाज में स्वर्ग की कामना के लिए जो पशुहिंसा आदि का अनाचार हुआ था उसका विरोध अपने सौम्य शान्त स्वभाव से जैन मुनि कर ही रहे थे परन्तु उनका सौम्य विरोध समाज को सरल मार्ग पर लाने में असफल रहा। वह काम तदन्तर काल में उत्पन्न हुए बौद्ध मत ने अपनी कड़ी आलोचना द्वारा और वितंडवाद द्वारा किया। पशुहिंसा और आत्मानात्मवाद को समाप्त करने के लिए बौद्ध मत का निर्माण इसीलिए बाद में हुआ। बौद्धमत मांसाहार और सत्य के विरुद्ध नहीं था। स्वयं गौतम बुद्ध सूअर का मांस सेवन कर अतिसार से मरा, यह इतिहास में लिखा है। बाहर देश के सब बौद्ध मांसाहारी ही थे। चंगेज खां जैसा बौद्ध खून-खराबी करना अपना धर्म मानता था। वेदों ने आत्मा नामक अवस्था मानी परन्तु अपना मतपंथ कुछ अलग बनाने के लिए गौतम बुद्ध ने आत्मानात्म कल्पनाओं को दूर कर अपना अनात्मवाद प्रस्थापित किया।

गौतम अपने शिष्यों से यही कहता था। तुम्हें आत्मानात्म वितर्क से करना ही क्या है? तुम अपने दु,ख दूर करने की चेष्टा करके सबसे प्रेम का वर्ताव करो और मुझपर श्रद्धा रखो। बस इसमें सब धर्माचरण आ गया। संघं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि' यही तत्वज्ञान बौद्ध सम्प्रदाय में बाकी रहा। वास्तव में धर्म का आचरण बुद्धि द्वारा करो यह डंका पीटकर कहने वाला बुद्ध था। परन्तु कालान्तर से इस पंथ ने बुद्धि का आश्रय छोड़कर केवल संघ, कथित धार्मिक कल्पनाएँ और भगवान बुद्ध को आत्मा से और बुद्धि से भी बढ़कर श्रेष्ठ माना। बुद्धि द्वारा प्राप्त जीवन अब संघ, धर्म और बुद्ध में मस्त रहा। शाश्वत आत्मा का स्थान अब क्षणिक जड़ ऐसे बुद्ध शरीर ने लिया। बौद्धमत के अनुसार आत्मा नहीं माननी चाहिए। फिर बुद्ध की मृत्यु के पश्चात बुद्ध की आत्मा तो नहीं रही। फिर मुड़ो बुद्ध के जड़ शरीर पर और बनाओ बुद्ध के बाल पर, दांत पर, रक्षा पर, हड्डियों पर स्तूप और मन्दिर और करो उस जड़ का पूजन! बुद्ध एक महामानव अवश्य था परन्तु गौतम बुद्ध के पश्चात सारा बुद्ध समाज बुद्धि का सहारा छोड़कर केवल भावुक आचार-विचारों का और साम्प्रदायिक बना।

परिणाम यह हुआ कि आत्मा की ओर जाने वाली बुद्धि अब शरीर पर ही केन्द्रित की गई। शरीर भोग लालसा की तरफ अब बुद्धि जाने लगी और

गौतम बुद्ध के पश्चात बौद्ध जन गौतम बुद्ध का निर्लेप, निर्मोही, तपस्वी और प्रेममय जीवन भूलाकर भोगी, विलासी अकर्मण्यवादी और केवल शाब्दिक संसार में मस्त रहने लगा ! इस प्रकार पूरा भारत पराये आक्रामकों के लिए एक नन्दनवन बन गया। परिणामतः बौद्धमय भारत पर बाहर के लोगों ने आक्रमण करने शुरू किये। गौतम बुद्ध की सीख के अनुसार पराये शत्रुओं पर भी करुणा और प्रेम दिखाया गया। परन्तु यह करुणा और प्रेम वास्तविक नहीं था, दुर्बलता के कारण था। आक्रामकों को अच्छा स्थान और लोग मिले। आक्रमण बढ़ते गये और एतद्देशीय जनों के प्रेम-व्यवहार के कारण वे अब भारत में अपनी निष्ठाओं को लेकर रहने लगे। अपनी पुरानी निष्ठा त्यागने वाले नवनिष्ठ अपनी वह नवनिष्ठा त्यागकर आक्रामकों की निष्ठा ग्रहण करने लगे। मुस्लिम सम्प्रदाय बढ़ता गया और साथ ही साथ क्रूरता, बलात्कार और देश-विद्रोह भी।

ऐसे भविष्यकाल को निहारने वाले महापुरुष ने ठीक समय पर रामायण ग्रन्थ लिखा। रामायण के पग पर पग डालने वाला दूसरा ग्रन्थ महाभारत भी लिखा गया। समाज का चित्र बदला गया और ग्रीक, यमन, शक, हूण, हूर आदि बर्बरों को परास्त कर अनेकों को भारतीय समाज में समाविष्ट किया गया। रामायण-महाभारत का सन्देश लेकर अब भारतीय अन्य देशों में जाकर व्यापार आदि बढ़ाने लगे। सांस्कृतिक गोष्ठियों का आदान-प्रदान होने लगा। वैदिक गरिमा संसार के कोने-कोने में प्रकाशित होने लगी। संसार फिर से एक बार वैदिक बन राम कृष्ण का आदर्श मानने लगा। राम और कृष्ण संसार के महापुरुष बने। परन्तु यह सुवर्णयुग भी अधिक समय न रहा। ईसाई मत का प्राबल्य हुआ और यूरप के लोग राम कृष्ण को छोड़ ईसा को सर्वस्व मानने लगे। फिर आया मुस्लिम धर्म मत। पुरानी श्रद्धा, कल्पना, वास्तु एवं समाज-धारणा की सब कल्पनाएँ बलात् नष्ट की जाने लगीं। तलवार एवं द्वेष के भरोसे नव समाज का निर्माण किया गया। अपने देश के पूजनीय जन त्याग कर पराये देश के जनों पर प्रेम और श्रद्धा रखना सिखाया गया। बुद्ध का बुद्धिप्रधान मार्ग भी अब अबुद्ध बन बैठा। फिर आये अंग्रेज। वे भी आज अपना घर सम्हालने में व्यस्त हैं। संसार के बुद्धिमान जन अब भारत की ओर आध्यात्मिक एवं मानसिक सुख-शान्ति के लिए बहुत आशा से देख रहे हैं। उनका समाधान कर उन्हें मनःशान्ति देना भारतीयों का परम कर्तव्य है। यह कर्तव्य वे रामायण-महाभारत द्वारा कर सकते हैं, परन्तु उन ग्रन्थों का सही आशय बताकर ही !

गलत तरीका :

कुछ लोग ईसाई अथवा मुसलमानों को भारतीय राम और कृष्ण की लीलाएँ सुनाकर भारतीय बनाना चाहते हैं। परंतु उनके सन्मुख उनकी श्रद्धा के अनुसार प्रत्यक्ष ईसा और मुहम्मद रहते हुए वे अपने श्रद्धा-स्थानों को छोड़कर उसी प्रकार के अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियों पर क्यों श्रद्धा रखें ? एक स्त्री अपने पति के साथ सुख से रहती है। दूसरा आकर उस स्त्री को अपने पूर्व पति को त्यागकर उसके साथ संसार करने के लिए कहता है। पहला पति यदि उसके लिए ठीक है तो वह अपने अच्छे पति का त्याग कर उस पराये व्यक्ति से क्यों पति जैसा व्यवहार करे ? और यदि वह करती है तो वह स्त्री कुलटा मानी जानी चाहिए। हर धर्मपंथ के उद्घाता उन धर्मपंथों को मानने वालों के लिए अच्छे ही होते हैं। उस धर्मपंथ के लोग यदि यह जानेंगे कि उनके पंथ या मजहब जैसे राम और कृष्ण प्रत्यक्ष ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं वरन आध्यात्मिक आदर्श हैं तबही वे वैदिक परम्परा की ओर आकृष्ट हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। यदि केवल मानना ही है तो कोई भी किसी को मान सकता है। मानना और प्रत्यक्ष सत्य जानना इसमें बहुत अन्तर है। वैदिक परम्परा में केवल अन्धविश्वास मानना और नहीं है वरन् सत्य जानने की चेष्टा करना है। क्या ईसा, महम्मद और बुद्ध को मानने से जीवन का सत्य प्राप्त होगा ? सत्य प्राप्त होता है शास्त्रीय चेष्टा से और शुद्ध आचार-विचार से। रामायण और महाभारत ने यह सत्य अपनी कथारूप भाषा में लिखा है।

उस मार्ग से जाने वाले राही को कौन-सी अड़चनें और आपत्तियाँ आ सकती हैं और उनसे छुटकारा पाने के लिए कौन-से यत्न करना आवश्यक है इसका सुन्दर कथारूप तफसील याने रामायण ग्रंथ है। परन्तु उन कथाओं का सत्य संसार के सन्मुख लाना परम आवश्यक है। केवल राम कृष्ण का संकीर्तन अथवा गुणगान करने से सत्य नहीं प्राप्त होगा ! जैसा कि वृथा अभिनिवेश रखकर अल्ला कहने से अल्लाह नहीं प्राप्त होगा। राम, कृष्ण और अल्लाह शुद्ध अन्तःकरण की उच्च अवस्था है। वह कैसे प्राप्त किया जाय इसका विज्ञान और ज्ञान रामायण में लिखा है, परन्तु कथारूप में। उस सत्य ज्ञान को हम स्वयं जानें और उस ज्ञान को हम सारे संसार को बतायें।

सही तरीका :

मूर्ति पर लगातार सिन्दूर लगाने से कई सालों के बाद उसपर घने सिन्दूर की एक खाल-सी आ जाती है जिससे कि मूल मूर्ति का स्वरूप और सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। सिन्दूर लेपन फिर बूरा आकार लेकर बाह्य उष्णता आदि के कारण फट भी जाता है। ऐसे भद्दे लेपन या खाल को हटाने की एक धार्मिक एवं शास्त्रीय विधि रहती है उस विधि द्वारा खाल हटाने से फिर

मूर्ति का मूल सुन्दर स्वरूप दीख सकता है। उसी प्रकार सतत अशास्त्रीय एवं काल्पनिक कल्पनाओं के लेप रामायण महाभारत पर सदियों से इतने चढ़ाये गये हैं कि रामायण-महाभारत का मूल सौन्दर्य नष्ट होकर वह एक आकारहीन आशय शून्य ढांचा बन गया है। इन महान ग्रन्थों का मूल सौन्दर्य और आशय तब ही ज्ञात होगा जबकि उनपर लगाई हुई खाल खींचकर नीचे गिरायी जाय, तब कहीं रामायण का सुन्दर अमर सत्य संसार के सामने आयेगा। बेढंगे खाल-छेदन का कार्य लेखक कर रहा है। इस महान कार्य के लिए बुद्धिमान एवं सत्यान्वेषी लोग अपना सहकार्य दें, यह विनम्र निवेदन है।

रामायण के अनुसार महाभारत रहस्य भी लिखने का विचार है। परंतु अड़चनें कई हैं। एक तो यह कि स्वीकृत 'वैदिक विश्व' के कार्य को करने के लिए लेखक को सारे भारत में सदा परिभ्रमण करना पड़ता है। बहुत समय इसी में चला जाता है। फिर आर्थिक अड़चन भी अपना महत्व रखती है। रामायण महाभारत पर प्रेम रखने वाले संसार के सज्जन इस एकल यत्न को अपने हाथ बढ़ाकर सहस्त्र कर बनायें यह निवेदन है। रामायण-महाभारत ग्रन्थ पूर्व जैसे इस आशय को लेकर संसार की सभी भाषाओं में हो, इतना इन महान ग्रन्थों का मानव जाति के लिए महत्व है। अबतक इस प्रकार की रामायण वाल्मीकि रामायण के बाद लिखी नहीं गयी है, यह सब ज्ञान सकते हैं। उस महान ग्रंथ का सत्य आशय संसार के कोने-कोने में और घर घर में पहुँचे, यही मन की आखिरी कामना है। प्रभु रामचन्द्रजी के इस सेतु पर उस गिलहरी जैसा एक कंकड़ लेखक रख रहा है, बाकी अपना-अपना काम करेंगे, यह आशा है। सन्त योगी ज्ञानेश्वर महाराज की कृपा से लेखक यह रामायण का ज्ञान प्रस्तुत कर रहा है, इसमें लेखक को कोई सन्देह नहीं है। सन्त श्रेष्ठ तुकाराम महाराज कहते हैं—'फोडा यह भण्डार। धनी का यह भाल। मैं तो हमाल। भारबाही ॥' ऋषि-मुनियों का लिखा परम ज्ञान योगी सन्त ज्ञानेश्वर माउली की कृपा से जो प्राप्त किया है उसकी हमाली लेखक कर रहा है।

अन्त में रामायणकार कहते हैं उसी प्रकार हो।

'यः पठेच्छृणुयान्नित्यं चरितं राघवस्य ह।
भक्त्या निष्कल्मषो भूत्वा दीर्घमायुर वाप्नुयात् ॥'

॥ रामायण ७।१११।१९ ॥

जो मानव प्रतिदिन भक्तिभाव से रामचरित सुनेगा अथवा पढ़ेगा वह निष्पाप होकर अमर जीवन प्राप्त करेगा।

इतिशम्।

—लेखक

प्रथम अध्याय

अनेकों ने अनेक रामायण लिखे हैं परन्तु उन सबों का मूल आधार बाल्मीकि रामायण है यह सर्वज्ञात है। उत्तर भारत में घर-घर पढ़ा जाने वाला तुलसीदासजी का मानस चरित रामायण ग्रन्थ ऋषि वाल्मीकि की मूल रामायण का मध्यकालीन अवतार है। कुछ जानकार लोग कहते हैं कि सद्य रामायण लिखने के पूर्व तुलसीदासजी ने अपना एक 'घटरामायण' नामक ग्रन्थ लिखा था जो कि वाल्मीकि रामायण का सच्चा आशय लेकर दर्शाना था, इसीलिए उन्होंने उसका नाम घट रामायण रखा था। घट माने पिंड। ग्रान्थ लिखने के पश्चात् तुलसीदासजी ने अपना ग्रन्थ काशी के विद्वानों को पढ़कर बताया। ग्रन्थ में यौगिक प्रक्रियाओं का स्पष्ट स्पष्टीकरण था जिससे कि रामजीवन ऐतिहासिक नहीं लगता था। यह बात काशी के साक्षी पण्डित नहीं मान्य कर रहे थे। रामजीवन ऐतिहासिक देश का ही चाहिये यह उनका आग्रह और अट्टाहास था। इसलिए काशी के पण्डितों ने तुलसीदासजी के घटरामायण को कड़ा विरोध दर्शाया और यदि वे अपना घटरामायण प्रचरित करते हैं तो उनका वह ग्रन्थ वे नहीं पनपने देंगे इस प्रकार की धमकियाँ काशी के पण्डितों ने तुलसीदासजी को दी थीं। फलस्वरूप तुलसीदासजी को अन्य रामायण लिखनी पड़ी जो कि आज सर्वदूर प्रचलित है। अन्य स्थानों में इस प्रकार की घट रामायण लिखने का किसी ने यत्न किया था, ऐसा नहीं दीखता है।

गत शताब्दी में वासुदेवानन्द सरस्वतीजी ने अपनी नवम् श्लोकी रामायण प्रचारित की थी परन्तु उसके समकालीन शास्त्री पण्डितों ने उनकी

रामायण दबाकर रखा और उसको अनुल्लेख द्वारा नष्ट-सा किया। फलस्वरूप वासुदेवानन्द सरस्वती की रामायण आज कोई भी नहीं जानता है। ऐसा सुना जाता है कि उस समय के ब्रह्मवृन्दों ने वासुदेवानन्द सरस्वती को जाति-बहिष्कृत किया था। महात्मा गांधीजी ने उसी प्रकार यंग इन्डिया १२ नवम्बर १९२५ के अंक में महाभारत के बारे में लिखा था जो कि इस पुस्तक की शुरूआत में उद्धृत किया गया है। महात्मा गांधी यद्यपि सारे भारत के महान नेता माने जाते थे तो भी उनका रामायण एवं महाभारत के बारे में लिखा हुआ मत हमारे विद्वानों ने और शास्त्री पण्डितों ने इस प्रकार अनुल्लेख से छिपाया है कि महात्माजी का वह मत आजकल कोई नहीं जानता है। सारे उत्तर भारत में रामायण एक ऐतिहासिक घटना है इस नाते से झूमझूम कर पढ़ते हैं और सुनाते हैं। महात्मा गांधीजी सत्य के पुजारी थे यदि वे चाहते तो अपना रामायण महाभारत का मत वे भारतीय जनता के गले अवश्य उतारते परन्तु भारत की स्वाधीनता का जंग छिड़े रहने के कारण उन्हें इन बातों के लिए समय नहीं था और उनका रामायण-मत आज लुप्त-सा हो गया है। गांधीजी रामायण महाभारत को इतिहास नहीं मानते थे बल्कि आध्यात्मिक आदर्श मानते थे।

वाल्मीकि, वासुदेवानन्द सरस्वती एवं महात्माजी का वह अधूरा कार्य लेखक कर रहा है। इस महान सत्य को उद्घाटित करने से क्या-क्या आपत्तियाँ आ सकती हैं इसकी क़ल्पना लेखक को है। परन्तु सत्य के लिए वह सब आपत्तियाँ झेलना ही तो अध्यात्म का काम है। लेखक उसके लिए सहर्ष तैयार है। प्रस्तुत ग्रन्थ के शुरू में वाल्मीकि रामायण के आवश्यक श्लोक उद्धृत कर फिर उसका सत्याशय बताकर टीका की जायेगी। इसमें मूल-वाल्मीकि रामायण फिर से जनता के सन्मुख आकर उसका सही आशय भी जनसामान्य जान सकेंगे। वाल्मीकि रामायण के सम्पूर्ण २४००० श्लोक उद्धृत कर उसपर भाष्य करना इस ग्रन्थ की कक्षा के बाहर की बात है। उसके लिए वाल्मीकि रामायण से भी कई गुना अधिक विशाल ग्रन्थ मालिका लिखनी पड़ेगी। लेखक का वयस और धन-समय आदि का विचार करते हुए लेखक वह विशाल कार्य कर सकेगा, ऐसा नहीं लगता है। उस प्रकार महान धाउस करने वाले भविष्यकालीन लेखक एवं विद्वानों के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ एकाद पथदर्शक जैसे अवश्य रह सकता है। वाल्मीकि रामायण में है वैसा ही अनुक्रम प्रस्तुत ग्रन्थ में रखा जायगा। प्रचलित रामायण ग्रन्थों में लिखे अनुक्रम से वह भिन्न रहेगा परन्तु जो सही है वह लिखना पड़ेगा ही।

प्रस्तुत ग्रन्थ यदि लोकप्रिय बन जाय तो आज जिस प्रकार रामायण पर प्रवचन चलते हैं वह सब बन्द होकर रामायण का सत्याशय बताने वाले सच्चे आध्यात्मिक साधक ही रामायण पर कुछ प्रवचन दे सकेंगे। अन्य ढकोसले और दिखावटी विद्वता एकदम बन्द पड़कर ऐसे जनों की रोजी रोटी और विद्वता का अहंकार भी चलना मुश्किल हो जायेगा। परन्तु आर्त जनता जनार्दन की सच्ची आध्यात्मिक रोटी उन्हें अवश्य मिलेगी जो कि आज के वैज्ञानिक युग के लिए परम आवश्यक है। बार-बार यही बताना है कि रामायण ग्रन्थ केवल हिन्दुओं का ही नहीं वरन् संसार के सभी मानवों का आध्यात्मिक आदर्श है जो कि आज तक हमारे शास्त्री पण्डितों ने और कथित विद्वानों ने छिपाकर रखा था। संसार के सारे देश हिन्देशिया जैसे रामायण देश बने फिर भले ही वह देश मुस्लिम हो, ईसाई हो अथवा इजराइली हो।

यह सब करते समय सामान्य बुद्धि वाले लोग भी इस रहस्यमय उद्घाटन को ठीक से समझें यह देखना पड़ेगा। इसलिए जहाँ जहाँ आवश्यक है वहाँ पुराने रामायण के ढंग का भी स्वीकार किया गया है। कथाओं का आशय लेकर उसमें क्या आशास्त्रीयता एवं दोष हैं यह दिखाकर पाठक को रामायण का सही आशय बताने की चेष्टा की गयी है। त्रुटियाँ रह सकती हैं जो कि पाठक उदार अन्तःकरण से माफ करेंगे। इस प्रकार इससे भी अच्छी रामायण शीघ्र लिखी जाय, ऐसी इच्छा है। वह इच्छा भविष्यकाल पर सौंप कर हम अपने रामजीवन की शुरूआत करें।

वाल्मीकि विरचित श्रीमद्वारायण

बालकाण्ड

प्रथम अध्याय

शोचन्नेव पुनः क्रौञ्चीमुपश्लोकमिमं जगौ ।
पुनरन्तर्गत मनाभूत्वाशोक परायणः ॥१।२९।२॥
तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन्मुनिपुंगवम् ।
श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्याविचारणा ॥१।३०।२॥

उपरनिर्दिष्ट श्लोकों में लिखा है कि रामायण जैसा अद्वितीय महाकाव्य लिखने की स्फूर्ति वाल्मीकि ऋषि को कैसे मिली । एक व्याध ने मिथुन पर रहनेवाले क्रौञ्च पक्षी को तीर से मारा । उसकी प्रेयसी उसके लिए आक्रोश एवं शोक कर रही थी । उसके दुःख-शोक को देख कर मुनि पुंगव वाल्मीकि के हृदय में दारूण शोक उत्पन्न हुआ । उसके दारूण शोक की ओर देख कर ब्रह्माजी ने वाल्मीकि को सुझाया कि उस प्रसंग को लेकर वाल्मीकि द्वारा जो काव्यरचना होगी उसे श्लोक कहा जाय । यहाँ ब्रह्मा याने कोई अन्य व्यक्ति नहीं होकर वाल्मीकि के अन्तःकरण में स्थित आत्मा है । इससे यह स्पष्ट है कि रामायण काव्य-रचना के लिए वाल्मीकि के मन में ऐतिहासिक रामजीवन नहीं वरन् क्रौञ्ची पक्षिणी का दारूण शोक था । तद्वत् इस स्थान पर वाल्मीकि स्वयं को फिर से एक बार मुनि पुंगव कहते हैं, यह ध्यान में रखना आवश्यक है । रामायण जैसा आध्यात्मिक ग्रंथ लिखने के लिए रामायण-लेखक को केवल इतिहासकार नहीं वरन् मुनि पुंगव, वाग्विदांवरम्, तपस्वी, स्वाध्यायनिरत बनना पड़ता है जोकि पहिले ही श्लोक में लिखा है । इससे यह स्पष्ट है कि रामायण इतिहास नहीं वरन् आध्यात्मिक आदर्श ग्रंथ है ।

अपनी ग्रंथ-रचना के बारे में रामायणकार को यह नितान्त विश्वास था—

यावत्स्थास्यान्ति गिरयः सरितस्च महीतले ।
तावद्रारामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥१।२।३॥

आशय यह कि जब तक इस धरातल पर भाषा का प्रवाह बहता रहेगा तब तक रामायण प्रचार में रहेगी । और बात सच है । जड़वादी रूसी भी

अपने देश में रामायण का नाट्यप्रयोग बड़े प्रेम से करते हैं कारण रामजीवन उन्हें आदर्शवत् लगता है। उस समय ऋषिमुनि काषाय वस्त्र पहन कर अपने माथे पर चौल याने बाल रख कर उन्हें अच्छी ढंग से बाँधते थे, यह दीखता है। देखिये—

काषायमपरो वस्त्रं चीरमन्यो ददौ मुनिः।
जटाबन्धनमन्यस्तु काष्ठरज्जुं मुदान्विता ॥१।३।२३॥

ऋषिमुनियों को छोड़ कर इतरजन माथे पर मुक्त केशसंभार रखते होंगे यह दीखता है और इसीलिए देवताओं का चित्र निकालते समय उनका केशसंभार मुक्त दिखाया जाता है। अब अयोध्या नगरी का वर्णन देखिये—

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोक विश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयं ॥१।४।६॥

आशय यह कि अयोध्या नगरी की स्थापना मनुद्वारा याने मनद्वारा हुई थी। जिसे मन है उसे मनु अथवा मानव कहते हैं। यह मन हम सबों में स्थित है जोकि सदा दोलायमान और वृत्तियों के युद्ध से पीड़ित रहता है। वह चञ्चल मन शान्त होकर निर्द्वन्द्व और वृत्ति युद्धहीन हो जाता है तब उसे रामायणकार अयोध्या कहते हैं। अयोध्या याने जिसमें युद्ध नहीं, ऐसा शान्त मन जो कि मनु ने रचा था। चित्त की शुद्ध अवस्था याने अयोध्या नगरी है।

दशरथ :

तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्र विवर्धनः।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा ॥१।६।९॥

अयोध्या नगरी का राजा दशरथ था और वह अपनी पुरी का इन्द्र जैसे कार्यभार सम्हालता था। वह अपने महाराष्ट्र राज्य का विवर्धन करता था। इससे यह स्पष्ट है कि महाराष्ट्र शब्द रामायणकाल से चलता हुआ आया है। आज के महाराष्ट्र का रामायणकाल से क्या सम्बन्ध था, इसका शोध विद्वान करें। यह अयोध्या नगरी दस योजन लम्बी और दो योजन चौड़ी थी। इससे यह स्पष्ट है कि अयोध्या याने दशेन्द्रियों के दस योजन एवं मन और बुद्धि ऐसे मिला कर दो योजन द्वारा साकारित की गई थी। योजना शब्द से योजन शब्द साकारा गया है। अब उस नगरी का अधिपति

दशरथ कौन है, यह देखा जांय। उपनिषद शरीर और इन्द्रियों को रथ कहते हैं। जैसे—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।। एक इन्द्रीय का स्वामी एक रथ तो दस इन्द्रियों का स्वामी दशरथ है। इसी दशरथ रूप पिण्ड का आत्मानन्द रूप राम पुत्र है। इसीलिए राम को दाशरथी कहा गया है। योगीजनों के चित्त में रमनेवाले आत्मानन्द को राम कहते हैं। शास्त्र कहते हैं—'रमन्ते योगिनः यस्मिन रामः' अथवा 'रमयति इति रामः।' साधक दशरथ यज्ञरूप से साधना करेगा तब उसे आत्मानन्द रूप राम पुत्र की प्राप्ति अवश्य होगी। वही आत्मानन्द याने दशरथ पुत्र भगवान रामचन्द्र है।

अयोध्यापुरी में कामी पुरुष नहीं थे, ऐसा रामायणकार कहते हैं— 'कामी वा कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् ।।'१।६।८ ।।' परन्तु स्वयं रामायणकार ही आगे चलकर कैकेयी की कामवासना में वश होकर भगवान राम को वनवास जाने के लिए बाध्य करते हैं, यह दशरथ पर आरोप लगाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि राजा दशरथ का वह काम आशुक-माशुक का काम न होकर साधना-क्षेत्र की अन्य आसक्ति होनी चाहिए। और वैसी वह है जो कि आगे चलकर देखा जायेगा। राजा दशरथ को सलाह देने के लिए अष्ट प्रधान थे। यह अष्टप्रधान याने अष्टांगयोग की अष्ट साधनाएँ हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि, यह हर साधकरूप दशरथ के अष्ट मंत्री अथवा प्रधान हैं। दशरथ की तीन रानियाँ थीं। तीन रानियाँ यानी तीन प्रकार की वृत्तियाँ हैं, सत्व, रज एवं तमस्। कुशलता से साधना करने वाली वृत्ति कौशल्या थी, कायाभाव से ऊपर रहने वाली दूसरी वृत्ति रानी कैकेयी थी एवं सब प्राणिमात्रों से मित्र भाव से वर्ताव कर सकने वाली तीसरी वृत्ति रानी सुमित्रा थी। दशरथ राजा इस प्रकार अयोध्या में सुख-समाधान से रहता था परन्तु जीवन के इस प्रकार अनेक साल बीतने के बाद भी राजा को पुत्र-प्राप्ति नहीं होती थी। अनेक साल लगातार सुयोग्य साधना करने के बावजूद भी यदि साधक को आनन्द प्राप्त नहीं होता है तो साधक बेचैन हो जाता है। साधना प्राप्त आनन्द, विवेक, वैराग्य और समभाव यदि साधक को नहीं प्राप्त होता है तो साधना-जीवन बेकार है। राम याने आनन्द (रमयति इति रामः) लक्ष्मण याने विवेक (लक्ष्यम् अनः=लक्ष्मणः), भरत याने वैराग्य ज्ञान (भा याने प्रकाश अथवा ज्ञान और उसमें रत होने वाला ज्ञानी याने भारत-भरत है) जिसे कोई भी शत्रु नहीं है याने जिसने

अपने मन से शत्रुत्व की भावना हटा ली है, मारी है (घ्न) उसे शत्रुघ्न कहा है। यही चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न राजा दशरथ को पुत्रकामेष्टि यज्ञ द्वारा प्राप्त होते हैं।

गुरू वसिष्ठ ने राजा दशरथ को पुत्र-प्राप्ति हेतु पुत्रकामेष्टि यज्ञ करने के लिए बताया, 'सुतार्थं वाजिमेधेन किमर्थं न यजाम्यहम् ॥ १।२।८ ॥' ऊपर ऊपर भी यदि विचार किया जाय तो पुत्र-प्राप्ति के लिए बेचारे गरीब जानवर घोडे का गला घोंटकर कर दशरथ राजा को कैसे पुत्र-प्राप्ति हो सकती है, यह बात ध्यान में नहीं आती। परन्तु यह अश्वमेध क्या है, यह बात शीघ्र ही ध्यान में आ जायेगी। अश्वमेध यज्ञ करने के लिए सरयू किनारे का उत्तर भू भाग निश्चित किया गया। 'सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥ १।८।१५ ॥' अब सरयू याने क्या है यह देखें।

तस्मात्सुस्राव सरसः सायोध्यामुपगूहते।
सरः प्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्म सरश्च्युता ॥ १।२४।९॥

आशय सरल है। ब्रह्म की ओर ले जाने वाले चित्त-प्रवाह को रामायणकार सरयूः कहते हैं। यही सरयू नदी का प्रवाह अयोध्या नगरी के पास से बह रहा था। इस सरयू-प्रवाह के याने साधना-प्रवाह के उत्तर तीर पर याने साधना की उत्तर अवस्था में साधक का चित्त अपने आप परिपक्व बनकर उसे ब्रह्मानंद याने पुत्र-प्राप्ति अवश्य मिलेगी। इसलिए राजा दशरथ को रामरूप पुत्रप्राप्ति हो इसलिए गुरु वसिष्ठ दशरथ को सरयू के उत्तर तीर पर पुत्रकामेष्टि यज्ञ करने के लिए बताते हैं। पुत्रकामेष्टि यज्ञ के साथ साथ अश्वमेध यज्ञ भी करने को बताया गया। अब वशिष्ठ कौन यह भी देखा जाय। साधना के लिए जो इष्ट वृत्तियाँ साधक में बसना आवश्यक है उस प्रकार के उत्तम इष्ट वृत्तियों की बस्ती को ही रामायणकार गुरु वसिष्ठ कहते हैं। इस प्रकार की इष्ट वृत्तियाँ साधक दशरथ की अवश्यमेव गुरु रहनी चाहिए। इसलिए पुत्रकामेष्टि यज्ञ के साथ अश्वमेध करने के लिए गुरु वसिष्ठ राजा दशरथ को कहते हैं। परन्तु वह अश्वमेध यज्ञ सरयूरूप साधना जीवन की उत्तर अवस्था में हो। यही सरयू का उत्तर तीर है।

पुत्रकामेष्टि यज्ञ का सम्पादन करने के लिए विभाण्डक ऋषि का पुत्र ऋष्यशृंग को बुलाया जाता है। भण्ड याने धूर्त और भाण्डक याने धूर्तता से व्यवहार करने वाला व्यक्ति। इसीसे विभाण्डक शब्द उत्पन्न हुआ है। विभाण्डक याने सरल स्वभाव वाला साधक। इसलिए विभाण्डक ऋषि कोई ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं वरन् आध्यात्मिक साधक की निरागस विशुद्ध

अवस्था है। विभाण्डक ऋषि साधक की सरल स्वभाव वाली वृत्ति अवस्था होने से विभाण्डक का पुत्र ऋष्यशृंग भी उसी प्रकार साधक की निरागस विशुद्ध उच्च अवस्था होनी चाहिए। ऋष्यशृंग याने ऋषियों में जो शृंग जैसी उच्च अवस्था में है इस प्रकार का उच्च आध्यात्मिक साधक। इस प्रकार का उच्च ऋषि तुल्य साधक-ही आत्मा रामरूप आनन्द की प्राप्ति के लिए याने पुत्रकामेष्टि यज्ञ का मुख्य होता बनने के लिए सुयोग्य हो सकता है। इसलिए इस प्रकार के ऋष्यशृंग ऋषि को पुत्रकामेष्टि यज्ञ का होतात्म स्वीकारने के लिए निमन्त्रित किया जाता है।

ऋष्यशृंग बाल ब्रह्मचारी थे। वह अपना आश्रम याने अवस्था छोड़कर कहीं भी नहीं जाया करते थे। परन्तु उन्हें यज्ञ के लिए बुलाना परम आवश्यक था। ऐसे परम उच्च अवस्था प्राप्त ऋषि को कैसे बुलाया जाय? युक्ति की गई। राजा दशरथ ने उसके लिए एक खास योजना बनायी। ऋष्यशृंग को मोह में फाँसकर अयोध्या में लाने के लिए राजा दशरथ ने एक बार वनिताओं का वृन्द विभाण्डक ऋषि के आश्रम की ओर भेजा। उन वेश्याओं में एक उत्तम गाने वाली वारवनिता थी जिसने ऋष्यशृंग को अपना नादब्रह्मरूप गायन सुनाकर मोहित कर अपने पीछे पीछे उसे आकर्षित कर अयोध्या में लायी थी। उसी प्रकार किया गया। ऋष्यशृंग ने कभी भी स्त्रियों को नहीं देखा था कारण कि वह बाल ब्रह्मचारी था। उन सुन्दर बारवनिताओं को देखकर ऋष्यशृंग मोहित हो गया। क्या एक बाल ब्रह्मचारी उच्च ऋषि वेश्याओं को देखकर लुभाया जा सकता है? हाँ, रामायणकार वैसा लिखते हैं। ऋष्य-शृंग की यह विचित्र अवस्था देखकर मुख्य वारवनिता, जो कि उत्तम राधिका थी उसने अपना मन को मोहित करने वाला स्वर्गीय गायन शुरू किया।

'गणिकाः तत्र गच्छन्तु रूपवत्यः सलंकृताः।
प्रलोभ्य विविधोपायैरानेष्यन्तिह सत्कृताः॥ १।१०।५॥'

बस औषध मात्रा लागू पड़ी। ऋष्यशृंग अपने माता-पिता और आश्रम का त्याग कर धीरे धीरे बारवनिता सह अयोध्या की तरफ खींचा गया। फिर यह वेश्याएँ कौन-सी होनी चाहिए?

ऋष्यशृंग याने साधक की उच्च अवस्था और अयोध्या याने चित्त की निर्व्दन्द्व अयुद्ध समान अवस्था है। बुद्धिमान पाठक इन बारवनिताओं का और उनके प्रधान गायिका का पता लगा सकते हैं। निर्व्दन्द्व चित्त की ओर ले जाने वाली वृत्तिहीन परन्तु साधना में चित्त को मोहित करने वाली अवस्थाएँ यानी वह बारवनिताएँ हैं और उनमें से मुख्य बारवनिता का मधुर गायन

याने ब्रह्मानन्द की ओर ले जाने वाला अनाहत नाद है। इस प्रकार के आध्यात्मिक रूपकात्मक काव्य में इतिहास खोजना व्यर्थ है अन्यथा इस कथा का सही ऐतिहासिक आशय लगाने पर वैदिक ऋषियों के जीवन पर कलंक लगाया जा सकता है जो कि परधर्मी और पाखंडी जन सदा अपने लेखन और प्रश्नों द्वारा चेष्टा करते हैं। रामायण का यह दिव्य आध्यात्मिक अर्थ समझकर ऐसे धूर्त पाखंडी अपने आप निरूत्तर और शान्त हो जायेंगे।

इस प्रकार अपने स्वर्गीय अनाहत गायन द्वारा मोहित कर दशरथ राजा द्वारा भेजी हुई वेश्याएँ ऋष्यशृंग को निर्द्वन्द्व मनरूपी अयोध्या में खींच लाती हैं। परंतु ऋष्यशृंग ब्रह्मचारी थे और ब्रह्मचारी व्यक्ति यज्ञ का पौरोहित्य नहीं कर सकता, ऐसा वैदिक परम्परा में धार्मिक नियम होने के कारण ब्रह्मचारी ऋष्यशृंग का विवाह करना परम आवश्यक था। यज्ञ जैसे पवित्र धर्म-कार्य का सम्पादन करने में ब्रह्म का आचरण करने वाले ब्रह्मचारी को स्थान नहीं था, यह वैदिक परम्परा की विशेषता है। यज्ञ करना याने कुछ चाहना है। जो ब्रह्म का आचरण करने वाले हैं वे किसी से कुछ भी नहीं चाहते हैं इसलिए इस प्रकार निष्काम आचरण वाले ब्रह्मचारी यज्ञ का पौरोहित्य नहीं कर सकते थे। ऋष्यशृंग ब्रह्मचारी थे इसलिए यज्ञ का पौरोहित्य अथवा होतात्म करने के लिए उनका विवाह करना आवश्यक था। ऋष्यशृंग के लिए एक शान्ता नामक लड़की खोजी गयी जो कि राजा दशरथ की दत्तक पुत्री थी। ऋष्यशृंग से शान्ता का विवाह किया गया। शान्ता याने शान्त-वृत्ति। साधक शान्त-वृत्ति धारण नहीं करता है तबतक उसे आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता है। यह आत्मानन्द रूप राम प्राप्त करने के लिए ही पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया जाता है जिसका होतापन ऋष्यशृंग को दिया गया।

वैदिक परम्परा में सब ऋषि-मुनि विवाहित बताये गये हैं इसका रहस्य यह है कि विवाह के पश्चात भी साधक ब्रह्म का आचरण कर ब्रह्मचारी बन सकता है। 'ब्रह्म आचरति इति ब्रह्मचारी' यह ब्रह्मचारी शब्द की परिभाषा है। इस ब्रह्मचर्य पालन के लिए ऋष्यशृंग का विवाह राजा दशरथ की एक दासी पुत्री से किया गया।

पुत्रकामेष्टि एवं अश्वमेध यज्ञ

वालकाण्ड में एक स्थान पर बौद्ध श्रमण का उल्लेख आया है इससे यह स्पष्ट है कि रामायणकाल में बौद्धों का अस्तित्व था, 'तापसा भुञ्जते चापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते ॥१।१४।१२॥' सरयू के उत्तर तीर पर इस प्रकार के

बौद्ध श्रमग भी तपस्या करते थे। सरयू का उत्तर तीर याने साधक की साधना का उत्तर काल है, यह हमने देखा है इसलिए साधना की उत्तर अवस्था में बौद्ध श्रमण भी थे, यह वैदिक परम्परा की उदार नीति के अनुसार रामायणकार दिखा रहे हैं। इस प्रकार की उच्च उदार मत-प्रणाली प्रत्यक्ष बौद्धमत में भी देखने को नहीं मिलती है। आज के नवबौद्ध तो वैदिक परम्परा और हिन्दू जीवन पर आघात करना ही अपना धर्म मानते हैं। परन्तु अपनी उदार वैदिक परम्परा के अनुसार रामायणकार सरयू उत्तर तीर का वर्णन करते समय बौद्ध श्रमणों का भी गौरव के साथ उल्लेख करना नहीं भूलते हैं 'श्रमणाश्चैव भुञ्जते' रामायणकार कहते हैं।

अब पुत्रकामेष्टि यज्ञ के किए कौन-सी सामग्रियाँ लायी गईं और क्या-क्या प्रक्रियाएँ की गईं इसका वर्णन रामायणकार अपने ढंग से करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों का ऐतिहासिक ढंग से आशय निकाला जाय तो बड़ी आपत्ति आ सकती है, इतनी कि वाल्मीकि को एक तो पागल कहना पड़ेगा या तो मूर्ख, निर्लज्ज, कामुक मानना पड़ेगा। परन्तु वाल्मीकि इन दोनों में से एक भी नहीं हैं। वाल्मीकि परम आदरणीय तपस्यापूत योगी थे जो कि योग साधना के अत्यन्त उच्च तथा गहन दुर्लभ अनुभव जानते थे। उन दिव्य अनुभवों को लेकर वाल्मीकि रामायण में अपने रूपकात्मक ढंग से लिखते हैं। बालकाण्ड का सर्ग १४ देखिये—

पशूनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा।
अश्वरत्नोत्तमं तत्र राज्ञो द शरथ स्य ह ॥१।१४।३२॥

आशय यह कि पुत्रकामेष्टि यज्ञ के साथ जो अश्वमेध यज्ञ किया जानेवाला था उसके लिए तीन सौ पशु उस स्थान पर खम्भों से बाँधे गये और उनके साथ राजा दशरथ के अश्व में याने घोड़े में सर्वश्रेष्ठ अश्व उनके साथ बाँधा गया।

कौसल्या तं हयं तत्र परिचर्य समन्ततः।
कृपाणैः विशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा ॥१।१४।३३॥

राजा दशरथ की ज्येष्ठ रानी कौसल्या ने उस अश्व की परम सेवा की और तीन कृपाणों से उसे तीन बार बहुत आनन्द से स्पर्श किया परन्तु काटा नहीं।

पतत्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा।
अवसद्रजनीमेकां कौसल्या धर्मकाम्यया ॥१।१४।३४॥

कौसल्या के साथ-साथ राजा दशरथ के शेष दो रानियों ने भी उसी अश्व की एक रात मन की सुअवस्था में और चेतनायुक्त अन्तःकरण से धर्मकामना के हेतु से परिचर्या याने बहुत सेवा की।

होताध्वर्युः तथोद्गाता ह्ययेन समयोजनम्।
महिष्या परिवृत्त्याथ वावाताम् अपरां तथा ॥१।१४।३५॥

"यज्ञ सम्पन्न करने वाले होता और अध्वर्यु ने राजा दशरथ की तीन रानियों को उसके बाद उस अश्व से समयोजन याने मैथुन संभोग करने के लिए कहा और उन तीनों रानियों ने धर्म कामना से और सावधान चित्त से पुत्र-प्राप्ति के हेतु उस अश्व से एक रात संभोग किया।

ऊपरी आशय लेकर यदि यह पढ़ा जाय तो भयानक आपत्ति आकर महाकवि वाल्मीकि को एक तो महामूर्ख कहना पड़ेगा अथवा अत्यन्त कामी जार कहना पड़ेगा। हमारे पुराने ख्यालात के पुरातन मतवादी, भक्त या शास्त्री पण्डित इन श्लोकों को बिलकुल टाल देते हैं और रामायण के अन्य श्लोकों का आशय बताना शुरू कर देते हैं। हिन्दू परम्परा और रामायण के अपप्रचारी जन इन श्लोकों को प्रमुखता से पाठकों के सन्मुख रख कर सबों के सामने एक भयानक अनुत्तरित प्रश्नचिह्न उपस्थित करते हैं। ऊपरनिर्दिष्ट श्लोकों के बारे में हमारे पुराणमतवादी और रामायण को एक इतिहास माननेवाले भावुक कौन-सा आशय बताना चाहते हैं ? इस पर चुप बैठना यह ज्वलन्त प्रश्न का उत्तर नहीं है। भूख लगनेवाले क्षुधित को कुछ भी खाने के लिए नहीं देने जैसा वह होगा। चुप बैठने से वह बात सत्य है ऐसा कबूली जवाब देने जैसा होगा।

वैज्ञानिक ढंग से सोचा जाय तो एक मानव नारी पशु अश्व से संभोग ही नहीं कर सकेगी। मैथुन करने के लिए नर अश्व मादा के ऊपर उड़कर मैथुन करता है। एक मानव नारी के साथ अश्व यह बात नहीं कर सकता। इसके अलावा मैथुन करने के पूर्व नर अश्व मादा की योनि से जो गर्भ प्रेरक स्राव निकलता है उसे सूंघ कर ही मैथुन के लिए प्रेरित होता है। अन्य जाति की मादा का स्राव सूंघ कर अश्व अथवा अन्य नर पशु अन्य जाति की मादा से मैथुन करने के लिए कभी प्रेरित नहीं हो सकता है, यह विज्ञान भी है एवं बुद्धिमान निरीक्षकों का निरीक्षण भी है। इस हालत में एक अश्व नर स्त्री से मैथुन करेगा यह असम्भव है। अब रहा अन्य तर्कविलास ! कुछ अट्टाहासी जन यह कह सकते हैं कि आजकल के नालिका प्रयोग विज्ञान के अनुसार अश्व का वीर्य एक नालिका में लेकर उसको नर-मादा याने स्त्री के गर्भाशय में स्थापित कर उस जमाने के ऋषियों ने रानियों के गर्भाशय में अश्व द्वारा बीजारोपण किया होगा। परन्तु अश्व के वीर्य के गुणसूत्र

(chrosomes) और मानव के गुणसूत्र इतने भिन्न होते हैं कि उनका मिलन या संयोग कभी भी नहीं हो सकता है। इस दृष्टि से अश्व द्वारा दशरथ की रानियों को गर्भ सम्भव रहना और मैथुन करना असम्भव है।

कुछ वितंडवादी यह भी कहते हुए लेखक ने देखे हैं। वे कहते हैं कि आज का विज्ञान विभिन्न गुणसूत्रों का संयोग करने में असमर्थ है परन्तु रामायणकाल में हमारे ऋषियों ने अश्व एवं मानव के गुणसूत्र बदल कर उस द्वारा हमारे आदर्श राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न जैसे महामानव उत्पन्न किये हैं। परन्तु चेष्टा करनी थी तो मानव-मानव के गुणसूत्रों का नलिका तन्त्र द्वारा प्रयोग कर नवनिर्माण क्यों न किया? अश्व के गुणसूत्र द्वारा अश्व के निम्न गुण इस प्रकार नवनिर्मित बालक में अवश्य लायेंगे। परन्तु यह नवनिर्माण आज तक सिद्ध नहीं हुआ है। इस प्रकार तर्क करने वाले निर्लज्ज पाखंडी हमारे आदर्शों के प्रति अपने अहंकारी वितंडवाद द्वारा कलंक लगाना चाहते हैं, ऐसा स्पष्ट कहना अनुचित नहीं होगा! उसका उत्तर ऐतिहासिक पद्धति से मिलना असम्भव है तथा ऊपरनिर्दिष्ट मूर्ख एवं निर्लज्ज प्रलाप निकालने से भी नहीं मिलेगा। उसका उत्तर हमें स्वयं वाल्मीकि जैसे 'तपः स्वाध्याय निरतं' और 'मुनिपुंगवं' बन कर योगमार्ग के गहन अनुभव द्वारा प्राप्त करने के पश्चात ही मिल सकेगा। रामायणकार को समझने के लिए उनके द्वारा बताये अनुक्रम से हमें हरएक बात समझनी पड़ेगी। अब रामायण में लिखा कथा अनुक्रम देखें।

पुत्रकामेष्टि यज्ञ :

वाल्मीकि रामायण के अनुसार पुत्रकामेष्टि यज्ञ के लिए तीन सौ पशु बलि देने के लिए लाये गये थे। अब तीन सौ पशुओं और उनके साथ बाँधे गये अश्व को यज्ञ में बलि देना याने क्या है, यह देखना है। रामायणकाल तक यज्ञ में पशु-बलि एवं अश्वबलि देने की प्रथा अवश्य होनी चाहिए जबकि रामायण में उस प्रकार की कथाएँ लिखी गयी हैं। मध्य वैदिककाल में वेद ऋचाओं का गलत आशय लगा कर पशुपक्षियों की हिंसा धर्म के नाम पर यज्ञ में करते थे। वास्तव में वेदों में इस प्रकार पशुहिंसा करने के वचन बिलकुल नहीं हैं। पशुबलि का वैदिक आशय है अपने अन्तर्गत जो पशुभाव है उन्हें साधनारूप यज्ञ द्वारा नष्ट करना अथवा बलि देना। पुरुषसूक्त में स्पष्ट लिखा है—

'सप्तास्या सन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधं कताः।
देवा यघज्ञं तन्वाना अवघ्नः पुरूषं पशुम् ।।पुरूषसूक्त १५।।'

आध्यात्मिक पुरूष को अपने अन्तःकरण में जो पशु भाव है उनका साधना रूप यज्ञ में बलि देना चाहिए यह ऊपरनिर्दिष्ट पशुबलि का स्पष्ट आशय है।

मध्यकाल के शास्त्री पण्डित और विद्वान साधना यज्ञ भूल गये इसलिए साधना द्वारा अपने पशुभाव की बलि देने के बजाय वे स्वयं इतरजनों को अग्नि जला कर और उसे ही यज्ञ कह कर उसमें पत्यक्ष पशु-पक्षियों की बलि देकर अपने अन्दर का पशुभाव अधिक बढ़ाने की चेष्टा करते थे। वैदिक शुद्ध परम्परा की यह विडम्बना थी। इस प्रकार के वैदिक जीवन को कलंकित करने वाले अशास्त्रीय एवं अमानवीय प्रकार देखकर एक महापुरुष विह्वल चित्त होकर उठा था, और वह था सिद्धार्थ गौतम बुद्ध अथवा तथागत बुद्ध ! उस वैदिक महापुरुष ने इस प्रकार की पशु-हिंसा का अपने उपदेश द्वारा बहुत विरोध और शास्त्रवाद करके खण्डन किया था परन्तु मांस भक्षण करने की जिन्हें आदत लग गई थी वे अपना गलत शास्त्राधार छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। तर्क-वितर्क और वाद-विवाद होने लगे। प्रसंग विशेष हाथा पायी भी होने लगी। परिणाम फलस्वरूप भारतीय समाज में आपततः दो प्रवृत्ति वाले गुट बन गये, एक गुट था तथागत के मतों को मानने वाला बौद्ध गुट और दूसरा था गलत धारणाओं का पालन करने वाला पुरानमतवादी गुट।

पुत्रकामेष्टि यज्ञ में रामायणकार तथागत बुद्ध का ही आदर्श मत लेकर लिखते हैं, न कि अशास्त्रीय अमानवीय प्रत्यक्ष पशु-हिंसा और तद्वारा प्राप्त पाशवी समाधान ! रामायण में लिखित पशु याने साधक के अन्तःकरण में रहने वाले पशुभाव हैं न कि प्रत्यक्ष गरीब असहाय पशु। यह पशु त्रिशतं याने तीन सौ बताये हैं। तीन सौ क्यों? गुण तीन प्रकार के रहते हैं, सात्विक, राजस और तामसि ! इन तीनों गुणों को यदि शतगुणा बढ़ाया जाय तो तीन सौ पशुभाव बनते हैं जिनको साधना यज्ञ में बलि देने से साधक निवृत्त बनकर आत्मानन्द याने राम पुत्र पा सकता है। परन्तु इन तीन सौ पशुओं के साथ एक अश्व भी बंधा था जिसका यज्ञ में मेध कर दशरथ की पत्नियों को उत्तम पुत्र प्राप्त होने वाले थे। प्रथम इसी अश्व से मैथुन करा कर दशरथ की तीन रानियों ने अपनी गर्भधारणाएँ बनाई थीं। उस शील भ्रष्टता से इस

अश्व को हमने सही आशय बताकर बचाया है। अब उसी गरीब अश्व पर अब उसका मेघ कर उसे मौत के घाट पर उतारने का जो परंपरागत यत्न हो रहा है उससे उसे बचाने की ज्ञानचेष्टा हम करें।

अश्वमेध यज्ञ :

वह अश्व दशरथ के सब अश्वों में उत्तम था, यह रामायणकार लिखते हैं। 'अश्वरत्नोन्तमं' वाल्मीकि बताते हैं। इसी अश्व की रात भर सेवा कर उससे तीनों रानियाँ मैथुन करती हैं और अब उस पति अश्व को कथित अश्वमेध यज्ञ में काटकर उसका मांस-भक्षण कर पुत्र-प्राप्ति भी करना चाहती हैं। सब बेहूदी निर्लज्ज बातें बताई गई हैं। परन्तु रामायणकार का आशय एकदम विभिन्न है, और वह है पूर्णतया आध्यात्मिक और वैदिक ! अब अश्व शब्द का आध्यात्मिक आशय देखा जाय। 'अ' याने नहीं और 'श्व' श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया। योगी की श्वासविहीन अवस्था याने अश्व अवस्था है। समाधि-अवस्था में योगी की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया बन्द रहती है जिसे रामायणकार अश्व-अवस्था कहते हैं। यह हमने देखा है। परन्तु इस प्रकार अश्व-अवस्था दो प्रकार से पायी जाती है। साधारण साधक इसी प्रकार की अश्वावस्था में अधिक समय रहता है तो उसमें बहुत घबड़ाहट पैदा हो जाती है और उस अश्व-अवस्था को किसी प्रकार नष्ट कर वह साधारण साधक उस श्वास-प्रश्वास रहित अवस्था से मुक्त होकर पुनः अपने जड़शरीरभाव को आनन्द देने वाले श्वास प्रश्वास अवस्था में आना चाहता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव है न कि केवल कल्पना ! रामायणकार राम को मर्यादा पुरुषोत्तम याने मर्यादा में रहने वाला साधारण साधक दिखाते हैं। इस प्रकार के मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के जन्म समय मर्यादा को लाँघ कर प्राप्त की जाने वाली अखण्ड अश्वावस्था राम जीवात्मा कैसे सह सकती है ? इसलिए इस प्रकार के अखण्ड अश्वावस्था का मेध याने नष्ट करना मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लिए आवश्यक है। यही कारण है कि राम पुत्र-प्राप्ति के हेतु पशु-बलि देकर अश्वमेध यज्ञ किया जाता है। अश्वमेध और पशुमेध का यह वाल्मीकिय आशय है जिसे जानना बहुत आवश्यक है, अन्यथा गरीब पशु और अश्व के गले घोंटकर हम प्रत्यक्ष भगवान राम जीवन को कलंकित कर सकते हैं।

यह अश्व दशरथ के सब अश्व में उत्तम था। आशय यह कि उत्तम प्राणायाम अवस्था के कारण साधकरूप राम को अनजाने समाधि-अवस्था प्राप्त हो जाती थी परन्तु वह उत्तम, असामान्य, अमर्याद अवस्था मर्यादाशील

साधक राम के लिए कष्टदायक थी। साधारण साधक को इस प्रकार के श्वास-प्रश्वास रहित अवस्था में वहुत कष्ट होते हैं। राम याने आनन्द। जहाँ कष्ट हो वहाँ राम याने आनन्द कैसे प्राप्त होगा ? इसलिए राम-प्राप्ति के लिए उस अश्वावस्था का याने अश्व का मेध करना परम आवश्यक था। यही अश्वमेध यज्ञ राम पुत्रकामेष्टि यज्ञ के साथ किया जाता है।

दशरथ की तीनों गुणरूप रानियाँ पूरी रातभर उसकी सेवा कर उसी अश्व से समागम करती हैं। अब हम अश्व याने क्या, यह समझ गये हैं। अब अश्वमैथुन रात में हीं क्यों, यह देखें। योगीजन अपनी कठिन साधनाएँ रात को ही करते हैं। भगवद्गीता में स्पष्टरूपेण लिखा है—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥अध्याय २, श्लोक६९॥

इस प्रकार समाधिरूप अश्व की सेवा, साधना एवं प्रत्यक्ष समागम याने वृत्तियों का समाधिस्थ अवस्था में जाना मध्य रात्रि में ही होता है इसलिए रामायणकार दशरथ की रानियाँ रात्रि के समय उस अश्व की सेवा और समागम रात में करती हैं ऐसा रूपकात्मक पद्धति से लिखते हैं। महाभारतकार भगवान वेद व्यास भी ऐसे श्वासरहित केवल कुम्भक अवस्था को उनकी भाषा में अश्वत्थामा कहते हैं। सम्पूर्ण रामायण एवं महाभारत इस प्रकार के दिव्य आशयों से परिपूर्ण है।

इस प्रकार पशु-वलि यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होने के पश्चात देवताओं के द्वारा प्राप्य पायस राजा दशरथ ने अपनी तीन रानियों को भक्षण करने के लिए दिया। उस समय की यज्ञ-प्रक्रिया के अनुसार यह सब लिखा गया है। पायस याने दिव्य शक्ति जो कि उच्च अनुभूतिरूप पुत्र-प्राप्ति करा सकती है। कौसल्या मुख्य रानी थी इसलिए उसे कुल पायस का आधा हिस्सा दिया गया। बाकी बचे आधे हिस्से का फिर से आधा आधा बनाकर उसमें से एक कैकेयी एवं दूसरा सुमित्रा को दिया गया। रामायणकार लिखते हैं—

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः॥
कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थं कारणात्॥ २।१६।२७॥

दशरथ की तीन रानियों के नाम उस प्रकार क्यों रखे गये इसका वाल्मीकि विज्ञान देखें—

कौसल्या :

दशरथ की कौसल्या रानी का उल्लेख श्रीमद्भागवद्गीता में आया है—

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।। अध्याय २, श्लोक ५० ।।

साधना में कुशलता के साथ कर्म करने वाली साधक-वृत्ति को रामायणकार कौसल्या कहते हैं। वृत्ति शब्द स्त्रीलिंगी है इसलिए साधकरूप दशरथ की मुख्य रानी कौसल्या को दिखाया है। साधक की मुख्य रानी कौसल्या हो तब ही कुशल कर्म द्वारा साधक को राम याने आनन्द प्राप्त हो सकता है। इसलिए कौसल्या द्वारा दशरथ राजा को राम प्राप्त होते हैं। साधक का प्रमुख भार कुशलता की तरफ रहे और अपनी सारी पायसरूप शक्ति का आधा हिस्सा साधक दशरथ अपनी मुख्य रानी कौसल्या को ही दें। इसलिए राजा दशरथ पायस का आधा हिस्सा कौसल्या को देता है। कौसल्या को रामायणकार महिष्या कहते हैं। ईश याने सर्वशक्तिमान और महाईश्या अथवा महिष्या यह साधक में स्थित कुशलता का महान परिचय है। व्यवहार की दृष्टि से राजा दशरथ की मुख्य रानी कौसल्या थी परन्तु पसन्दगी और प्रेम की दृष्टि से दशरथ को कैकेया अधिक प्रिय थी।

कैकेया :

रामायण के नित्य पाठकों में कैकेया के बारे में बहुत घृणा और तिरष्कार दीख पड़ता है। और कारण भी वैसा ही है ! पाठकों के प्रिय राम को वह राज्याभिषेक नहीं कराने देती है और उसपर भी राम को चौदह वर्ष घनघोर अरण्य में वास करने भेजती है। परिणाम यह निकला कि रामपिता दशरथ जो कि उसपर बहुत प्यार करते थे, राम-वियोग के कारण मर जाते हैं। एक सुखमय सुहावना संसार उजाड़ने वाली यह एक कुलटा थी। हाँ, है तो वैसा ही परन्तु ऊपर के आशय से ! परन्तु स्वयं रामायणकार कैकेया को राम की हिमायती माता मानते हैं। न होती कैकेया तो न होते राम ! सच्चा साधक याने दशरथ कैकेया पर बहुत प्रेम करेगा और उस दिव्य प्रेम के कारण ही अपने प्रिय राम के लिए उसे मरना भी पड़ेगा। पति मर भी जाय परन्तु अपने प्रिय राम के लिए कैकेया राम को अवश्यमेव तपस्या करने दण्डकारण्य भेजेगी ! और राम भी अपनी प्रिय माता कैकेया का आदेश मानकर कुछ भी नहीं सोचते हुए तुरन्त तपस्या करने दण्डकारण्य जाते हैं।

वास्तविक दण्डकारण्य में जाने के लिए दशरथ राम को नहीं कहते हैं, कहती है कैकेया। पितृवचन का बेमतलब आधार लेकर प्रत्यक्ष पिता दण्डकारण्य में न जाने के लिए मना करते हुए भी राम केवल माता कैकेया की इच्छा सफल करने के लिए वन में जाते हैं। दशरथ की मृत्यु के लिए सर्वत्र जिम्मेदार राम हैं न कि कैकेया!

पूरी वाल्मीकि रामायण का प्रमुख पात्र कैकेया है, वह कैसे, यह आने वाली संबन्धित कथाओं द्वारा देखेंगे। अब कैकेया शब्द में निहित वाल्मीकि शास्त्र देखा जाय। कैकेया शब्द दो उप शब्दों से बनाया है, कै और काया! कै याने विरहित, अलिप्त, अनासक्त और काया याने शरीर। साधक की जो वृत्ति शरीर भाव से परे है उसे रामायणकार कैकेया कहते हैं। दशेन्द्रियों को संयम में रखने वाला दशरथ साधक अपनी कैकाया वृत्ति पर अवश्यमेव अधिक प्रेम करेगा। अन्यथा उसे साधनाप्राप्त दिव्य आनन्द रूप राम की साधना के लिए आवश्यक विवेकरूप लक्ष्मण की, वैराग्यरूप भरत की और जिसका कोई शत्रु नहीं रहा ऐसे शत्रुघ्न की कदापि प्राप्ति नहीं होगी। देहभाव से परे रहने वाली साधक की उच्च वृत्ति याने कैकेया जो कि उसे सबसे अधिक प्रिय रहनी चाहिये। इसलिए राम भी पिता के गुणों का अनुसरण कर कैकेया की इच्छा-पूर्ति के लिए सर्वस्व त्याग कर वनवास स्वीकारते हैं।

जिन दो वरों के कारण कैकेया एक वर द्वारा पुत्र भरत को राज्याभिषेक करवाना चाहती है और दूसरे वर द्वारा राम को तपस्या करने वनवास भेजना चाहती है। उसका इतिहास भी दिव्य है जो कि ऊपरी बुद्धि से नहीं प्राप्त होगा। कथा इस प्रकार है। एक समय स्वर्ग पर असुरों ने हमला किया। देवाधिपति इन्द्र ने उन असुरों को परास्त करने की पूरी चेष्टा की परन्तु उसकी हार निश्चित थी। यह देखकर इन्द्र ने राजा दशरथ को अपनी सहायता करने के लिए बुलाया। राजा दशरथ क्षत्रीय होने से अपने धर्म के अनुसार वह इन्द्र की सहायता करने हेतु स्वर्ग में गया। देवासुर युद्ध फिर से छिड़ गया। दशरथ को भी असुरों को परास्त करना मुश्किल हुआ। अब आयी कैकेया जो कि दशरथ के साथ स्वर्ग में देवासुर युद्ध के लिए गयी थी। कैकेया जैसे स्वर्ग के देवासुर युद्ध में दशरथ की अन्य दो रानियाँ क्यों नहीं गयीं? उत्तर बाद में देखेंगे। इस कठिन अवसर पर रानी कैकेया ने राजा दशरथ को युद्ध में बहुत सहायता की जिससे कि राजा दशरथ असुरों को परास्त कर सके। कैकेया का यह पराक्रम देखकर

राजा दशरथ ने उसे दो वर देने का निश्चय किया। परन्तु कैकेया ने वह वर ठीक समय पर माँगने की इच्छा दर्शाई और देवासुर युद्ध भूला-सा गया। स्वयं कैकेया भी अपने वरों को भूल गयी थी परन्तु उसकी दासी मन्थरा ने उसे समय देखकर उसके दो वर दशरथ से माँग लेने के लिए कहा। रामराज्याभिषेक के समय यह सब नाटक हुआ।

कैकेया से भी बढ़कर रामायण का प्रमुख पात्र मन्थरा है। मन्थरा नहीं होती तो रामायण ही घटित नहीं होता। मन्थरा ने कैकेया को जगाया जिस कारण कैकेया ने राम को भगवान बनाने के लिए वनवास भेजा।

देवासुर युद्ध :

अब वाल्मीकीय आशय से हम देवासुर युद्ध को समझें। इन्द्र स्वर्ग का राजा माना जाता है। स्वर्ग और नरक क्या है इस बारे में स्वयं भगवान वेदव्यासजी अपने श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कंद में तीसवें अध्याय के श्लोक २९ में कपिलदेव द्वारा कहते है, 'अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रत्यक्षते।' आशय यह कि स्वर्ग और नरक सब यही हैं और उनको हम अनुभूत कर सकते हैं। स्वर्ग की परिभाषा इस प्रकार है। सु+अर्+गः उप शब्द मिलाकर स्वर्गः शब्द बना है। सु याने अच्छा, अर् याने आगे बढ़ना और आगे गमन करना या उस अवस्था में रहना। इसलिए स्वर्ग याने आध्यात्मिक साधक की उच्च अवस्था है, न कि कोई अन्य भूमि या परलोक! अब इन्द्र क्या हैं, यह वेद की भाषा में देखें।

ये अर्वाञ्चरतां उ पराच आहुर्य पराञ्चस्तां उ अर्वाच आहुः।
इंद्रश्च या चक्रशुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥
(ऋग्वेद १।१७४।१९ ॥

आशय यह कि जो निकट है वह दूर हो जाते हैं और जो दूर जाते हैं वह निकट हैं। इन्द्रियों का स्वामी इन्द्र जो कर्म करता है वह कर्म जीवात्मा को एक जन्म से दूसरे जन्मयोनि में और लोकान्तर में ले जाता है जैसा कि बैल अपने कंधे पर लगाये हुए धुरा या लागर को अपने साथ लेकर खेत की धुरा लांघकर एक खेत से दूसरे खेत में जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि इन्द्र याने कोई आकाशस्थ देवता न होकर मनुष्यमात्र की अन्तर्गत वह जीवात्मा है जो उसे जन्मजन्मान्तर में ले जाती है। इन्द्र याने जीव, जीवात्मा! इस प्रकार के स्वर्ग में- दशेन्द्रिय संयत राजा दशरथ अपनी देहरहित कैकेया को लेकर

इन्द्र की सहायता करने देवासुर युद्ध में जाते हैं और देहरहित कैकेया के कारण वह देवासुर युद्ध जीतते हैं। देव याने साधक की अच्छी वृत्तियाँ और असुर याने उस की बूरी वृत्तियाँ जिनमें सदा संघर्ष चलता रहता है। इस देवासुर युद्ध में जो साधक जीतेगा वह अपने आप दशरथ द्वारा दो वर पाता है। एक वर से उसका भरत याने ज्ञान वैराग्य पुत्र जिसकी वृत्ति में अब युद्ध नहीं रहा ऐसे अयोध्या का राजा बनता है और दूसरे वर द्वारा रामरूप आनन्द वृत्ति अब केवल जड़भोगरूप राज्य का अधिपति न बनकर अधिक सोज्वल और उच्च आध्यात्मिक आनन्द पाने के लिए वन में जाकर तपस्या करता है।

यही देवासुर युद्ध है और यही कैकेया के दो वर हैं जिनका पुनः स्मरण उसकी दासी मन्थरा ने उसे दिलाया था। साधक के मन का पूरा मन्थन कर उसे ऊँचे आध्यात्मिक स्तर पर ले जाने वाली साधक की दुर्लक्षित दासी याने मन्थरा है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से राम से बढ़कर भरत श्रेष्ठ हैं और कौसल्या से बढ़कर कैकेया श्रेष्ठ हैं परन्तु सबों से श्रेष्ठ सतर्क विवेक बुद्धि मन्थरा है जो कि सब वृत्तियों को न्याय देती है। अब पाठक जान सकेंगे कि देवासुर युद्ध में अकेली कैकेया क्यों गयी थीं जब कि दशरथ की अन्य रानियाँ भी जा सकती थीं।

सुमित्रा :

बेचारी सुमित्रा ! उसे रामायण में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं। अन्यों के हाँ में हाँ अथवा ना में ना मिलाना इतना ही उसका काम है। सब कुछ चुपके से सहते जाना और अपना सुख या दुख किसी को नहीं बताना यही उसका धर्म-जीवन है। सबको मित्र के समान मानने वाली सुमित्रा थी जो कि वृत्ति हर आध्यात्मिक साधक में रहनी चाहिए। इस प्रकार की वृत्ति द्वारा विवेकरूप लक्ष्मण और जिसे संसार में कोई भी शत्रु नहीं है ऐसे शत्रुघ्न नामक जन्म लेते हैं।

दशरथ की साढ़े तीन सौ रानियाँ :

अयोध्याकाण्ड में राम वनवास जाने के पहले अपने पिता दशरथ से आखिरी समय मिलने जाते हैं उस समय राजा दशरथ अपनी सभी रानियों को बुलाते हैं। वे रानियाँ कुल साढ़े तीन सौ थीं, ऐसा रामायण में लिखा है--

अर्धं सप्तशतास्तत्र प्रमदास्ताम्र लोचनाः ।
कौसल्यां परि वार्याय शनैर्जग्मुर्धृतव्रताः ॥
अयोध्या काण्डः सर्ग ३४ श्लोक ११ ॥

दशरथ की साढ़े तीन सौ रानियाँ याने अपना साढ़े तीन हाथ का शरीर है। साढ़े तीन को शतगुण करने से साढ़े तीन सौ हो जाते हैं। इसी प्रकार तीन वृत्तियों को शतगुण बनाकर रामायणकार ने तीन सौ पशु बनाये जो कि यज्ञ के समय बलि दिये जाने वाले थे। इस प्रकार साढ़े तीन हाथ के शरीर को शतगुण कर साढ़े तीन सौ बनाया है। वैदिक कल्पनानुसार आत्मा यह पति माना जाता है और उसका शरीर उसकी पत्नी मानी जाती है। इसलिए दशरथ की शरीररूप साढ़े तीन सौ रानियाँ बताई गई हैं न कि प्रत्यक्ष रानियाँ। इससे यह सिद्ध हो सकता है कि उस समय के राजा अनेक पत्नियाँ रखते थे जिस कारण रामायण में उस प्रकार वर्णन आया है। रानियों की आँखें लाल थीं 'ताम्रलोचना' और उन्हें प्रमदा याने संभोग में मत्त कहा गया है। जो स्त्री संभोगसुख अथवा रति सुख अधिक देती है उसकी आँखें लाल रहती हैं यह कामशास्त्र भी रामायणकार अध्यात्म शास्त्र के साथ साथ बताना चाहते हैं। इसी प्रकार स्त्रीपरक सामाजिक रीति-रिवाज़परक वास्तविक सत्य रामायण में कई स्थान पर पाये जाते हैं।

इस प्रकार दशरथ को राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न यह चार पुरुषार्थ बताने वाले चार पुत्र थे। उन सबों को राजा ने उस जमाने के अनुसार धनुर्विद्या सिखाई। राम कौन-सी धनुर्विद्या सीखे थे? उपनिषद राम के धनुर्विद्या का वर्णन करते हैं—'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्षमुच्यते' प्रणव अथवा साधना धनुष है, आत्मा यह शर याने तीर है और उस तीर को ब्रह्म पर मारना है। राम अपना शर सन्धान सदा ब्रह्म पर करते हैं इसलिए राम का शरसन्धान कभी बेकार नहीं जाता था। रामायण में और भी शस्त्र बताये गये हैं जैसे कि कृपण, खड्ग, शूल एवं शतघ्नि इत्यादि। परन्तु अपने राम सब समय धनुष और बाण ही अपने साथ रखते हैं कारण उनका शरसन्धान अन्यों पर नहीं किन्तु ब्रह्म पर ही सदा किया जाता है। अब राम 'उनषोडशवर्षों में रामो राजीव लोचनः।' पन्द्रह साल के हो गये थे। ऐसे अवसर पर ऋषि विश्वामित्र दशरथ राजा के दरबार में आ पहुँचे। राक्षसों का निःपात करने के लिए वे दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँग रहे थे। परन्तु मासूम बाल राम एवं लक्ष्मण को विकराल राक्षसों का संहार करने कैसे भेजा जाय? राजा दशरथ इस बात के लिए तैयार नहीं थे, कारण

मासूम बालक विकराल और क्रूर राक्षसों को क्या मार सकते थे ? उलटे राक्षस ही उन्हें मार डालते, यह बात राजा दशरथ देख रहे थे। इसलिए राक्षसों को मारने का काम वे स्वयं अपनी चतुरंग सेना द्वारा अच्छी तरह करना चाहते थे।

परन्तु उन राक्षसों का संहार राजा दशरथ की चतुरंग सेना नहीं कर सकती थी। उसके लिए मासूम बच्चे राम और लक्ष्मण की ही आवश्यकता थी। ऋषि विश्वामित्र राजा से राम और लक्ष्मण को ही माँगते हैं और यदि वह बात न हो तो सबों को अभिशाप से भस्म करा देने की बात बोल रहे थे। गुरू वसिष्ठ ऋषि विश्वामित्र का तप: सामर्थ्य जानते थे इसलिए गुरु वसिष्ठ ने राजा दशरथ को राम एवं लक्ष्मण को विश्वामित्र सह राक्षसों का संहार करने भेजने के लिए कहा। बात मानी गई और विश्वामित्र सह राम लक्ष्मण को भेजा गया राक्षसों का संहार करने के लिए फिर यह कौन-से राक्षस होने चाहिए जो कि चतुरंग सेना के द्वारा नहीं मारे जाते किन्तु राम लक्ष्मण द्वारा ही मारे जायेंगे ? वह राक्षस थे—षडरिपु और अन्त:करण की कुप्रवृत्तियाँ जिनका की नि:पात राम और लक्ष्मण-वृत्ति ही कर सकती है। राम लक्ष्मण को संग लेकर विश्वामित्र राक्षसों का हनन करने के लिए वन में आते हैं। बड़े जड़ अन्त:करण से राजा दशरथ उन्हें विश्वामित्र के साथ भेजते हैं। राम लक्ष्मण को सम्हाल कर रखने का अभिवचन विश्वामित्र को देते हैं।

विश्वामित्र और राम लक्ष्मण का प्रथम वनवास :

इस प्रकार राम लक्ष्मण को अपने संग लेकर ऋषि विश्वामित्र सरयू के दक्षिण तट पर चले जाते हैं। अब विश्वामित्र कौन हैं, यह देखें। वैदिक परम्परा में विश्वामित्र ऋषि को अनन्य साधारण स्थान है। वैदिक जीवन में गायत्री मन्त्र को बहुत महत्वपूर्ण स्थान है जिसके ऊदाता ऋषि विश्वामित्र माने जाते हैं। विश्वामित्र यह साधक श्रेष्ठ की अवस्था है न कि कोई ऐतिहासिक व्यक्ति। जो सारे विश्व का मित्र याने सूर्य जैसे ज्ञान प्रकाश देने वाला है उसे मिश्वामित्र ऋषि कहा जाता है। हो सकता है कि एक अनाम ऋषिवर्य ने अपने गायत्री ज्ञान का प्रबोधन सारे संसार गायत्री मंत्र द्वारा किया हो इसलिए उस महान अभिव्यक्ति को सारा संसार विश्वामित्र कहता है। वाल्मीकि और व्यास जैसे विश्वामित्र यह ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं

वरन आध्यात्मिक अधिकार की अभिव्यक्ति है। विश्वामित्र का गायत्री मन्त्र देखें।

ॐ भूर्भुवः स्वाहा तत्सवितुर्वरेण्यं भार्गो
देवस्य धीमही धियोयोनः प्रचोदयात्।

गायत्री मन्त्र केवल शाब्दिक सामर्थ्य की रचना नहीं परन्तु श्रेष्ठ साधक के अनुभव-ज्ञान की अवस्थाएँ और अनुभूतियाँ हैं। सारे विश्व की उत्पत्ति तथा सत्य गायत्री मन्त्र में अभिव्यक्त किया गया है। गायत्री का सही आशय यह है—

ॐ याने नादब्रह्म जिससे सारा संसार व्यक्त होता है। ॐ को प्रणव भी कहते हैं। 'प्र' याने आगे बढ़नेवाली अवस्था और 'नव' याने नित्य नूतन अवस्था। सारा संसार व्यक्ति की नित्य नूतन प्रगत अवस्था है जिसे कि प्रणव कहा गया है। इसलिए संसार की रचना और आस्तित्व प्रणव द्वारा याने ॐ द्वारा व्यक्त किया गया है। यह प्रणव अथवा ॐ गायत्री का पहिला पाद है। उसके बाद आती है तीन व्याहृतियाँ जिसे कि भुः भुवः एवं स्वः कहते हैं। 'भुः' याने यह जड़ लोक, 'भुवः' याने उससे परे रहने वाला कारण तत्व या पराप्रकृति और 'स्वः' याने आत्मतत्व जो कि सर्वत्र एवं सर्व दूर है। परन्तु सत्य उससे भी परे अवस्था में है जिसे परमात्मा कहा जाता है। उस परम तत्व को जानना मनुष्य मात्र का परम कर्तव्य है। इसलिए गायत्री मन्त्र में कहा गया है, 'तत्सावितुः वरेण्यं' उससे भी परे वह 'सावितुः' याने मूल ज्ञान सत्य है जो कि जानने योग्य याने 'वरेण्यं' है। वह कल्याणकारक याने 'भर्गः' है। वह दिव्य याने 'देवस्य' है। वह बुद्धि से परे परन्तु शुद्ध आत्मबुद्धि द्वारा ही पाया जा सकता है, 'धीमही'। उस परम बुद्धि तत्व को हम सब जानकर अपना ज्ञानोदय करें 'धीयोयोनः प्र च उदयात्' यहाँ नः याने हब सब यह आशय है। वैदिक परम्परा में केवल एक का ही उद्धार नहीं मान्य किया गया है। हर व्यक्ति अपना उद्धार ज्ञानप्राप्ति सारे समाज के उत्थान के लिए करें, यहीं वह परम पवित्र गायत्री मन्त्र है। परन्तु दुर्भाग्यवश आज भारत में उस गायत्री शब्दरचना का ही जप कर साधक अपने को धन्य मानता है। गायत्री जप करा कर यज्ञ किये जाते हैं और जपसंख्या गिनी जाती है और उसी मात्रा में जप करने वाले का अहंकार और अज्ञान भी!

गायत्री मन्त्र ज्ञान है न कि तिलिस्माती शब्द-रचना कि जिसे पढ़कर कुछ अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त हो जाती है। मन्त्र की परिभाषा है, 'मतानात

त्रायते इति मन्त्रः'। याने जिस द्वारा मन की शक्ति बढ़ती है उसे मन्त्र कहते हैं इसलिए मन्त्र की शक्ति केवल दांभिक जप संख्या में अथवा दिखावटी यज्ञ में नहीं वरन उसमें निहित ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभूत कर मन की शक्ति बढ़ाने में है। मन की यह शक्ति केवल शाब्दिक जप न करते हुए मन के संयम द्वारा याने ध्यान द्वारा भी पायी जा सकती है। गायत्री मन्त्र में बताये हुए जो तीन लोक अथवा अवस्थाएँ हैं उनका प्रत्यक्ष अनुभव कर ज्ञान लेना और उस त्रिपदा अवस्था से भी परे जो आत्मज्ञान है उसे स्वयं पाना और समाज को मिला देना, यह गायत्री का वास्तविक आशय है। जो जो महासाधक गायत्री प्रणीत उस उच्च अवस्था में जायेगा वही विश्वामित्र ऋषि है न कि कोई ऐतिहासिक पुरुष जो कि एक ही समय हो गया है। विश्वामित्र उस उच्च अवस्था की पदवी है जो पाकर हर कोई विश्वामित्र बन सकता है जैसे कि अन्य पदवियाँ हैं। उदाहरणार्थ जिसे पी० एच० डी० पदवी लेना है उसे उसके विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा तब ही उसे पी० एच० डी० पदवी मिलेगी। केवल पी० एच० डी० इस शब्द का जप करने से पी० एच० डी० का ज्ञान नहीं होगा। उसी प्रकार गायत्री मन्त्र का केवल जप करने से नहीं वरन उस अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने से ही गायत्री प्रबोधन होगा। इस गायत्री मन्त्र का प्रबोधन याने ज्ञान प्रज्ञान पिता द्वारा पुत्र को देना चाहिए। इस पवित्र वैदिक परम्परा में अन्य दलाल की आवश्यकता नहीं है।

सरयू के दक्षिण तट पर अर्ध योजन जाने के बाद ऋषि विश्वामित्र मधुर वाणी से राम को कहते हैं कि राम लक्ष्मण तुम्हें मैं बलातिबला विद्याएँ सिखाऊँगा जिसके द्वारा तुम क्षुधा और प्यास पर काबू पा सकोगे।

अर्ध योजनं गत्वा सरय्या दक्षिणे तटे।
रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्य भाषत ॥ ९।२२।१० ॥
क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम।
बलातिबलां चैव पठस्तात राघव ॥ ९।२३।१२, १६ ॥

उससे यह दीख सकेगा कि वाल्मीकिजी को योगमार्ग के अनेक गूढ़ विद्याओं की जानकारी थी। अपने शरीर में कुल तीन बन्ध हैं। उनमें से एक जालन्धर बन्ध है जिसे सिद्ध करने से योगी क्षुधा एवं पिपासा भूल कर उसका शरीर जरा और श्रम से बिकल नहीं होता है। स्वामी विवेकानन्दजी के समय वाराणसी के पावहारी बाबा इसी प्रकार कुछ अन्न ग्रहण नहीं करते थे। स्वयं लेखक को इस प्रकार का थोड़ा अनुभव है। इसीलिए वह कुछ

रहस्य बता सकता है। इस प्रकार की प्रखर साधना करने के लिए राम लक्ष्मण तृणशय्या पर शयन करते थे।

तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ दिव्यां त्रिपथगां नदीम्।
ददृशाते ततस्त्र सरय्याः संगमे शुभे ॥ १।२४।५ ॥

राम लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र ऋषि सरयू नदी के त्रिपथगा संगम पर गये। यह त्रिपथगा संगम भौगोलिक अथवा ऐतिहासिक न होकर सरयू जैसे त्रिपथगा संगम साधक के शरीर में ही है। त्रिपथगा संगम याने त्रिकुटी या भूमस्य योगचक्र है।

इतनी प्रखर साधना करने के पश्चात ही राम लक्ष्मण ताटकादि राक्षसों को मारने की क्षमता पाते हैं। यह क्षमता दशरथ जैसे असाधक नहीं पा सकते थे कारण वे कठोर साधना कर उस द्वारा उच्च अनुभव एवं क्षमता नहीं पा सकते थे। इसीलिए साधक के केवल दशरथ अवस्था को राक्षस हनन के लिए वन में ले जाना विश्वामित्र पसन्द न करते थे।

ताटका वध :

बलातिबला विद्याओं में निपुण होकर और त्रिवेणी संगम का दर्शन करने के पश्चात अब राम लक्ष्मण विश्वामित्र सह वर्तमान मन्नियोग देश में प्रवेश करते हैं 'मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कंटकं पुनः ॥ १।२४।३० ॥' इस मन्नियोग राज्य की स्वामिनी सुन्दपत्नी ताटका थी जिसे कि हिन्दी भाषी ताड़का कहते हैं। यह रावण की बहन थी और उसे मारिच नामका एक पुत्र था। ताटका वर्णाश्रम में ब्राह्मण थी। राम लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र उसके मन्नियोग राज्य में गये और उसकी अनुमति न लेते हुए वहाँ यज्ञ करने के लिए प्रस्तुत हो गये। अपने राज्य में इस प्रकार की हमलावारी को देखकर ताटका ने उनका विरोध किया। किसी भी राजनैतिक हिसाब से ताटका का यह वर्ताव बिलकुल सही था। परन्तु ताटका का यह दुःसाहस विश्वामित्र को मंजूर नहीं था। वे उस ब्राह्मण अबला पर बौखला कर उठे और उन्होंने राम लक्ष्मण को उस राक्षसी को मारने के लिए कहा। प्रथमतः राम इस प्रकार एक निरपराध अबला पर शस्त्र चलाने के लिए तैयार नहीं थे कारण ब्राह्मण और अबला पर शस्त्र न चलाने की कसम राम ने इसके पूर्व खाई थी। परन्तु ऋषि विश्वामित्र को राम की यह आर्य-नीति मंजूर नहीं थी। वे राम को कहते हैं—

नहिते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम ।
चातुर्वर्ण्यं हितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥ १।२५।१७ ॥
नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षण कारणात् ।
पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षता सदा ॥ १।२५।१८ ॥

रामायणकार ऊपर निर्दिष्ट श्लोकों में जो लिखते हैं वह उनके समय के समाज में मान्य बात नहीं थी, यह वे जानते थे। इसलिए वे लिखते हैं 'नृशंस मनृशंसं वा, पातके वा सदोषं, घृणा कार्या नरोत्तम।' परन्तु रामायण के आध्यात्मिक हिसाब से ताटका को मारना धर्म्यं, चातुर्वर्ण्यं के हित में था यह वे स्पष्ट करते हैं, चातुर्वर्ण्यं हितार्थं' कर्तव्यं रक्षता सदा और 'प्रजारक्षण कारणात्' मानते हैं। केवल ऐतिहासिक ढंग से देखा जाय तो राम का ताटका को मारना उन्हीं के शब्दों में अधर्म्य, चातुर्वर्ण्यं के अहित में एवं एक अवला पर शस्त्र चलाकर उसे मारने का नृशंस कार्य था। फिर इस कथा में कुछ अन्य रहस्य होना चाहिए जिसे हम देखें। प्रथम ताटका के मन्नियोग राज्य का आशय जानें। मन और नियोग यह दो उपशब्दों से मन्नियोग शब्द बनाया है। साधना प्रदेश में मन्नियोग नाम की एक अवस्था है जिसमें मन पर संयम कर मन का मनपन ही शान्त किया जाता है। इस मन के नियोग साधना को ही रामायणकार अपनी उपमा भाषा में ताटका का मन्नियोग राज्य कहते हैं। वास्तव में न तो ताटका थी और न उसका मन्नियोग राज्य था। मन का नियोग करते समय साधक को मन के पूर्व संस्कारों से मुकावला करना पड़ता है। कई बार वह पूर्व संस्कार इतने प्रबल हो उठते हैं कि उन्हें नष्ट करना ही साधक का कर्तव्य बन जाता है। अनिष्ट वृत्तियों का हनन याने ताटका वध है जो कि ब्रह्म जैसे लगती है परन्तु राक्षसी है।

रामायण कथाएँ इतिहास मानी जायें तो चातुर्वर्ण्य की रक्षा करने वाला राम एक ब्राह्मण अबला पर कैसे शस्त्र चलाकर उसे मारेगा? और वह भी ऊपरी कथा से स्वयं उसके राज्य में आकर और उसके राज्य में गैर कानूनी बात कर! इसलिए कथा का अन्य आशय होना अनिवार्य है। ऊपर बताये अनुसार मन के नियोग की साधना करते समय साधक की पुरानी वृत्तियाँ उसे विरोध करती हैं इतनी कि उससे साधक के साधक-जीवन का खात्मा भी हो सकता है इसलिए जिसे आत्मानन्द रूप राम बनना है उसके लिये अपने अन्तर्गत स्थित ताटका-वृत्ति का अभ्यास द्वारा हनन करना आवश्यक है। ताटका को मारने के पहले राम ने ताटका की नाक और

कान काटने के लिए भाई लक्ष्मण को कहा। लक्ष्मण ने वताये अनुसार किया। वालकाण्ड सर्ग २६, श्लोक १८ 'सौमित्रिरकरो त्क्रोधाद्धृत कर्णाग्रनासिकाम्।' इस प्रकार के क्रूर कर्म करने पर संतुष्ट होकर ऋषि विश्वामित्र राम लक्ष्मण की प्रशंसा करते हैं।

अलं ते घृणया राम पापैषा दुष्ट चारिणी।
यज्ञ विघ्नकरी यक्षी पुरा वर्धेत मायया ॥ १।२७।२९ ॥

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को हम लोग देशभक्त और आदर्शवत मानते हैं कारण उसने अपनी देश-रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाई थी। परन्तु बेचारी ताटका! अपने राज्य में घुसकर राज्य के खिलाफ कार्य करने वाले आक्रमणकारी राम लक्ष्मण का मुकावला करने वाली शूर देशभक्त अबला को रामायणकार और उनके साथ हम सब उसे राक्षसी, पापी और दुष्टचारिणी कहते हैं। रामायण यदि इतिहास माना जाय तो एक ब्राह्मण देशभक्त अबला की नाक कान काटकर उसकी हत्या करने वाले राम लक्ष्मण और उनके गुरु विश्वामित्र ही राक्षस, पापी, अत्याचारी नृशंस, प्रजाद्रोही और दुष्ट मानने चाहिए। परन्तु ताटका का बध करने में राम और उच्च भूमिका पर आरूढ होते हैं। विश्वामित्र ऐसे कर्म को 'अलं' याने श्रेष्ठ और उत्तम मानते हैं। इसी अलं शब्द से वाली शब्द बना है जो किष्किधा काण्ड में कथा द्वारा वताया गया है। बा अलं याने आश्चर्य जनक अति उच्च साधना-अवस्था। इसी अलं शब्द से मुसलमानों में अल्लाह शब्द गया है जो कि उनकी परम्परा में अति श्रेष्ठ अवस्था मानी गयी है। अलं, अल्ल, अल्ला: और अल्लाह यह वह संस्कृत की शब्द-सीढियाँ हैं। अल्ला याने माता। इसीलिए मुसलमानों में अल्लाह को स्त्री रूप माना गया है।

ताटका का सच्चा आशय जानने के लिए हमें योगीसन्त कबीर की सहायता लेनी पड़ेगी। वे अपने एक दोहे में कहते हैं—

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं ब्यौरी ढूंढन गई रही किनारे बैठ॥

मुझे जिसे खोजना था और आत्मरूप अवस्था प्रकृति माया की गहराई में छिपी है उसे पाने के लिए मैं उस गहन अथाह संसार सागर में प्रत्यक्ष डुबकी न लगाकर उस सागर के किनारे पर ही बैठकर उस अथाह संसार सागर की गहराई में छिपे हुए आत्मज्ञान को पाने की चेष्टा करता हूँ, कबीर जी कहते हैं। वस यही ऊपर ऊपर टिमटिमाने वाली उच्शृंखल वृत्ति याने

ताटका है जो कि सागर में डुबकी न लगाकर संसार सागर के किनारे बैठकर याने तट पर बैठकर मैंने सब कुछ जाना है, यह मानती है। ताटका शब्द इस प्रकार बताया गया है, तटाक याने सरोवर तालाब या जलस्थान। तट याने उस जलस्थान का किनारा और ताटका याने उस जलाशय के केवल किनारे पर ही बैठकर उस सागर का हमने सब ज्ञान प्राप्त किया है यह अहंकारी वृत्ति है।

ऐसी दिखावटी वृत्ति कितनों को बड़ी अच्छी याने उस द्वारा हमने सब कुछ पाया है, प्रत्यक्ष ब्रह्म जाना है, ऐसी सुहावनी लगती है। जो ब्रह्म जानेगा उसे शास्त्र वचन के अनुसार ब्राह्मण माना जाता है। 'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः' याने जो ब्रह्म को जानता है वही ब्राह्मण है। इस दृष्टि से इस वृत्ति रूप ताटका को रामायणकार ब्राह्मण मानते हैं। वृत्ति यह स्त्रीलिंगी शब्द है इसलिए इस प्रकार की दिखावटी वृत्ति को रामायणकार एक स्त्री मानकर वृत्ति के अनुसार उसे राक्षस भी मानते हैं। यह है रामायणकार की ताटका जो कि बलात् साधक राम के मन्नियोग राज्य की स्वामिनी बन बैठी थी और जिसने भगवान राम के आत्मसाधना रूप यज्ञ का विरोध किया था। ऐसी राक्षसी ब्राह्मण को यद्यपि वह अबला है तो भी मारना राम साधक का परम कर्तव्य है। परन्तु राम लक्ष्मण बार-बार महिलाओं की नाक, कान और स्तन तक क्यों काटते हैं? क्या राम का यह आचरण नृशंस, पापी, बर्बरतापूर्ण और नीच नहीं है? इसी प्रकार राम ने एक अयोमुखी नामक स्त्री की नाक, कान और स्तन तक कटवाये थे। शूर्पणखा की नाक, कान तो दिन दहाड़ें और उसका उतना कोई अपराध न होते हुए भी काटे। युद्ध के समय कुम्भकर्ण की भी नाक कान उसके धाराशयी बनने पर काटे गये। क्या इस प्रकार नाक, कान और स्तन भी काटना उचित माना जायेगा? क्या यदि कोई आदर्श पुरुष आज इस प्रकार वर्ताव करता है तो उसे लोग आदर्श और अवतार मानेंगे? कदापि नहीं।

रामद्वारा स्त्रियों की नाक, कान और स्तन काटना :

भगवान राम द्वारा ताटका, अयोमुखी, शूर्पणखा और कुंभकर्ण आदि की नाक, कान और स्तन तक काटने का व्यवहार ऐतिहासिक नहीं वरन् आध्यात्मिक है। जिसे राम बनकर भगवान बनना है उन श्रेष्ठ साधकों को उसमें स्थित ताटका, अयोमुखी और शूर्पणखा की नाक, कान, स्तन काटना आवश्यक है। यह सब साधक के अन्तःकरण में छिपी हुई राक्षसी वृत्तियाँ हैं

जो कि स्वयं को ब्राह्मण याने ब्रह्म जानने वाली मानती हैं। ऐसी कुवृत्तियों को प्रथम कुरूप कर उन पर से अपनी माया हटाना साधक का प्रथम कर्त्तव्य है। मानिये कोई वहुत सुन्दर स्त्री है जिस पर हम अति आसक्त हैं। उस स्त्री पर हमारी जो आसक्ति अथवा कथित प्रेम है वह उसकी उत्तम नाक, कान और सुष्ट स्तनों द्वारा है। उसकी नाक, कान और स्तन काटे जाने के पश्चात वह सुस्वरूप स्त्री कुस्त्ररूप बन जाती है। तो क्या उस कुरूप, अभद्र महिला पर हम प्रेमासक्ति करेंगे जिसका कि नाक, कान और स्तन काटे गये हैं? उसी प्रकार जिन आकर्षक वृत्तियों पर हम लुब्ध हैं, आसक्त हैं, प्रेम करते हैं, ऐसे कथित ब्राह्मण-वृत्तियों को कुरूप करने के लिए हम उसकी नाक, कान और स्तन नहीं काटेंगे? और इस प्रकार उन्हें कुरूप करने का काम राम सदा अपने भाई लक्ष्मण को ही देते हैं। लक्ष्मण याने साधक में स्थित विवेक है। इसी का मन विरोध हम विवेक द्वारा ही करते हैं इसलिए ताटका, अयोमुखी, सूर्पणखा और कुम्भकर्ण की नाक, कान और स्तन भी काटने के लिए राम अपने भाई लक्ष्मण को ही कहते हैं। ऐसी वृत्तियाँ कुरूप वनने पर भी साधक एकाद नीच कामी जन जैसा उस पर से अपनी आसक्ति नहीं हटा सकता है। इसलिए ताटका, अयोमुखी और कुंभकर्ण की नाक, कान, स्तन काटने के पश्चात भी उन्हें राम अपने सहायकों द्वारा इनके गले घोंटकर उन्हें काल के गाल में सदा के लिए छिपा देते हैं।

ब्राह्मण हत्यारे राम :

हम छत्रपति श्री शिवाजी महाराज को इसलिए मानते हैं कि वे गोब्राह्मण प्रतिपालक थे और रामायण में तो राम सरसहा सारे ब्राह्मण स्त्री-पुरुषों को ही छलबल से काटते हैं और मौत के घाट उतारते हैं। फिर ऐसे ब्राह्मण हत्यारे राम को कैसे आदर्श पुरुष माना जाय? इसलिए रामायण में वर्णित स्त्री पुरुष ब्राह्मणों का आशय और कुछ होना चाहिए जो कि ताटका के बारे में हमने जाना है। जिस प्रकार के धोखेबाज, नीच वृत्तियों द्वारा हम स्वयं को ब्रह्म जानने वाले ब्राह्मण मानते हैं उन सब कथित वृत्ति रूप स्त्री-पुरुष ब्राह्मणों की हत्या राम भगवान वनने के हेतु करते हैं। इसलिए जिसे आत्म-ज्ञान या ब्रह्म जानकर ब्राह्मण बनना है उस राम साधक को इस प्रकार की दांभिक वृत्ति रूप कथित ब्राह्मणों की हत्या करनी ही चाहिए। तथागत बुद्ध इसी प्रकार के दांभिक ब्रह्मवृत्तियों के विरुद्ध थे। वे ब्राह्मण के खिलाफ नहीं थे। वे हर किसी को अपने दोष और दुःख दूर कर निर्वाणपद

प्राप्त करने हेतु बौद्ध करना चाहते थे। जो आध्यात्ममार्ग में अपनी शुद्ध बुद्धि अथवा विवेक से कम लेता है उसे तथागत बुद्ध बौद्ध कहते हैं। रामायणकार गौतम बुद्ध जैसे यही वैदिक कार्य करते हैं। राम ऐसे ब्राह्मण हत्यारे हैं।

गलत स्मृतियाँ :

साधक के अन्तर्गत जो हीन वृत्तियाँ रहती हैं उनकी हत्या करने हेतु रामायणकार ने ताटका वध करने के लिए राम को विश्वामित्र द्वारा आज्ञा दी थी—

नहि ते स्त्रीवधकृते घृणाकार्या नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥१।२५।१७॥
नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा।
राज्यभार वियुक्तानामेष धर्मः सनातनः ॥१।२५।१८॥

साधक के अन्तर्गत जो नीच वृत्तियाँ हैं उनका हनन कर अपना चातुर्वर्ण्यरूप, श्रेष्ठ ब्राह्मण वर्ण याने ब्रह्म को जाननेवाली उत्तम वर्ण-अवस्था का और स्वराज्य रूप आनन्द-प्राप्ति की रक्षा के लिए इस प्रकार के ब्राह्मण स्त्रीरूप वृत्ति को मारने के लिए रामायणकार साधक राम को कहते हैं। परन्तु उसका ठीक आशय न समझकर तदन्तर काल में हुए मनु ने अपनी मनुस्मृति में गलत ढंग से लिखा है—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवा विचारयन्॥ ॥मनुस्मृति॥

मनु ने रामायणकार के पग पर पग डालकर गलत आज्ञाएँ लिखी हैं। रामायण में लिखित शूद्र शम्बुक के वध का सच्चा रामायणीन आशय न जानकर मनु ने शूद्र, चाण्डाल और स्त्रियों के बारे में बहुत अनुदार उद्गार निकाले हैं। परन्तु उसमें मनु का दोष नहीं है। मनु ऐसे समय हुआ था कि जिस समय रामायण एक आध्यात्मिक आदर्श ग्रन्थ नहीं वरन् एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है, यह माना जाता था। समय के अनुसार मनु ने अपनी स्मृति लिखी। यदि दोष है तो समय के अज्ञान का न कि अकेले मनु का। इससे यह दीख पड़ता है कि रामायण का आध्यात्मिक सत्य बहुत जल्दी याने मनु के समय तक ही भुला गया था।

मनु की देखा देखी अन्य स्मृतियाँ भी हुई जिनमें रामायण महाभारत का बिलकुल गलत आशय लेकर स्त्री, शूद्र और चाण्डाल पर अन्यायपरक लिखा

गया। परन्तु हम वह गलत धारणा दूर करें कारण कि हम अब इन आदर्श ग्रन्थों का आध्यात्मिक आशय समझ गये हैं। स्त्री, शूद्र, चाण्डाल ही नहीं वरन् सदाचारी परधर्मियों को भी हम वेद-ज्ञान जानने के लिए आग्रह कर सकते हैं और ब्रह्म जानकर ब्राह्मण बनने के लिए हम उन्हें सहायता दे सकते हैं। वेद प्रणित चातुर्वर्ण्य का आशय भी इसी प्रकार अति विभिन्न है जो कि आगे चलकर बताया जायेगा। भगवान गीता में भी कहते हैं--

चातुर्वर्ण्यंमया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ॥४।१३॥

श्रीमद्भगवद्गीता चातुर्वर्ण्य का भी आशय हमारे वर्णाश्रम धर्म वाले नहीं जानते हैं। हरएक गुण-कर्म और वृत्ति के अनुसार हरएक के शरीर की चारों ओर एक दिव्य वर्णपटल दिखाई देता है जिसका आधार लेकर शास्त्रकारों ने चार वर्ण बनाये हैं। यह वर्ण-रचना जन्म से नहीं वरन् व्यक्ति के गुण, कर्म और वृत्तियों के अनुसार देखी जाती है। इसलिए भगवान गीता में कहते हैं कि यह चातुर्वर्ण्य-रचना सृष्टि में ही निहित है न कि मानव-निर्मित समाज-रचना में। अतीन्द्रिय दिव्य वर्ण व्यवस्था को लेकर वैदिक चातुर्वर्ण्य है न कि जातिनिहाय व्यवस्था को लेकर !

मनु से लेकर सब शास्त्री पण्डित और स्मृतिकारों ने मध्यन्तर काल में ऐसी गलत काल्पनिक जाति-व्यवस्था में भारतीय समाज को जकड़कर वैदिक समाज पर बहुत अन्याय किया है। यह परिस्थिति अब हमें बदलनी है। वैदिक परम्परा में गुणकर्म और वृत्ति के अनुसार ब्रह्म जानकर कोई भी ब्राह्मण बन सकता है, फिर वह जन्म से शूद्र, चाण्डाल या अहिन्दू रहे। इस वचन का आगे चलकर विचार-विमर्श आयेगा ही।

ताटका का मन्नियोग राज्य :

ताटका का मन्नियोग राज्य सरयू के दक्षिण तट पर बताया है। ताटका एक अनार्य राक्षसी मानी जाय तो सरयू के दक्षिण तट पर याने अयोध्या से बिलकुल लगकर ही ऐसे अनार्य राक्षसों का राज्य कैसे रह सकता है? और इस प्रकार के राक्षसों के सान्निध्य में अयोध्या का कथित राज्य कैसे सुरक्षित रह सकता है, यह विचार करने योग्य बात है। दशरथ की चतुरंग प्रतापी सेना इन राक्षसों का क्यों न खात्मा कर सकी? ऐसे राक्षस जो कि ठीक से संस्कृत भाषा न बोल सकते थे, उनके राज्य का नाम बड़े बड़े शास्त्री

पण्डितों को भी उच्चारने के लिए कठिन है इस प्रकार 'मन्नियोग' कैसा रखा गया ? इसलिए यह स्पष्ट है मन्नियोग कोई राक्षस—राज्य नहीं था परन्तु साधक के अन्तःकरण की राक्षसी वृत्तियों का वह गढ़ था कि जिसके सहारे साधक अपनी कमजोरियाँ छुपाना चाहता था। बेचारा समाज ! बड़ों ने बताया वैसा मानता गया। पण्डितों ने रामायण-महाभारत को इतिहास बताया इसलिए वह भी वैसा मानने लगा। बहुजन समाज पण्डितों की सीख मानकर जाति-व्यवस्था मानने लगा इतनी कि आज जाति-व्यवस्था राष्ट्रभक्ति से भी श्रेष्ठ मानी गयी है। यह सतत के गलत संस्कारों के कारण है। परन्तु लेखक का यह अनुभव है कि यदि ठीक से बताया जाय तो बहुजन समाज और समाज के बुद्धिमान लोग, रामायण-महाभारत को आध्यात्मिक आदर्श और ब्राह्मणत्व सुयोग्य संस्कार द्वारा प्राप्त ऊँची अवस्था है जो कि कोई भी पा सकता है, यह मानने के लिए सहर्ष तैयार हैं।

ज्ञानमार्ग में प्रगति करने के लिए प्रथम अपने मन पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है जिसे कि भगवान पतञ्जली चित्तवृत्ति का निरोध कहते हैं। योग की व्याख्या वे करते हैं, 'योगः चित्त-वृत्ति निरोधः।' यहाँ निरोध याने विरोध नहीं वरन् कुशलता से किया जाने वाला संयम है, यह मानना चाहिए। वृत्तिरहित मन को पतञ्जली-चित्त कहते हैं। संसार में सब जगह जो चेतना है उसे चित्त कहा जाता है। उस चित्त का व्यक्तिगत आविष्कार याने चित्त है। इस व्यक्तिगत चित्त पर निरोध करने से योगी अपने मन को जीतकर संसार का स्वामी बन सकता है। इसी प्रकार का चित्त-वृत्ति निरोध याने रामायणकार का मन्नियोग है जिसमें यज्ञ याने तपस्या-साधना करने के लिए भगवान राम, लक्ष्मण, विश्वामित्र सह जाते हैं। उसी समय साधक में स्थित परायेपन की उच्छृंखल वृत्ति जोर करने लगती है जिसे कि रामायणकार ताटका कहते हैं। इस प्रकार के ताटका को भगवान राम मारते हैं।

मन के मन्नियोग राज्य से बाहर निकलकर अब हम भगवान राम के साथ उससे परे आने वाले आध्यात्मिक प्रदेश में जायेंगे और भगवान जो कुछ साधनाएँ करेंगे वह उनके साथ करें।



श्रीमद्वारायण बालकाण्ड

द्वितीय अध्याय

रामकुल का विचार :

आगे चलकर आने वाले घने जंगलों में से भगवान राम के साथ जाने के पहले हमें राम के कुल का विचार करना पड़ेगा। किसी भी व्यक्ति का एक ही कुल रहता है परन्तु भगवान राम के तीन कुल माने गये हैं। राम के बारे में सब कुछ विलक्षण है। राम के तीन कुल माने गये हैं। एक 'रघुकुल' तो सबों के ध्यान में है। तुलसीदासजी कहते हैं, 'रघुकुल रीत सदा चली आयी। प्राण जाय परू वचन न जाई।' रघु याने पाप से परे रहने वाला साधक। 'र' यह अग्निबीज है। अघ याने पाप। पाप को अग्नि में जलाने वाला साधक रध है। इस रध को उकार लगाकर रघु शब्द बनता है जिसका आशय पापरहित साधक ऐसा है। उसी प्रकार राम को 'ईक्ष्वाकु' कुल का माना है। इस शब्द-योजना में राम का प्राचीन पूर्वज न खोजते हुए उसका सरल आशय हम समझें। ईक्षु और वाक् उपशब्द मिला कर ईक्ष्वाकु शब्द बना है। ईक्षु याने ऊँख और वाक् याने वाणी। याने जिसकी वाणी अन्तःकरण की शुद्धता के कारण मीठी बन गई है उसे ईक्ष्वाकु वंश का कहते हैं। इस प्रकार ईक्षु+वाक मिलाकर ईक्ष्वाक शब्द बनाना चाहिए था परन्तु उस समय के संस्कृत भाषा-नियम के अनुसार नपुंसक लिंग को अन्त में उकार लगाते थे जैसे उपनिषद को सु प्रत्यय लगाकर उपनिषदषु गीता के प्रत्येक अध्याय के बाद लिखा गया है। उसी प्रकार ईक्ष्वाक का ईक्ष्वाकु बन गया जो कि राम का एक वंश है।

अब राम का तीसरा वंश काकुस्थ रहा। काकु याने स्वरज्ञान और काकुस्थ याने स्वरज्ञान रखने वाला। राम कौन-से स्वर जानते थे ? भगवान राम तो भगवान श्रीकृष्ण जैसे गायक, वादक नहीं थे फिर राम कौन-सा संगीत और स्वर जानते थे ? वह स्वर थे स्वरोदयशास्त्र के इंगला, पिंगला और सुषुम्ना स्वर। शरीर की बायीं तरफ रहने वाले नाडीस्वर को चन्द्रस्वर अथवा चन्द्र नाड़ी कहते हैं। और शरीर के दक्षिण तरफ स्थित योगस्वर अथवा योगनाड़ी को पिंगला नाड़ी कहते हैं। इन दोनों स्वरों के बीच में

सुषुम्ना नामक स्वर नाड़ी या योगनाड़ी रहती है। इन तीनों स्वरों का पूर्ण विज्ञान जो योगी जानता है उसे स्वरोदयी अर्थात रामायणकार की भाषा में काकुस्थ कहते हैं। इस प्रकार भगवान राम के तीन कुल माने जाते हैं, (१) रघु (२) ईक्ष्वाकु और (३) काकुस्थ। इस काकुस्थ का सही आशय न समझने के कारण कुछ विद्वान काकेशियस इस पूर्व यूरप में स्थित पर्वत के इर्दगिर्द रहने वाले लोगों को काकेशियन मानकर भगवान राम यह काकेशियन इलाके से भारत आया था, ऐसा मानते हैं। परन्तु यह सब मस्तिष्क के वबूले हैं, न कि प्रत्यक्ष सत्य ! यदि हुआ ही हो तो इसी काकुस्थ का अपउच्चार पूर्व यूरप तक जाकर काकेशियन बना है।

इन तीन स्वर नाड़ियों को संयम में रखकर साधक वहुत दिव्य शक्ति और सिद्धियाँ पा सकता है। इस प्रकार की दिव्य शक्तियुक्त श्रेष्ठ साधक को रामायणकार काकुस्थ कहते हैं। इस प्रकार राम तीन कुल के बताये गये हैं एक रघु, दूसरा इक्ष्वाकु और तीसरा काकुस्थ। जिस साधक को राम का आदर्श सन्मुख रख भगवान रामचन्द्र वनना है उसे अपना पारंपरिक कुल त्यागकर राम जैसे क्रमागत रघु, ईक्ष्वाकु और काकुस्थ कुल का बनना पड़ेगा। इस प्रकार तीन कुलोत्पन्न वनकर और ताटका का मन्नियोग राज्य में वलात् जाकर वध कर राम अव ऋषि विश्वामित्र सह चित्ररथ वन में गमन करते हैं। वहाँ पर विश्वामित्रजी राम लक्ष्मण को सारे चक्रों का ज्ञान देकर उसका प्रत्यक्ष अभ्यास करवाते हैं। इन चक्रों का अभ्यास न करते हुए राम अहल्या का उद्धार एवं शिवधनुष को उठा कर सीता को स्वयंवर में नहीं जीत सकते हैं।

चक्रों का अभ्यास

योग मार्ग में कई प्रकार के चक्रों का अभ्यास करना पड़ता है जिसके सिवाय साधक ऊँचा योगी नहीं वन सकता है। विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को ऊँचे योगी बनाना चाहते हैं इसलिए सारे चक्रों का अभ्यास वे उन्हीं द्वारा करवा लेते हैं। उस समय जिन योग चक्रों का अभ्यास चलता था उन सब योग चक्रों का समस्त ब्यौरा रामायण में वाल्मीकिजी देते हैं। इससे यह दीख पड़ता है कि वाल्मीकि अच्छे योग साधक भी थे अन्यथा वे इस प्रकार समस्त योग चक्रों की जानकारी अपने ग्रन्थ में नहीं दे सकते। वह चक्र इस प्रकार है, दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र तथा इन्द्रचक्र। दण्डचक्र याने नियती का चक्र, धर्मचक्र याने व्यक्ति निहाय

पिंड-रचना की शक्ति-केन्द्र, कालचक्र याने काल की अगम्य गति एवं उसका कूटशास्त्र, विष्णु चक्र माने विश्व-रचना के लिए जो दिव्य प्रदक्षिणा गति आवश्यक है वह और जिस द्वारा वैदिकों ने अपना स्वास्तिक चिन्ह उभारा है वह ज्ञान और इन्द्र चक्र याने अपने जड़ शरीर में स्थित जो अनेक योगचक्र हैं वह। इन सब दिव्य योग चक्रों का प्रत्यक्ष ज्ञान वाल्मीकिजी विश्व के मित्र याने विश्वामित्र द्वारा साधक राम रूप और लक्ष्मण रूप साधक से करवा लेते हैं। ज्ञान केवल प्रवचन सुनकर अथवा पुस्तकें पढ़कर नहीं प्राप्त होता है उसके लिए प्रत्यक्ष साधनाएँ कर अनुभव लेने पड़ते हैं। वाल्मीकिजी उस समय के ज्ञात सब योग-चक्रों का ज्ञान देते हैं परन्तु केवल सूत्र द्वारा जिनका कि सब ज्ञान हमें स्वयं खोजना पड़ेगा।

(१) दण्डचक्र :

दण्ड याने नियती या प्रकृति की कार्यवाही जो कि अपने नियत नियमों द्वारा चलती है। इन्हीं नियती नियतबद्ध अवस्था को दण्डपाणी अथवा यमराज कहते हैं। भगवान वेद व्यास दण्डपाणी का अर्थात् यमराज का अपने ढंग से वर्णन करते हैं। महाभारत द्रोणपर्व के अध्याय ५४ के श्लोक ४९ और ५० में नारद अकम्पन राजा को उसके हरि नामक पुत्र की मृत्यु पर सांत्वना करते समय कहते हैं—

एषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम् प्राप्ते काले संहरन्ति यथावत्।
स्वयंकृत्वा प्राणहरा प्रजानाम् आत्मानं वै प्राणिनो ध्वन्ति सर्वे॥
नैतात् मृत्युः दण्डपाणिः हि नस्ति तस्मान्मृतान् नानुशोचन्ति धीरा।
मृत्यु ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम्॥ महाभारत द्रोणपर्व ५४।४९-५०॥

भगवान अपनी माया द्वारा स्पष्ट जगत का निर्माण करते हैं और समय आने पर अपनी माया का संहार करते हैं। इसमें दण्डपाणि नामक कोई यमदेवता नहीं है जिस द्वारा मृत्यु आती है। मृत्यु ब्रह्मसृष्टि का एक आवश्यक अंग है। इसलिए धीर पुरुष कभी विलाप अथावा दुःख नहीं करते हैं।

परन्तु भगवान वेद व्यास रचित श्रीभगवद् गीता में ईश्वर अथवा भगवान को प्रकृति के सभी झमेलों से अलग बताया है। गीता कहती है—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥ श्लोक १४, अध्याय ५॥
नादत्ते कस्याचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञाने नावृतं ज्ञानं तेनमह्यन्ति जन्तवः॥ श्लोक १५, अध्याय ५॥

यह सर्व जगत अपने-अपने गुण प्रवृत्तियों द्वारा चल रहा है। प्रभु न तो कर्म उत्पन्न करते हैं या न तो कर्तृत्व। यह सव अपने-अपने स्वभाव द्वारा चल रहा है। प्रभु न किसी का पाप उत्पन्न करते हैं या न लेते हैं परन्तु अज्ञान के कारण जीव उस प्रकार समझते हैं। प्रभु इन सब झमेलों से ऊपर हैं। यह सव प्रकृति की माया है, प्रभु की नहीं! परन्तु फिर गीता कहती है कि प्रकृति और पुरुष को अनादि मानिये—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद् अनादी उभावपि।

विकाश्चैव गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान ॥अध्याय १३, श्लोक१९॥

नियती का प्रवाह चल रहा है उसे न आदि है और न अन्त! यह सारा विश्व हर क्षण उत्पन्न होता है और हर क्षण उसका नाश होता है। सूर्य द्वारा अनगिनत प्रकाश वाहर फेंका जाता है। इस दृष्टि से सूर्य की मृत्यु हर क्षण हो रही है परन्तु उसी प्रकाश द्वारा विश्व के सुयोग्य कोने में अन्य जगत भी उत्पन्न हो रहा है। 'उत्पद्यन्ते विलीयन्ते' यह नियती का क्रम चालू है। विश्वामित्र इसी दण्डचक्र का परमज्ञान राम लक्ष्मण को देते हैं।

(२) धर्मचक्र :

धर्म याने हिन्दु, मुसलमान, ईसाई या यहूदी मज़हव नहीं वरन् जिस स्वभाव गुण द्वारा वस्तु जातों की धारणा होती है उसे धर्म कहते हैं। इसीलिए धर्म की परिभाषा शास्त्रकार करते हैं, धारणात् धर्मम् इत्याहु: धर्मो धारयते प्रजा।' प्रत्येक वस्तु जात एवं पिंड का धर्म विभिन्न रहता है और अपने-अपने धर्म द्वारा वह अस्तित्व अथवा पिंड अपना जीवन चलाता है। गुरुत्वाकर्षण के वातावरण में ऊपर फेंका गया पत्थर गुरुत्वाकर्षण के कारण अपने आप नीचे आता है। यही उसका धर्म है और गुरुत्वाकर्षण रहित वातावरण में वहीं पत्थर नीचे नहीं आयेगा वरन् गति की दिशा में सदा चलेगा। यह भी उसका धर्म है। प्राप्त परिस्थिति के अनुसार वर्ताव होना इसीको धर्म कहते हैं। यह वर्तन वस्तु के अपने-अपने गुण स्वभाव द्वारा निर्धारित किया जाता है। कुत्ते का कण्ठ मानव के कण्ठ से विभिन्न है इसलिए कुत्ता केवल भोंकता है और मानव अच्छी वाणी वोलकर अपने विचार प्रकट करता है। कण्ठों के विभिन्न धर्मों के अनुसार विभिन्न आवाज निकलती है। कुत्ते का धर्म भोंकना है तो मानव का धर्म वाणी द्वारा विचार व्यक्त करना है।

अनेक जन्मों द्वारा संस्कारित होने वाली जीवात्मा और उस जीवात्मा के अनुसार मिलने वाला उपकरण रूप शरीर इन दोनों के संयुक्त अस्तित्व को

पिंड कहते हैं। इसलिए हर पिंड का धर्म विभिन्न रहता है 'पिंडे-पिंडे मतिर्भिन्ना।' इसीलिए कहा गया है —हर एक पिंड का स्वभाव गुण परख कर और उसके स्वभाव गुण को कौन-सा यत्न किस प्रकार सुयोग्य होगा इसका वैज्ञानिक ढंग से विचार कर जो यत्न शास्त्र बताया है उसे धर्म कहते हैं। इसलिए हर एक का धर्म विभिन्न रह सकता है। एक व्यक्ति का यत्न प्रयास औरों के लिए सुयोग्य होगा ही, ऐसा नहीं। वैदिक परम्परा ने यह सब जाना था और इसीलिए वैदिक परम्परा में व्यक्ति निहाय उपासना-पद्धति बतलाई जाती है। अवैदिक परम्पराओं में इस प्रकार पिंड धर्म का अभ्यास न होने से उपासना का सर्वंकष और सुयोग्य अभ्यास नहीं है। अन्य मज़हबों में केवल कवायत (regimentation) है। इसीलिए वैदिक परम्परा में अनेक महात्मा और सन्त बन गये और हो रहे हैं। यह भाग्य अन्य मज़हबों को नहीं मिला और इसका कारण उनका अशास्त्रीय एवं संकुचित दृष्टिकोण है। धर्म को भी विज्ञान की आवश्यकता है अन्यथा सुव्यक्तियों को कुव्यक्ति बनाने के सिवाय धर्मों को कोई काम नहीं रहेगा। केवल अभिनिवेश याने धर्म नहीं है। प्राप्त अवस्था से स्वयं को ऊपर उठाकर नर का नारायण बनने की प्रक्रिया को ही धर्म कहते हैं। मानव का धर्म एकही है और वह है ज्ञान-प्राप्ति याने वैदिक परम्परा! कानों में उंगलियाँ डालकर जोरों से चिल्लाना अथवा घुटनों को टेककर आँखें बन्द करना और अपने सम्प्रदाय का जो नहीं माना जाता है इसका द्वेष करना अथवा उसे खतम करना इसे धर्म नहीं कहते हैं।

ऋषि विश्वामित्र भगवान राम और लक्ष्मण को यहीं धर्मचक्र बताते हैं जो कि हर मानव साधक के लिए आवश्यक है। वैदिक परम्पर ज्ञान एवं विज्ञान की नींव पर आधारित है इसलिए वैदिक परम्परा अखिल मानव जाति के उत्थान और उत्क्रान्ति के लिए परम आवश्यक है।

(३) काल चक्र :

गति के कारण काल भासमान होता है अथवा काल नामक कोई चीज नहीं है। काल-गणना के बाबत भगवान पतञ्जली कैवल्यवाद के सूत्र १२ में कहते हैं—'अतीनानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्व भेदाद्धर्माणाम्।' भूत भविष्य काल प्रतीत होते हैं जब कि काल-प्रवाह् विरुद्ध दिशा में गतिमान होते हैं। मूलतः काल ही नहीं है। इस पर विख्यात वैज्ञानिक आइनस्टाइन ने अपने सापेक्षता

सिद्धान्त में सुन्दर विवेचन किया है। प्रकाश गति से, कम गति से वेग हो तो भविष्यकाल लगता है परन्तु प्रकाश वेश के साथ यदि गति हो तो वह निरीक्षक सदा वर्तमान काल में रहेगा। ऐसे प्रकाश वेग सम्पन्न अस्तित्व के लिए भूत और भविष्य काल नहीं रहेगा। जो अस्तित्व प्रकाश गति से अधिक वेगवान रहेगा उसे सब घटनाएँ उलट क्रम से दिखाई देंगी। बालक माता की गोद में जन्म लेकर बाहर निकलता है, किशोर बनता है, तरुण बनता है, उमरदार व्यक्ति बनकर वृद्ध बनता है और फिर एक दिन भूमि में समा जाता है। प्रकाश वेग से यात्रा करने वाले व्यक्ति को घटनाक्रम उलटा दिखेगा। याने उसे वृद्ध भूमि से बाहर निकलकर लकड़ी के सहारे चलता हुआ दिखेगा। फिर वह वृद्ध उमरदार बनते हुए दिखेगा। उमरदार का तरुण और तरुण का किशोर एवं बालक बन वह अपनी माता के उदर में प्रवेश करते हुए दिखाई देगा। काल और वेग की सुन्दर कल्पना भगवत और महाभारत में बहुत सुन्दर ढंग से कथा रूप में आयी है।

सदा वर्तमान काल में रहने की कथा भगवान श्रीविष्णु के साथ युग-युग से रहने वाले सदा बालक रहनेवाले सनकादिक ऋषिओं के रूप में है। सभी देवताएँ सदा चिर तरुण दिखाई देते हैं। यह भी सब समय वर्तमान काल की कथारूप कल्पना है। भागवत में लिखित रेवत रेवती की कथा काल-गणना से परे अवस्था का द्योतक है। कथा इस प्रकार है! रैवत नामक एक राजा था। उसे रेवती नाम की सुस्वरूप कन्या थी। अपनी कन्या के लिए सुयोग्य वर मिले यह रैवत राजा चाहता था। उसने सारी पृथ्वी खोज डाली परन्तु उसकी कन्या के लिए उसे सुयोग्य वर नहीं मिलता था। उसने एक बात सोची। जिसने यह संसार बनाया उस ब्रह्मदेव के पास वह अपने लिए सुयोग्य जामात की खबर लेने गया। रैवत राजा ब्रह्माजी के पास गया तब ब्रह्माजी संध्या वन्दन आदि करते थे। बहुत थोड़े समय में ब्रह्माजी रैवत राजा के पास आकर उसे उनके पास आने का कारण पूछते हैं। रैवत राजा ने सब हाल सुनाया और इच्छा की कि उसकी पुत्री के लिए ब्रह्माजी सुयोग्य वर बतायें। उसपर ब्रह्माजी ने कहा कि द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलरामजी हैं उन्हें रैवत अपनी पुत्री दे दें। परन्तु रैवत राजा के काल में इस प्रकार द्वारकाधीश श्रीकृष्ण और उनके भाई बलराम नहीं थे। इसलिए राजा रैवत ने ब्रह्माजी से कहा कि पृथ्वी पर द्वारकाधीश श्रीकृष्ण और उनके ज्येष्ठ बंधु बलराम कोई भी नहीं हैं।

ब्रह्माजी ने राजा रैवत को जो उत्तर दिया, वह आज के वैज्ञानिक अन्वेषण से बिलकुल ठीक मिलता है। ब्रह्माजी ने कहा कि यद्यपि रैवत को ब्रह्मलोक में कुछ क्षण ही लगे हों परन्तु उधर पृथ्वी पर याने मृत्युलोक में कई युग बीत गये हैं। पृथ्वी पर अभी २८वाँ मन्वन्तर चालू है और द्वापर युग समाप्त हो रहा है जिसमें कि द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के भाई बलराम उपस्थित हैं। रैवत राजा पृथ्वी पर आकर देखता है तो बात सही थी। फिर बलराम से रेवती का विवाह सम्पन्न हुआ। इस कथा में सब व्यक्ति काल्पनिक हैं न कि इतिहास ! परन्तु उसमें निहित जो काल-विज्ञान है वह चिर सत्य है। काल का और एक उदाहरण आजकल दिया जाता है। वस्तु जात की अन्तिम अवस्था काल्पनिक अणु परमाणु मानी जाती थी। अब परमाणु के बाद भी ओत याने इलेक्ट्रान अवस्था सिद्ध हुई है जिसके आधार पर आजकल का सब ओत विज्ञान (electronics) विकसित हो रहा है। इस ओत से भी बढ़कर सूक्ष्म अस्तित्व पाये गये हैं जिन्हें कि सीट्रान न्यूट्रान कहा जाता है। यह अवस्थाएँ जड़ नहीं हैं, जड़ से परे हैं। अब इनसे भी अति सूक्ष्म अवस्था पायी गई है जिसे टेकिओन्स कहते हैं। इस टेकिओन्स की गति प्रकाशगति से साढ़े तीन गुना अधिक मानी जाती है। इसलिए सूर्यस्थित प्रकाश किरणों को प्रकाशवेग से पृथ्वी पर आने के लिए यदि दस मिनट लगते हैं तो टेकिओन्स गति से वह चीज पृथ्वी पर नियत समय से पचीस मिनट पहले ही आ जायेगी।

मान लीजिये सुबह दस बजे सूर्य से पृथ्वी पर प्रकाशवेग से आते हैं तो दस बजकर दस मिनट लग जायेंगे। परन्तु सूर्य से पृथ्वी पर टेकिओन्स वेग से सुबह दस बजे निकलते हैं तो वह अस्तित्व पृथ्वी पर दस बजने को पचीस मिनट पहले ही पृथ्वी पर आ सकेगा। याने टेकिओन्स गति में काल पीछे जाता है। रैवत राजा की कथा में काल बहुत आगे बढ़ गया है तो ऊपर के उदाहरण में काल पीछे चला गया है। यह सब काल की अगम्य गति है जो कि साधारण बुद्धि से परे है। इसीलिए वैदिक परम्परा में भगवान को काल कहा गया है। भगवान काल। काल सापेक्षता पर निर्भर है। वास्तव में न काल है और न विश्व ! जो है वह सब आभास है। इसीलिए सर जेम्स जीन्स कहते हैं, 'There are no events we come across them.' सन्त ज्ञानेश्वर कहते हैं, 'जो हुआ ही नहीं उसके बारे में पूछते ही क्या हो ?' कालचक्र का यह सब ज्ञान विश्वामित्र राम लक्ष्मण को करा देते हैं। विश्वामित्र कहते हैं, 'राम, इस प्रकार काल की अगम्य महिमा है।'

(४) विष्णुचक्र :

'विज्ञ' याने प्रजा या अस्तित्व और विष्णु याने अस्तित्वों का पालन करने वाली रक्षक-शक्ति । विश्व की अवस्थाएँ तीन मानी गई हैं—एक उत्पत्ति, दूसरी स्थिति और तीसरी लय । स्थिति अवस्था को ही विष्णु कहा जाता है । गुरुत्वाकर्षण के कारण नदी के जल में प्रवाह उत्पन्न होता है । परन्तु वह जल किसी वर्तन में रखने से उस जल के कण वर्तन की दीवार पर सतत टकराकर वापस जाते हैं और इसलिए वर्तन स्थित जल उस बर्तन में स्थिर रहता है । हर एक अवस्था को स्थिर रहने के लिए उसके अंतर्गत चलने वाली एक अन्तगति रहती है जिसे कि प्रदक्षिण गति कहते हैं । यही प्रदक्षिण गति वस्तुमान की धारणा करती है । इसीलिए भगवान श्रीविष्णु की उँगलियों में एक चक्र वताया जाता है जो कि प्रदक्षिण गति से घूमता है । विश्व की दिव्य प्रदक्षिण गति रक्षा करती है तो अपसव्य गति अवस्था का नाश करती है । स्थिति की प्रदक्षिण गति ही विष्णु चक्र है जिसे कि भगवान वेद व्यास सुदर्शन चक्र कहते हैं । सुदर्शन चक्र क्यों तो वह चक्र गति हमारे जैसे स्थिति रूप जीवों को उपकारक रहती है । इसी सुदर्शन द्वारा भगवान विष्णु भक्तों की रक्षा करते हैं, यह कथाओं द्वारा वताया गया है ।

सूर्यादि तारागणों द्वारा जो उर्जा वाहर पड़ती है उसे प्रकाश कहा जाता है । प्र याने आगे और काश व्याप्त करना जिसे कि अंग्रेजी में unbottled waves कहते हैं । यह प्रकाश उर्जा गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में आने के पश्चात वह प्रकाश उर्जा अपने चारों ओर अपने आप घूमने लगती है जिसे कि अंग्रेजी में battled waves कहते हैं । इन वन्दिस्त उर्जा अर्थात् bottled waves के द्वारा वस्तु संधारण होता है । उर्जा अपने चारों ओर घूमती है तब उसे ओत अथवा इलेक्ट्रान कहते हैं । इन ओतों के द्वारा परमाणु बनते हैं जो कि अणु बनाते हैं । इन अणुओं द्वारा विभिन्न पदार्थ बने हैं जो कि बदलते संसार का स्वरूप हैं । इसलिए संसार की स्थिति के लिए उर्जा-गति अपने चारों ओर अपने आप घूमे, यह नितान्त आवश्यक है । इसी स्थितिधारक प्रदक्षिण गति को रामायणकार विष्णुचक्र कहते हैं जो कि सदा प्रदक्षिण गति में घूमकर वस्तु संधारण करती है । विष्णु याने जगत की संसार गति, स्थापक गति, सुदर्शन गति है ।

विष्णुचक्र की प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय अनुभूति :

हठयोग में एक अति कठिन अभ्यास है जिसके द्वारा योगसाधक अपने जड़शरीर से बाहर निकलकर पुनः अपने जड़शरीर में सकुशल प्रवेश कर सकता है। इस सिद्धि या अभ्यास को शवासन कहते हैं। इस शवासन अभ्यास के साथ और एक हंसजय नामक अभ्यास सिद्ध करना पड़ता है। हंसजय और शवासन अभ्यास सिद्ध होने पर योगी अपने जड़शरीर से बाहर निकलकर पुनः उसी जड़शरीर में प्रवेश कर सकता है। इस दिव्य प्रक्रिया में आने वाले सर्व अनुभव जड़शरीर से परे रहने के कारण अतीन्द्रिय कहलाते हैं। जड़शरीर का त्याग कर बाहर जाना यानी मृत्यु ही है। इस प्रकार के जीते जी मृत्यु का अनुभव लेने पर कुछ दिव्य अनुभूतियाँ आती हैं। शरीर के बाहर जाते समय कई प्रकार के अन्यान्य अनुभव आते हैं। उसी प्रकार अपनी जीवात्मा को लेकर बाहर घूमकर पुनः अपने शरीर में प्रवेश करते समय उलट प्रकार के दिव्य अनुभव आते हैं। उनमें से विष्णु चक्र के अनुभव देखें।

शरीर से बाहर जाते समय श्वास-प्रश्वास बन्द होकर हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है। फिर साधक का सूक्ष्म शरीर जड़शरीर के विशिष्ट स्थान द्वारा वर्हिगमन करता है। उस समय साधक की जड़ आँखें काम नहीं कर सकती हैं कारण जड़ शरीर जीवात्मा बाहर निकल जाती है। उस समय साधक की दिव्य आँखें काम करती हैं और दिव्य चक्षु, श्रोत्र, स्पर्श आदि तन्मात्राओं द्वारा अनुभूति करता है। उर्ध्वगमन के समय साधक अपनी दिव्य आँखों द्वारा अपने अस्तित्व के सन्मुख एक दिव्य चक्र देखता है जो कि दिव्य प्रकाश युक्त रहकर अपनी चारों ओर उलट गति से याने अपसव्य गति से घूमते हुए दिखाई देता है। उस अपसव्य गति को विशिष्ट प्रकार का नाद रहता है जो कि सर्व नादों का मिश्रण रहता है। व्यवहार में उस प्रकार का नाद सायरन जैसे रह सकता है। परन्तु वह मृत्युनाद सायरन से भी अधिक विचित्र एवं भयानक रहता है। पुनः शरीर प्रवेश के समय उसी दिव्य चक्र की गति प्रदक्षिण याने सव्य गति में रहती है। फिर अपने जड़ शरीर में प्रवेश करने के पश्चात साधक के हृदय की धड़कन पुनः शुरू होकर सर्व शरीर में पुनः रक्त प्रवाह शुरू हो जाता है और साधक पुनः अपने व्यावहारिक काम में लग जाता है।

जड़ शरीर में वापस आना याने जड़ शरीर पुनः जीवित होना है। घटनाओं के लिए दिव्य जगत में इस प्रकार सव्य अथवा प्रदक्षिण गति रहती है। विष्णु याने घटना-प्राप्ति याने जीवित रहना है इसलिए विष्णु चक्र की

गति प्रदक्षिण अथवा सव्य रहेगी। इसी सव्य गति का एक चक्र बनाकर उसे सुदर्शनचक्र नाम दिया है जिसे कि उन्होंने भगवान श्रीविष्णु और उनके अवतार श्रीकृष्ण को उँगली में घूमाते हुए रखा है। विश्व घटने के लिए आवश्यक ऐसे प्रदक्षिण गति को ही रामायणकार विष्णु चक्र कहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की जटिल और गहन योग साधनाओं की प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ वाल्मीकिजी को थी। इसीलिए रामायण जैसा अतीन्द्रिय अनुभवों से भरा हुआ महान ग्रंथ लिखने के लिए उसके लेखक को उच्च योगी बनना पड़ता था। इस प्रकार उच्च योगी बनने के लिए योगी को कठोर तपस्या कर मुनि पुंगव बनना आवश्यक था। इसीलिए वाल्मीकिजी रामायण स्वयं की तपः स्वाध्याय निरतं और मुनिपूंगव कहते हैं। यह उनका अधिकार था न कि अहंकार !

(५) इन्द्र चक्र :

इन्द्र याने शरीरांतर्गत इन्द्रियों का स्वामी जिसे कि जीवात्मा कहते हैं। वेदों में इस इन्द्र का क्या वर्णन है वह हमने पूर्व अध्यायों में देखा है। ऋग्वेद १।१७४।१९। के अनुसार इन्द्र की परिभाषा निम्न जैसी है—

ये अर्वाञ्चरतां उ पराच आहुर्य पराञ्चस्तां उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥

अपने शरीर में सात योग-चक्र रहते हैं जिसे कि कोई सप्त पाताल, सप्तभूमि, सप्त स्वर्ग, सप्तलोक अथवा सप्तर्षि कहते हैं। कोई-कोई यह योग-चक्र नौ अथवा ग्यारह अथवा पन्द्रह मानने हैं। परन्तु वैदिक परम्परा में उपरनिर्दिष्ट सातों का जो प्रपंच है उस प्रकार सात ही योगचक्रों को मानना उचित होगा। रंग भी सात ही, स्वर भी सात और सागर भी सात ही माने हैं इसलिए अपने लिए इन्द्र-चक्र भी सात ही है। वह इस प्रकार है—(१) मूलाधार, (२) नाभी, (३) हृदय, (३) कण्ठ, (५) तालू, (६) भ्रूमध्य और (७) सहस्त्रार।

(१) मूलाधर चक्र :

यह चक्र गुदा से सामने की ओर थोड़ा ऊपर रहता है जहाँ कि कुंडलिनी स्थित है, ऐसा माना जाता है। परंतु कुंडलिनी के मूलाधार में ही नहीं वरन् सारे शरीर के अन्तर्गत जो कोसिकाएँ हैं उसके गुणाणु द्वारा स्पन्दित हैं। परन्तु यह सत्य है कि मूलाधार ध्यान करने से कुंडलिनी जागृत होने के लिए सुविधा होती है। रामायणकार के अनुसार यह पहला इन्द्र-चक्र है।

(२) नाभी अथवा मणिपुर चक्र :

यह योग चक्र ठीक नाभी-स्थान पर रहता है जिसे सिद्ध करने से साधक अपने जड़ शरीर का पूर्ण ज्ञान अपने आप पाता है। इसके अलावा साधक का शरीर गुरुत्वाकर्षण के नियमों स्वेच्छा से हटाकर जमीन से ऊपर तैर सकता है। इसी साधना को अधिक बढ़ाने से साधक का शरीर तूलकाय बनकर वह स्वेच्छा से आकाश-गमन कर सकता है। परन्तु यह सारी सिद्धियाँ करने के लिए साधक को अपना पूर्ण जीवन देना पड़ता है तब कहीं एकाद सिद्धि प्राप्त हो सकती है। अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए अनेक जन्मों तक साधना व्यवहार करना पड़ेगा। इस प्रकार की सिद्धि-योग को हठयोग कहते हैं जो कि साधारण व्यक्ति के लिए अतिशय कठिन एवं दुरापास्त है। इसके अलावा इस प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करने से अतीन्द्रिय शक्तियाँ अवश्य प्राप्त होंगी परंतु आत्मज्ञान नहीं प्राप्त होगा। सिद्धियों के पीछे पड़ने से साधक का अधःपतन हो जाता है। इसलिए श्रेष्ठ साधक, महात्मा और सन्तजन सिद्धियों के पीछे नहीं पड़ते हैं।

(३) हृदय अथवा अनहृत चक्र :

यह इन्द्र चक्र सीने के मध्य स्थान में यानी भावनिक हृदय में रहता है। इसे सिद्ध करने से साधक अपना हृदय तक बन्द कर सकता है। इसकी सिद्धि से साधक अनेक अनाहतनाद सुन सकता है जो कि बिना किसी आघात से प्राप्त होते हैं। हर एक अस्तित्व अपने अस्तित्व घटना के कारण कुछ स्पन्दन चक्र तैयार करता है जिस कारण उस अस्तित्व का अपना एक नाद रहता है। इस प्रकार की प्राकृतिक घटना-नाद को अनाहत नाद कहा जाता है। यह सिद्धि प्राप्त होने से साधक सूर्य का नाद उसकी किरणों द्वारा सुन सकता है जो कि सागर की लहरों जैसा सुनाई देता है। चन्द्रमा और तारों के भी नाद सुनाई देते हैं। कई बार साधक घँटानाद, बाँसुरी नाद, ढोल जैसे नाद, मृदंग नाद, घुंघरू नाद, वीणानाद, भयानक आकाश नाद इत्यादि प्रकार के विभिन्न नाद सुन सकता है। चींटी के चलने से जो आवाज उत्पन्न हो सकती है उसे भी योगी सुन सकता है। कबीरजी अपने दोहे में स्पष्टतया कहते ही हैं—

'चींटी के पाव में घुंघरू बाँधे वो भी साहब सुनता है।'

इस प्रकार के अनन्त अनाहत नाद में साधक मस्त रहता है और इसलिए वह दुनियादारी व्यवहार से परे रहता है। उसका अपना ही एक आनन्दमय विश्व रहता है। परन्तु आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए ऐसे नाद ब्रह्म से भी साधक

को परे जाना आवश्यक है अन्यथा वह साधक उसी नाद मयता में उलझकर परम-प्राप्ति से वंचित रहेगा।

इसीलिए रामायण में एक कथा लिखी है जिसमें वाली अपना शत्रु दुंदुभी का पीछा कर उसको एक बिल में जाकर एक साल के बाद मारता है। यह दुंदुभी याने ढोल अथवा ढोल जैसे अनाहत है जिसे कि वाल्मीकि दुंदुभी राक्षस कहते हैं। श्रेष्ठ साधक वाली की राजधानी किष्किंधा नगरी को सुरक्षित रखने के लिए साधक वाली को इस प्रकार के अनाहतनाद रूप दुंदुभी को जान से मारना आवश्यक है अन्यथा साधक रामरूप नहीं बन सकता है। आत्मज्ञान के लिए अनाहतनाद माया से भी ऊपर उठना योगी के लिए पर आवश्यक है।

(४) कण्ठ अथवा विशुद्ध चक्र :

यह इन्द्रचक्र ठीक कण्ठ-स्थान में है। इसे सिद्ध करने से साधक बिना अन्न जल रह सकता है जिसे कि बला एवं अतिबला विद्या कहते हैं जिसकी जानकारी पूर्व अध्याय में दी गयी है। इसे जालन्दर बन्ध भी कहते हैं। यह सिद्ध होने से साधक का गला अपने आप घूंटकर साधक बिना हवा के भी रह सकता है। इस प्रकार जो महान योगी बिना श्वास-प्रश्वास रह सकता है उसे महाभारतकार अश्वत्थामा कहते हैं। इस अवस्था को केवल कुंभक भी कहा जाता है। साधना में यह एक अति उच्च अवस्था है। इसे सिद्ध होने से खेचरी मुद्रा अपने आप सिद्ध हो जाती है। ऐसे खेचरी मुद्रा सिद्ध योगी को योग-परिभाषा में 'खेचर' कहते हैं जो कि सारे विश्व को जानकर आत्मतृप्त रहता है। 'ख' याने आकाश अथवा विश्व और 'चर' याने गमन करने वाला श्रेष्ठ साधक। कण्ठचक्र की सिद्धि से साधक की आवाज भी बहुत मीठी बन जाती है। इस प्रकार की मिठी आवाज के साधक को रामायणकार ईक्ष्वाकु अथवा सुग्रीव कहते हैं। इसीलिए आगे चलकर कथाओं में रामायणकार दिखाते हैं कि राम और सुग्रीव का सख्य होकर वे दोनों सीता की खोज कर लंका पर धावा करते हैं और रावण का वध करते हैं। रावणरूप अहंकार का नाश होने के लिए साधक में स्थित राम और सुग्रीव की संधि-मिलन होना परमं आवश्यक है।

(५) तालु चक्र :

यह योग-चक्र अथवा इन्द्र-चक्र जिह्वा के पीछे कऊवा के पीछे वाले गर्त में रहता है। इसे सिद्ध करने से साधक के तालू स्थित ब्रह्मरन्ध्र से बून्द-बून्द

जैसे एक प्रकार का स्वर्गीय रस टपकता है जिसका पान करने से योगी का शरीर तेजस्वी एवं अमर बन जाता है। इस प्रकार के अमृत पान करने वाले परम योगी को भगवान वेद व्यास ग्वाला कहते हैं। इसीलिए व्यासजी ने भगवान् गोपाल कृष्ण को ग्वाला बतलाया है। गोपाल कृष्ण प्रत्यक्ष ग्वाला जाति के नहीं थे वरन् इस प्रकार वे आध्यात्मिक ग्वाला थे। जो साधक इस प्रकार अमृतदोहान कर अमर बनता है उसे व्यासजी भगवान गोपाल कृष्ण करते हैं जो कि ग्वाला हैं। जो कर्षण करता है उसे कृष्ण कहते हैं, 'कर्षति इति कृष्णः'। इसलिए कृष्ण भी ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं।

इस सिद्धि को प्राप्त करने हेतु कोई साधक अपने जिव्हा के नीचे वाली शिरा काटकर जिह्वा को उलटी कर उस ब्रह्मरन्ध्र में घुसेड़ते हैं और वहाँ से अमृत स्राव को कर्षण करते हैं। इसी को गोदोहन कहते हैं। गो याने इन्द्रिय और दोहन याने अतीन्द्रिय शक्तियाँ प्राप्त करना। भगवान गोपाल कृष्ण इसी प्रकार की गौ की रक्षा करते हैं और इसी प्रकार की गौ के दुध का पान करते हैं। हर योग साधक इस प्रकार गोदोहन कर भगवान गोपाल कृष्ण बन सकता है।

भ्रूमध्य चक्र :

यह चक्र ठीक भ्रूमध्य में है जिसके सिद्ध होने से साधक को अपने आप संसार का सब ज्ञान हो जाता है। सब ज्ञान का केन्द्र है भ्रूमध्य। इसलिए श्रीमद्‌भागवत में भ्रूमध्य पर ही ध्यान करने के लिए कहा है। श्रेष्ठ ध्यान भ्रूमध्य पर ही है। जन्म-मृत्यु के समय जीवात्मा इसी द्वार सें आवागमन करती है। इस पर ध्यान एकाग्र करने से इससे लगकर जो आज्ञाचक्र है वह जाग्रत होकर योगी अपना पूर्व जन्म अथवा भविष्य का जन्म भी जान सकता है। इसमें स्थित योग-नाड़ी को प्राणवहा नाड़ी कहते हैं जिसे सिद्ध करने से योगी अपने शरीर से अपनी जीवात्मा निकालकर परकाया-प्रवेश कर सकता है। आद्य शंकराचार्य और मच्छिन्द्र नाथ ने इसी प्रकार परकाया-प्रवेश किया था, ऐसा माना जाता है। मूलाधार से लेकर भ्रूमध्य तक एक दिव्य नाड़ी रहती है जिसे कि सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। इसी सुषुम्ना में योगी स्थित होकर जीवन का ज्ञान प्राप्त करता है और मुक्त बनता है। इसी सुषुम्ना नाड़ी को रामायणकार सरयू कहते हैं और भगवान वेद व्यास यमुना कहते हैं। वेदों में इसी यमुना का गुणगान किया है। इसी सरयू पर भगवान रामचन्द्र पाले जाते हैं और अन्त

में स्वतः को समर्पित करते हैं। इसी यमुना की गोद में भगवान गोपाल कृष्ण छोटे से बड़े होते हैं और सारा वृन्दावन इसी यमुना में जीवन पाता है। साधक की गुप्त दिव्य शक्तियाँ इसी यमुना पर भगवान गोपाल कृष्ण की सब लीलाएँ और रास क्रीड़ाएँ चलती हैं। इसी सुषुम्ना यमुना, सरयू पर अयोध्या नगरी स्थित है जिसकी स्थापना भगवान मनु द्वारा हुई है। यह सरयू अथवा यमुना मूलाधार से उत्पन्न होकर इस भ्रूमध्य तक बहता है और अन्त में सहस्त्राररूप सागर में जाकर मिलती है, साधक संसार सागर पारकर अगस्ति बनता है, शून्य, मुक्त बनता है। जो गतिमान शून्य है उसे रामायणकार अगस्ति कहते हैं जिसने अपना प्रपंच रूप सागर एक आचमन में पीकर साफ किया था।

(७) सहस्त्रार चक्र :

यह आखिरी इन्द्रचक्र है जो कि शिर के ऊपरी मध्य में स्थित है। नये जन्मे बालक के शिर पर जहाँ हड्डी नहीं रहती है उस चौकोनाकार उड़ते मज्जा को सहस्त्रार कहते हैं। यह समाधि का याने आत्मा के ज्ञान का स्थान है। इसमें मग्न योगी परम योगी है जो जन्म-मृत्यु जरा से परे है, मुक्त है। आत्मा का परमात्म-ज्ञान यही है। इसमें मग्न योगी अनेक घन्टों और दिनों तक समाधि-अवस्था में रहकर देहभाव से मुक्त रहता है। परम शान्ति का यह स्थान है। यहाँ पर स्थिर होने से फिर जन्म-मृत्यु के लिए योगी बाकी नहीं रहता। जीवन का वहीं गन्तव्य स्थान है। गीता कहती है—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।' इसी में भगवान राम स्वयं को समर्पित कर शान्त हो जाते हैं। सारी अयोध्या नगरी भी इसी में समर्पित होकर रामायण समाप्त होती है। इन्द्र-चक्रों में यह आखिरी चक्र है। यही इन्द्र-चक्र ज्ञान ऋषि विश्वामित्र राम लक्ष्मण को देते हैं जो कि हमारे लिए भी रामायण द्वारा वितरित किया गया है।

अस्त्र :

चक्रों का अभ्यास करने के पश्चात साधक में स्थित जो विश्वामित्र है उसने साधक राम लक्ष्मण द्वारा अस्त्रों का अभ्यास करवाया। इससे यह स्पष्ट है कि चक्रों का अभ्यास किये बगैर अस्त्रों का अभ्यास असंभव है। हमारे विद्वान अस्त्रों के बारे में बहुत कुछ तर्क-वितर्क और कल्पनाएँ करते हुए दिखाई देते हैं परन्तु अस्त्र याने क्या है और वह कैसे सिद्ध हो सकते हैं इस

बाबत किसी को अनुभूतिजन्य स्पष्ट कल्पना नहीं है। परन्तु रामायणकार बताते हैं कि बिना चक्रों की सिद्धि से अस्त्र-सिद्धि संभव नहीं है। इसलिए चक्र-सिद्धि यदि योगमार्ग की सिद्धियाँ हैं तो उसी प्रकार अस्त्र-सिद्धियाँ भी योगमार्ग की जटिल अवस्थाएँ रहनी चाहिए। आजकल हमारे विद्वान और उनकी सीख द्वारा संस्कारित बने हुए समाज के कुछ लोग यह मानते हैं कि रामायणकालीन अस्त्र याने आजकल के एटम बम्ब जैसे भयानक संहारक अस्त्र थे जिस द्वारा सहस्त्रावधि लोग मारे जाते थे। परन्तु इस प्रकार अस्त्रों द्वारा भयानक मानव-संहार किया जाता था इस प्रकार रामायण महाभारत में कोई आधार नहीं मिलता। रामायण महाभारत यह ग्रन्थ नीरे आध्यात्मिक ग्रन्थ रहने से उनमें इस प्रकार मानव-संहार करने वाले अस्त्रों का वर्णन रहना असंगत है। इसके अलावा अस्त्र इस शब्द का मूल आशय हम मानते हैं। इस प्रकार संहार का नहीं वरन् किसी अवस्था की रक्षा करना यह है। 'अस्' याने रहना और 'त्र' याने रक्षा होना। दोनों उपशब्द मिलाकर अस्त्र शब्द बनता है जिसका आशय है प्राप्त अवस्था की रक्षा होना। यह रहकर भी हमारे विद्वानों ने अस्त्रों का आशय किस प्रकार लिया, यह ध्यान में नहीं आता।

इसका कारण एक ही रह सकता है और वह यह कि रामायण महाभारत को प्रत्यक्ष ऐतिहासिक युद्ध माने जाने से उनमें हिस्सा लेने वाले लक्षावधि सैनिकों की हत्या करने के लिए इस प्रकार संहारास्त्र आवश्यक ही रहते हैं। परन्तु परमात्मा स्वरूप में सदा मग्न रहने वाले हमारे ऋषि मुनि इस प्रकार के लक्षावधि मानवों की क्षणों में हत्या करने वाले अस्त्रों का इतनी रुचि से वर्णन करेंगे, यह संभवनीय नहीं है। वैदिक परम्परा इस प्रकार के कृत्रिम मानव-संहारों के लिए नहीं वरन् मानवों का कोटि कल्याण करने के लिए है, यह न भूला जाय। हमारे अनर्थकारक आशयों को हमारे ऋषि-मुनियों पर लादकर उनपर अन्याय करना उचित नहीं है। इसलिए इन आध्यात्मिक ग्रन्थों में अस्त्रों का सत्याशय क्या है, यह देखना उचित होगा। अस्त्र याने प्राप्त अवस्थाओं की रक्षा करना, यह समझने पर उनका आशय देखें। अस्त्र बहुत थे परन्तु विश्वामित्रजी राम को जो प्रमुख अस्त्र सिखलाते हैं, वह हम जानें।

(१) ब्रह्मशिरास्त्र : याने उच्च ब्रह्मावस्था में जाने की आध्यात्मिक साधना। इसे कोई ब्रह्मास्त्र भी कहते हैं। सदा ब्रह्मावस्था में स्थित रहने की विद्या याने ब्रह्मशिरास्त्र है।

(२) पैनाकमस्त्र : पिनाक याने शिव अर्थात कल्याण की अवस्था और पैनाकास्त्र याने उस कल्याणकारी अवस्था में सदा रखने वाली साधना-अवस्था।

(३) नारायणास्त्र : नारा याने जल और नारायण याने जल में बसने वाली दिव्य अवस्था है। इसलिए हमारे चित्रकार भगवान विष्णु नारायण को अथाह जलाशय के ऊपर खड़े हुए दिखाते हैं। परन्तु वह दिव्य जल प्रत्यक्ष में दिखाई देने वाला जड़ जल न होकर उस दृश्यमान जगत के ऊपर और उसका मूल कारण जो आपतत्व है उस आपतत्व में स्थित ओतस अथवा इलेक्ट्रानिक स्पन्दनों का बहुत सूक्ष्म जगत है जो कि उच्च साधकों को किसी अथाह जल राशि जैसे दीखता है। उस ओतस जगत से भी ऊपर जो दिव्य अवस्था है उसे नारायण कहा जाता है इसलिए नारायणास्त्र याने नारायण अवस्था में साधकों का कुशल सम्हालने वाली दिव्य अवस्था है। नारायणास्त्र याने दिव्य अवस्था की रक्षा करने वाली साधना अथवा अभ्यास है जिस द्वारा साधक स्वयं नारायण बन सकता है। तुलसीदासजी इसीलिए कहते हैं—

'नर करनी करे तो नर का नारायण होत।'

(४) आग्नेयास्त्र : जलतत्व के ऊपर अग्नि तत्व अथवा तेजस तत्व है जिसकी अनुभूति प्रखर दिव्य प्रकाश द्वारा साधक को आती है। यह अनुभूति जलतत्व की अनुभूति से भी सहना बहुत कठिन है। ऐसी दिव्य प्रखर प्रकाश अवस्था में रखने वाली साधना याने आग्नेयास्त्र है। आग्नेयास्त्र याने तेजस तत्व में कुशल रक्षा करने वाली दिव्य तेजस तत्व-साधना।

(५) वायव्यास्त्र : तेजस तत्व से भी परे वायु तत्व है जो कि सहने के लिए अधिक कठिन है। वायुः अस्त्र शब्दों को मिलाकर वायव्यास्त्र शब्द बना है। तेजस तत्व की गति प्रकाश गति इतनी रहती है और वायु तत्व की गति से भी बढ़कर असह्य रहती है। कई साधक इस परम गतिमान

अवस्था को न सहने के कारण अपना जड़ शरीर छोड़कर चले जाते हैं - और पुनर्जन्म लेकर अधिक उत्तम शरीर धारण कर पुनः अपनी साधना शुरू करते हैं। इस बाबद श्रीमद्भगवत्गीता के अध्याय ६, श्लोक ४०, ४१ में स्पष्ट कहा है—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

(६) शिखरास्त्र : शिखर याने चोटी अर्थात उच्च अवस्था। इसी उच्च अवस्था को ब्रह्मावस्था कह सकते हैं। ब्रह्मावस्था में रखने वाली कठिन साधना और रक्षा-स्थिति याने शिखरास्त्र है।

(७) हयशिरास्त्र : हय याने अश्व अर्थात व्यावहारिक दृष्टि में घोड़ा है। परन्तु योगसाधना में अश्व याने श्वास-प्रश्वास रहित केवल कुम्भक अवस्था है। 'श्व' याने श्वास और 'अ' याने विरहित अर्थात् अश्व याने श्वास-प्रश्वास विरहित केवल अवस्था। हयशिर याने केवल अवस्था और हय-शिरास्त्र याने केवल अवस्था में सुरक्षित रहना।

(८) मोहनास्त्र : कुंडलिनी जागृत हो जाने से साधक का शरीर और स्वभाव अति मोहक बनता है। ऐसी मोहक अवस्था को मोहन तथा उस अवस्था की रक्षा करने वाली साधना को मोहनास्त्र कहा जाता है।

(९) सोमास्त्र : सोम याने चन्द्रमा अथवा आपतत्व। आपतत्व में साधक सर्व प्रथम अपने शिर में सदा चन्द्रमा देखता है। ऐसे साधक को उसके नाम के पश्चात चन्द्र उपाधि लगाते हैं जैसे रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, ईश्वरचन्द्र इत्यादि। ऐसे चन्द्र अथवा सोम अवस्था की रक्षा करने वाली साधना याने सोमास्त्र है।

(१०) परतेजोप कर्षणास्त्र : दूसरों के लिए तेज का याने शक्ति का हरन करने वाली प्रकाट्य तेजस्वी अवस्था। आजकल कुछ नये अन्वेषण हुए हैं।

इस आकाश गंगा से भी परे कुछ कृष्णविवर हैं जो कि संसार के सब प्रकाश और ग्रहताराओं का कर्षण कर उनका अस्तित्व शून्य बना देते हैं। उस परम कृष्ण अवस्था में सिवाय प्रचण्ड गुरुत्व के और कुछ नहीं रहता है। वहाँ वस्तुजात शून्य बन जाती है। वह अवस्था सारे कर्षणों को भी कर्षण कर लेती है। इस प्रकार के भयानक शून्य अवस्था की अनुभूति अति श्रेष्ठ योग-साधक को आती है। इस अवस्था रहित अवस्था की रक्षा करने वाली साधना को परतेजोपकर्षणास्त्र कहते हैं। रामायणकार यह कृष्णविवर जानते थे, यह दिखाई देता है।

इस प्रकार अनेक अस्त्र याने दिव्य साधनाएँ राम लक्ष्मण को विश्वामित्रजी सिखाते हैं। परन्तु अपने अन्तर्गत जो ताटका वृत्ति थी उसे मारकर ही वे इस प्रकार अनेक दिव्य अस्त्र सीख सके। ताटका याने तटस्थभाव जो कि किसी अवस्था को दूर रहकर जानना चाहती है। किसी भी अवस्था से एकरूप नहीं हो सकते हैं तब तक हम उस अवस्था का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसलिए इस प्रकार के तटस्थ ताटकावृत्ति का नाश किये बगैर साधक अस्त्र नहीं सीख सकता है, यह रामायण का सिद्धान्त ध्यान में रखने योग्य है। इसके बाद विश्वामित्र राम लक्ष्मण को लेकर सिद्धाश्रम नामक आश्रम में गये और वहाँ वे छः रात्रिदिवस मौन होकर रहे। पाँचवे दिन उन्होंने सुबहु एवं मारीच नामक राक्षसों को मारा। यह ध्यान में रखा जाय कि यह राक्षस अन्य बाहर के कोई व्यक्ति न रहकर साधक के अन्तःकरण में छिपे हुए कुसंस्कार एवं कुवृत्तियाँ हैं जो कि राक्षस जैसे साधक को खा जाती हैं। इन्द्रिय परायण दशरथ इस प्रकार के वृत्तिरूप राक्षसों को नहीं मार सकता है इसलिए उस दशरथ-वृत्ति से ऊँची राम लक्ष्मण वृत्ति को विश्वामित्र इन कथित राक्षसों का संहार करने ले जाते हैं। दशरथरूप राजा और उसकी चतुरंग सेना भी ऐसी वृत्तिरूप राक्षसों का संहार नहीं कर सकती हैं, यह विश्वामित्र ने पहले ही जाना था। राम लक्ष्मण जैसी उच्च साधनावस्था याने सिद्धाश्रम है इसलिए राम-लक्ष्मण इस प्रकार के सिद्धाश्रम में छः दिन ठहरे जहाँ सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वह सिद्धाश्रम है।

मिथिला का राजा जनक और सीता :

इसी सिद्धाश्रम के पास मिथिला नगरी थी। मिथिला का राजा विदेही जनक था जिसके जन्म की कथा बड़ी अद्भुत है। विशेष यह कि इस विदेही जनक राजा के जन्म की कथा का वृतान्त रामायण में उतना नहीं आया

जितना कि वह तदुपरान्त लिखे ग्रन्थ भागवत में आया है। विदेही जनक राजा के जन्म की कथा श्रीमद्भागवत में इस प्रकार आई है। प्राचीन समय में एक निमि नामक राजा था जो बहुत धर्मपरायण था। उसके गुरु थे वसिष्ठजी। गुरु वसिष्ठ ने राजा निमि से एक यज्ञ करने के लिए बताया और यह भी बताया कि यज्ञ ठीक समय पर सम्पन्न किया जाय अन्यथा यज्ञ निष्फल होगा। यज्ञ का सम्पादन स्वयं गुरु वसिष्ठ करने वाले थे। राजा निमि ने यज्ञ की पूरी तैयारियाँ कीं और यज्ञ के दिन एवं निर्धारित समय की वह बाट जोहते रहे। यज्ञ का दिन आया। राजा ने यज्ञ की तैयारियाँ पूर्ण कीं। यज्ञ का निर्धारित समय आ पहुँचा परन्तु गुरु वसिष्ठजी के आगमन का कोई ठिकाना नहीं था। राजा निमि के प्राण उनके नयनों में आ गये थे परन्तु समय आने पर भी गुरु वसिष्ठ का कोई पता नहीं था। अब क्या किया जाय? समय न टल जाय यह गुरु का कहना था इसलिए गुरु-वचन के अनुसार वर्ताव करने का राजा निमि ने सोचा और ठीक समय पर राजा ने स्वयं यज्ञ का सम्पादन किया और कुछ ग्रहण न करते हुए राजा निमि गुरु वसिष्ठ की वाट जोहता रहा।

अब दौड़ते हुए वसिष्ठजी यज्ञ-स्थान पर आये परन्तु राजा निमि ने यज्ञ-संपादित किया यह जानकर वे क्रोधित हुए और राजा निमि को उन्होंने शाप दिया, 'हे दुष्ट राजा निमि तूने मेरा अपमान किया है, इसलिए तूं मर जा'। अपना किसी प्रकार दोष न रहकर भी एक शान्त स्वभाव वाले गुरु वसिष्ठ विना कारण इस प्रकार मरने का शाप देते हैं यह देखकर राजा निमि ने भी अपने गुरु वसिष्ठ को मरने का शाप दिया। वस गुरु वसिष्ठ और राजा निमि एक दूसरे के पास मर पड़े। वार्ता सर्व राज्य में फैली। अब बिना राजा और गुरु के राज्य कैसे चलाया जाय? अड़ोस पड़ोस के ऋषि मुनि उस स्थान पर आये और उन्होंने उन दोनों को भी पुनः जीवित करने के लिए अपने मन्त्र प्रयोग किये। प्रथम गुरु को जीवित करना आवश्यक था इसलिए मन्त्र प्रयोग के प्रताप द्वारा प्रथम गुरु वसिष्ठजी की जीवात्मा अपने नियत मृत शरीर में प्रवेश कर गुरु वसिष्ठजी अपने स्थान पर उठ खड़े हुए।

अब बारी आयी राजा निमि की। ऋषि मुनियों के महान मन्त्र प्रयोग शुरू हुए। निमि के शरीर की नियत जीवात्मा को अपने नियत शरीर में प्रवेश करने के लिए निमन्त्रण किया गया परन्तु राजा निमि के मृत शरीर में उसकी जीवात्मा प्रवेश नहीं कर रही थी। अब क्या किया जाय?

क्या प्रतापी ऋषि मुनियों का प्रतापवान सामर्थ्य मन्त्र बेकार जायेगा ? हरगिज नहीं ! निमि शरीर का स्वामी जीवात्मा निमि के गहन ध्यान में जाकर खोज शुरू हुई । गोलोक, पाताल लोक, मृत्यु लोक, भूलोक, भुवलोक भी ढूंढ़े गये परन्तु राजा निमि की जीवात्मा नहीं पायी गई । आखिर स्वर्ग लोक में जाकर देखा गया तो राजा निमि वहाँ पर बड़े आनन्द से स्वस्थ थे । ऋषियों ने राजा निमि की जीवात्मा को उसके मृत्यु लोक में पड़े हुए नियत मृत शरीर में पुनः प्रवेश करने के लिए कहा । परन्तु राजा निमि की जीवात्मा अपने मृत्युलोक स्थित मृत शरीर में पुनः प्रवेश करने के लिए तैयार नहीं थी । जिस लोक में एक शान्त स्वभाव वाला गुरु भी बेकार अन्याय करता है ऐसे अन्यायी मृत्युलोक में पुनः आने के लिए निमि जीवात्मा तैयार नहीं थी । ऋषियों ने बहुत समझाया परन्तु निमि पर कुछ भी परिणाम नहीं हुआ ।

अब क्या किया जाय ? बगैर राजा के राज्य कैसे चलाया जाय ? निमि शरीर में अब अन्य जीवात्मा का प्रवेश करवाकर निमि शरीर को जीवित करना, यही एक मार्ग बाकी था । दिव्य प्रयोग शुरू हुए । राजा निमि के शरीर को गुण, कर्म, स्वभाव से पूर्णतया सुयोग्य रहने वाली जीवात्मा की अन्तराल में खोज शुरू हुई । प्रकृति के नियमानुसार कोई भी जीवात्मा किसी भी शरीर में प्रवेश कर उस शरीर का संचालन नहीं कर सकती है । इसलिए उस मृत निमि शरीर के लगभग सजातीय जीवात्मा की खोज करना आवश्यक था । खोज करते-करते ऋषियों को ऐसी एक जीवात्मा अन्तराल में मिली जिसका जन्म उसके सुयोग्य शरीर के कारण नहीं हुआ था । वह जीवात्मा युगों से बिना शरीर अथवा देह के अन्तराल में भटक रही थी । उस देहरहित जीवात्मा को विदेही कहा गया । आखिर उस विदेही जीवात्मा के अनुसार मृत्यु लोक में पड़े हुए निमि जीवात्मा के मृत शरीर में आवश्यक पुनर्रचना की गई । तब कहीं विदेही जीवात्मा उस निमि नामक मृत शरीर में प्रवेश करने की तैयारी कर सकी । परन्तु निमि जीवात्मा ने अपना नियत शरीर छोड़ा था । उस मृत शरीर को अब निमि कहना उचित नहीं था । इसलिए ऋषियों ने उश मृत शरीर का नाम जनक याने जीवात्मा का जनन करने वाला रखा । अब शरीर जनक नाम का और जीवात्मा देहविरहित इसलिए विदेही थी इसलिए उस पुनर्जीवित पिंडशरीर का नाम ऋषियों ने विदेही जनक रखा । विदेही जनक की जन्मकथा में पूर्ण योग विज्ञान है न कि

शुष्क इतिहास । इसी विदेही जनक की पुत्री थी सीता । राजा जनक मिथिला का राजा था ।

मिथिला :

मिथिला शब्द दो उपशब्दों से बना हुआ है । एक है 'मिथ' और दूसरा है 'इला' । इसी मिथ शब्द द्वारा सुप्रचारित मिथ्या शब्द बना है जो कि इस जगत को लगाते हैं । मिथ याने भ्रमात्मक जो नहीं है । वह ईला याने आत्मा । इसलिए मिथिला याने अपना जड़शरीर है जो कि हर जीवात्मा का कार्य उपकरण है । इसी मिथिला का राजा विदेही जनक था । एक दिन यह विदेही राजा जनक अपने राज्य की खेती जोत रहा था । क्या एक राजा स्वयं खेती जोतेगा ? हाँ, हर जीवात्मा रूप राजा अपने शरीर की खेती करता है और अपने शरीर रूप खेती में कर्मरूप हल चलाता है । गीता १३ के पहले ही श्लोक में इस खेती का वर्णन करती है—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१, अ० १३॥

आशय यह कि अपना यह जड़शरीर एक क्षेत्र याने खेती है और उस खेती को जोतकर उसमें हल चलाने वाली जीवात्मा इस खेती का कास्तकार याने क्षेत्रज्ञ है । राजा विदेही जनक इस प्रकार अपने शरीर रूप खेती को उपजाऊ बनाने के लिए साधनारूप हल चला रहे थे कि उनको उस खेती में अथवा भूमि में एक सुन्दर पुत्री मिली जिसका नाम उन्होंने सीता रखा ।

सीता :

सीता का जन्म इस प्रकार शरीर रूप खेती से है । यही सीता उसके अन्तकाल में इसी धरती माता की गोद में समाई जाती है । शरीर के द्वारा साधक अन्यान्य अनुभूतियाँ ले सकता है । राम जैसे आनन्दात्मा की पत्नी होने के लिए सीता भी आत्मा राम के सुयोग्य उत्तम सुलक्षण युक्त होना आवश्यक है । उत्तम संस्कार अर्थात् साधना में प्राप्त सात्विक अनुभूतियाँ याने सीता है जिसका हरन होने से राम साधक विलाप करता है, रोता है, दौड़ता है । सीता का स्वयंवर याने क्या है, शिवधनुष क्या है इत्यादि रामायणीन वर्णन का आशय उन कथाओं के समय देखेंगे । तब तक ऋषि विश्वामित्र राम लक्ष्मण को जो कुछ कथाएँ सुनाते हैं उनको जैसे तैसे देखकर उनका रामायणीन रहस्य जानने की चेष्टा करेंगे ।

सगर राजा, समुद्र-मन्थन एवं अहल्या कथा :

सगर कथा :

सगर नाम का एक राजा था। उसे केशिनी और सुमति नाम की दो रानियाँ थीं। केशिनी के असमंजस नामक पुत्र हुआ। जिसे समझ नहीं है उसे असमञ्जस कहते हैं। असमञ्जस बुद्धि याने सगर का असमञ्जस नामक पुत्र है। यह असमञ्जस वहुत क्रूर था। परन्तु सुमति के गर्भ से एक तूम्बा निकला जिसके फटने से सगर को साठ हजार पुत्र हुए। धाइयों ने उन सवों को अलग-अलग घी के घड़ों में रखकर पालन किया और वे वड़े हुए। कालान्तर से असमंजस की मृत्यु हुई। उसका पुत्र अंशुमान था। सगर राजा ने एक समय अंशुमान के द्वारा यज्ञ किया। अपना राज्य नष्ट होगा इस डर से राक्षसों ने यज्ञ के अश्व का हरन किया और राजा सगर उसे देख न सके इसलिए उस अश्व को राक्षसों ने पाताल में छिपाया। सगर राजा ने अपने साठ हजार पुत्रों को उस अपहृत अश्व की खोज करने दूर-दूर तक भेजा। अश्व कहीं नहीं मिला। इसलिए वे उस अश्व की खोज करने पृथ्वी को खोद कर पाताल में जाने की चेष्टा कर रहे हैं। गंगासागर में उन्होंने पृथ्वी को खोदना शुरू किया। खोदते-खोदते वे पाताल तक चले गये। वहाँ पर उन्हें उनका हरन किया हुआ अश्व मिला। अश्व के पास कपिल महामुनि बैठे थे।

अपना अश्व देखकर सगर पुत्र दौड़कर उस अश्व को पकड़ते हैं परन्तु ऐसा करते समय वे कपिल महामुनि को प्रणाम करना भूल जाते हैं। अपना यह अपमान देखकर कपिल महामुनि को क्रोध आया और उन्होंने उन सगर पुत्रों को शाप दिया कि वे जलकर भस्म हो जायें। साठ सहस्त्र सगर पुत्र भस्मसात हुए। वार्ता सुनकर राजा सगर को वहुत दुःख हुआ। परन्तु क्या कर सकते थे ? कुछ समय चूप बैठना आवश्यक था। अंशुमान को दिलीप नामक एक सुशील पुत्र हुआ जिसके भगीरथ नाम का प्रतापी पुत्र हुआ। इस प्रकार सगर से लेकर भगीरथ तक पाँच पीढ़ियाँ हुईं। राजा सगर ने अपने प्रप्रपुत्र भगीरथ को उसके प्रप्रपिता के दग्ध होने का हाल सुनाया और उनके पुनर्जीवन के बारे में चेष्टा करने के लिए उसे कहा। भगीरथ बड़ा उद्यमशील था। उसने घोर तपस्या की और ब्रह्मदेव को वश में किया। ब्रह्माजी ने उसे भगवान शंकर को प्रसन्न करने को कहा और बताया कि जब तक आकाश गंगा को इस पृथ्वी पर नहीं लाया

जायेगा और वह गंगाजल जब तक उन सगर पुत्रों तक नहीं पहुँचेगा तब तक वे सगर पुत्र पुनर्जीवित नहीं हो सकते हैं। भगीरथ ने घोर तपस्या कर भगवान शंकर को प्रसन्न किया और विनती की कि वे आकाशगंगा को धरती पर लायें और उसके प्रप्रपितामहों को जीवनदान दें। शिवजी ने तथास्तु कहा।

आकाशगंगा आकाश से धरती पर आने लगी। उसका भयानक आवेग देखकर भगीरथ डर गया और भाग गया। भगवान शिव को भगीरथ पर दया आई और वे आकाशगंगा की धारा को अपने शिर पर सम्हालने के लिए आगे बढ़े और आकाशगंगा उनके माथे में समा गई। परन्तु आकाशगंगा का जल बहकर साठ सहस्त्र सगर पुत्रों की भस्म राखी तक पहुँचना बहुत आवश्यक था अन्यथा साठ सहस्त्र सगर पुत्र को पुनर्जीवित होना सम्भव नहीं था। भगीरथ ने फिर से भगवान शिव को प्रसन्न कर गगा जल धरती पर छोड़ने के लिए प्रार्थना की। भगवान शिव ने अपने एक बाल से गंगा को पृथ्वी पर छोड़ा। गंगा-धारा बहने लगी। आगे-आगे भगीरथ और उसके पीछे गंगा बहती हुई चली। इसलिए गंगा को अब भागीरथी कहने लगे। एक स्थान पर राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे। उसमें घुसकर गंगा ने उसके यज्ञ का नाश किया। यह देखकर राजा जह्नु क्रोधित हुए और वे सब गंगा पी गये। अब क्या किया जाय? भगीरथ ने जह्नु राजा से प्रार्थना कर गंगा-प्रवाह छोड़ने के लिए कहा। जह्नु राजा ने गंगाजल को अपने एक कान से मुक्त किया इसलिए उस समय से भागीरथी को जान्हवी कहने लगे। पुनः भगीरथ आये और गंगा उसके पीछे पीछे बह कर गंगा सागर तक प्रवाह बह गया। भगीरथ अपने प्रप्रपितामहों को मुक्त कराने पाताल में गया। गंगा पीछे-पीछे बहती गई जिसका स्पर्श होकर साठ सहस्त्र सगर पुत्र पुनः जीवित हुए। पाँच पीढ़ियों के बाद भस्मित हुए सगरपुत्र पुनर्जीवित हुए।

ऐतिहासिक ढंग से देखा जाय तो इस कथा में कुछ विशेष नहीं दिखाई देता, इतना ही नहीं वरन् यह कथा असंभव एवं केवल कल्पना-विलास दीखती है। एक बौद्ध पण्डित तो इस कथा को चंडूखाने की गप्पें कहते हैं। हमारी समझ में जो बात नहीं आती है उसे चण्डूखाने की गप्प समझने में विशेष बुद्धिमानी नहीं लगती। इस कथा का बोध होने के लिए योगमार्ग की गहन साधनाओं की अनुभूतियाँ आना बहुत आवश्यक है। हमारे हिन्दू पण्डित भी इस कथा को एक महान अभियांत्रिकी चेष्टा मानते हैं। वे कहते हैं कि

भगीरथ ने गंगा का प्रवाह भारत में बहलवाया जो कि उसके पूर्व तिब्बत से वहकर चीनसागर में गिर पड़ता था। केवल कपोल कल्पना करने से इस प्रकार के विकल्प बुद्धि में आ सकते हैं। लेखक के हिसाव में ऐसे विकल्प ही चण्डूखाने की गप्पें हैं न कि भगीरथ-कथा। भगीरथ-कथा समझने के लिए कुण्डलिनी की जागृति का प्रत्यक्ष अनुभव और तत्प्राप्त विलक्षण तीव्र बुद्धि आवश्यक है अन्यथा भगीरथ-कथा एक निरर्थक कथा ही रह जायेगी। कुण्डलिनी की जागृति के समय योग साधक को जो अनुभूतियाँ आती हैं उनका कथा रूप वर्णन याने भगीरथ-कथा है।

कुण्डलिनी की जागृति के समय साधक के शरीर की सब नाड़ियाँ, जो कि साठ हजार मानी जाती हैं, जैसा कि जलकर भस्म हो रही हैं इस प्रकार लगता है। यहीं सगर के साठ सहस्त्र पुत्र हैं। सगर का अश्वमेध याने प्रत्यक्ष घोड़े को काटना नहीं वरन श्वास का निरोध करना है। 'अ' याने नहीं या वन्द और 'छ व' याने श्वास-प्रश्वास करना। अश्व याने प्राणायाम की प्रक्रिया करना। प्राणायाम करते समय कुछ नियम अथवा परहेजों की आवश्यकता होती है जिन्हें सांख्य शास्त्र के उद्गाता पतञ्जली और कपिल महामुनि पूर्णतया जानते थे। अश्व याने प्राणायाम की खोज याने अभ्यास करते समय साधक सगर पुत्रों ने कपिल मुनि और उनके सांख्य विज्ञान का आदर याने पथ्य-परहेज करना आवश्यक है। यह जो साधक न करेगा उसकी साठ हजार नाड़ियाँ याने पुत्र अवश्यमेव दग्ध हो जायेंगे। इस प्रकार साठ सहस्त्र सगर पुत्र कपिल मुनि की क्रोध-दृष्टि से ही भस्म हो जाते हैं। पाँचवी पीढ़ी का भगीरथ है। भग याने कल्याण कारक और रथ याने शरीर, 'शरीररं रथमेव तु' उपनिषद कहते हैं। जिसे अपना शरीर शान्त कल्याणकारक करना है उस साधक को भगीरथ कहते हैं। इसलिए हर कुण्डलिनी को जागृत साधक को भगीरथ वनना आवश्यक है! भगीरथ कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं हैं।

'गर' याने धारण करना और 'सागर' याने जिसको शक्ति-धारण करना है, ऐसा योग साधक है। परन्तु योग-साधना यदि असमंजसता से की जाय तो उस साधक की साठ सहस्त्र नाड़ियाँ जलकर भस्म हो सकती हैं। इसलिए सगर का एक पुत्र असमंजस बताया है। कुण्डलिनी की जागृति का दाह कम करने के लिए साधक को आपतत्व की साधना करनी पड़ती है। भगवान शिव आपतत्व के स्वामी माने जाते हैं। इसलिए भगीरथ भगवान की आराधना करते हुए दिखाये हैं। गंगा भी आपतत्व का जल

प्रतीक हैं। साधना के समय साधक के अस्तित्व में अनंत विश्व-शक्तियाँ अपने आप कर्षित की जाती हैं जिन्हें ग्रहण करना साधक की शक्ति के वाहर का काम हो जाता है। भगीरथ इसीलिए आकाशस्थ गंगा याने वैश्विक-शक्ति को धारण नहीं कर सकता है। ऐसे अवसर पर साधक स्वयं भगवान शिव बने तब ही वह आकाश गंगा को अपने में धारण कर सकता है ? यही शिव का अपने जटा में गंगा को समाना है। परंतु शिर में समाये हुए विश्व-शक्ति को अपने सारे अंग-प्रत्यंगों पर नहीं समाया जाय तब तक साधक के शरीर का दाह नहीं शान्त हो सकता है। भगीरथ का गंगा को ले जाकर पाताल में जाना है जिस द्वारा सगर के साठ सहस्त्र दग्ध पुत्र पुनः जीवित हो उठते हैं। कई वार यह कुण्डलिनी की दाह इतना प्रखर और दीर्घकाल का रहता है कि साधक वह दाह अपने पाँच जन्म तक भी भोग सकता है। इसलिए सगर से लेकर भगीरथ तक रामायणकार पाँच पीढ़ियाँ दिखाते हैं। सगर-कथा याने कुण्डलिनी की दाह की बड़ी कुशलता से लिखी हुई उपमा-कथा है।

इसी प्रकार कुण्डलिनी की जाग्रति की चेष्टा साधना और उस द्वारा प्राप्त दाह और अमृतत्व का रहस्य अगली समुद्र-मंथन कथा में दिया है।

सागर-मंथन कथा :

प्राचीन काल से सुर-असुरों का झगड़ा सदा चलता आया है। सुर-असुर झगड़ते-झगड़ते थक गये और उन्होंने आपस में समझौता किया कि वे एक साथ मिलकर सागर-मंथन करने के लिए तैयार हो गये। सप्त सागरों का मन्थन करने का तय हुआ। सप्तसागरों की गहराई में जाकर मन्थन करने के लिए मेरु पर्वत को मथनी के हिसाब से लिया गया। इस प्रचंड मथनी को मंथन करने के लिए उसी प्रकार विश्व व्यापक डोर की आवश्यकता थी। भगवान विष्णुजी जिस शेष पर आराम करते हैं उसी शेषनाग को डोर बनाया गया। आधार के लिए कछुआ अवतार रखा गया और सुर-असुरों का सागर-मंथन शुरू हुआ। वास्तविक सागर मंथन अमृत-प्राप्ति के लिए याने अमृतत्व अथवा मुक्ति के लिए शुरू किया था परन्तु मन्थन करने के पश्चात् शुरू में मिला हलाहल विष। अब इस जहरात को जलाने वाले विष को कौन स्वीकारे ? सुर-असुर इस विष को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं थे, उन्हें चाहिये था अमृत ! अब क्या किया जाय ? सब मिलकर भगवान शिव के पास गये और उस हलाहल विष का

प्राशन करने के लिए उन्हें प्रार्थना की गयी। भक्तों पर दया करने वाले भगवान शिव उस विश्व को जलाने वाले हलाहल को स्वीकार करते हैं। परन्तु वह विष-ग्रहण करते समय उनका कण्ठ नीला बन गया। तब से भगवान शिव को नीलकण्ठ कहते हैं। आखिर में निकला हुआ अमृत केवल सुरों को ही मिला। कथा बड़ी रोचक है परंतु योग-विज्ञान से भरी हुई ?

कथा का आशय समझने के लिए उसमें उपयोगित शब्दों का आशय प्रथम समझना पड़ेगा। सप्त सागर याने सप्त तत्वों का और सप्त योग-चक्रों का बना अपना जड़शरीर है। सुर और असुर अपनी ही अच्छी और बूरी वृत्तियाँ हैं जिनका झगड़ा साधक के अन्तःकरण में सदा चलता है। सुर-असुर कौन, यह शास्त्र बताते हैं। योग-साधना करते समय साधक द्वारा अपने आप कुछ मुद्राएँ हो जाती हैं। मुद्रा की परिभाषा शास्त्र बताते हैं—

'मुदं ददाति देवानां द्रापयति असुरानपि।'

मुद्राएँ साधक के शरीर द्वारा ही होती हैं और असुरों का दमन होता है, ऐसा क्यों लिखा है ? मतलब यह कि वह सुर और असुर हममें ही अच्छी और बूरी वृत्तियों द्वारा मौजूद हैं। इसलिए सागर-मन्थन की कथा के सुर-असुर हममें स्थित अच्छी-बूरी वृत्तियाँ हैं। अच्छी-बूरी वृत्तियाँ सदा अमर रहना चाहती हैं याने वे अमृत-प्राप्ति के लिए कार्यरत रहती हैं। साधना द्वारा प्रथम कुंडलिनी जाग्रत होकर साधक के शरीर में भयानक दाह उत्पन्न होता है। इसी भयानक दाह को रामणकार हलाहल कहते हैं। हल याने नगर। साधना रूप सागर चलने से साधक के शरीर में दाह उत्पन्न होता है इसीको रामायणकार हलाहल कहते हैं। भगवान शिव याने साधक की अपतत्व साधना अथवा शान्त अवस्था ही इस हलाहल को पी सकती है। इसीलिए कथा द्वारा भगवान शिव को हलाहल पीते हुए दिखाया है। अन्त में अमृतत्व याने अमरता अथवा शान्ति प्राप्त हो सकती है। यही देवी का अमृत प्राशन करना है। मध्यसाधना में पाये गये चौदह रत्न साधक की चौदह कला-अवस्थाएँ हैं न कि अन्य कोई रत्न। इस प्रकार साधक के शरीर के सप्तसागर-मन्थन होकर हलाहल उत्पन्न होता है।

अहल्या कथा :

हमारे ऋषि, उनकी पत्नियाँ और इन्द्रकल्पना को गहरी ठेस पहुँचती है यदि हम अहल्या-कथा एक ऐतिहासिक सत्य मानते हैं। केवल ऊपरी ढंग से

सोचा जाय तो अहल्या-कथा सामाजिक आदर्श की दृष्टि से एक अति निंदनीय कथा मानी जानी चाहिए। और यह कथा कहे सत्ययुग में घटित हुई है जिस समय सब समाज एक आदर्श अवस्था में था, यह माना जाता है। क्या सत्ययुग में भी इस प्रकार की निंदनीय घटनाएँ होती थीं? हाँ, कथा के बाह्यार्थ से यह दीखता है। परन्तु भगवान वाल्मीकि की इस कथा का आशय एकदम भिन्न है। रामायणकार अहल्या को 'देवरूपिणी' कहते हैं। वैदिक परम्परा में इस दुराचारिणी अहल्या को सर्वप्रथम स्थान है—

'अहल्या, द्रौपदी, सीता, तारा, मन्दोदरी तथा।
पञ्चकन्या स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनम्॥'

इस दुराचारिणी अहल्या का प्रातःस्मरण करने से कहे सर्व पातकों का नाश होता है। फिर यह प्रातः स्मरणीय अहल्या दुराचारी नहीं वरन् रामायणकार के शब्दों में देवकरूपिणी ही होनी चाहिए। इसलिए अहल्या कथा का वाल्मीकि आशय एकदम भिन्न होना चाहिए जो कि समाज के आध्यात्मिक हेतु से आदर्श होना चाहिए। वह योग आध्यात्मिक आशय हम बाद में देखेंगे। पहली कथा ज्यों की त्यों देखें। यह कथा विश्वामित्र राम को बताते हैं।

सत्ययुग में मिथिला के उपवन में गौतम ऋषि का आश्रम था। गौतम की पत्नी महासाध्वी अहल्या थी। एक दिन गौतम ऋषि ब्रह्मकर्म करने के लिए गंगा किनारे चले गये। इस अवसर पर इन्द्र गौतम का रूप लेकर सुन्दर अहल्या से संभोग करने के लिए आश्रम में पहुँच गये। रामायण में कहा है—

'मुनिवेशधरो भूत्वा अहल्यामिदमब्रवीत ॥१।१७।४८॥
'ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते।
संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥१।१८।४८॥

इन्द्र अहल्या से कहते हैं, 'हे सुमध्यमे, संभोग की इच्छा रखने वाले ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते हैं इसलिए तू मुझे भोग दे'। अहल्या जानती थी कि वह मुनिवेशधारी इन्द्र है न कि उसका पति गौतम। परन्तु अहल्या इन्द्र को अपना शरीर-भोग देकर स्वयं कृतार्थ बनती है। क्या सतयुग में भी एक ऋषिभार्या पर पुरुष के साथ जार कर्म कर कृतार्थ बनती है? हाँ—

'अथाब्रवीत्सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना।
कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमित प्रभो ॥१।२०।४८॥

यहाँ पर अहल्या एक जार कर्म करने वाले पापी इन्द्र को 'प्रभो' याने परमात्मा मानती है। परन्तु दुनिया उसे प्रभो मानने ने लिए तैयार नहीं थी। इतने में

अहल्या का पति गौतम ऋषि स्वय वहाँ आये और स्वयं उन्होंने अहल्या-इन्द्र का जार कर्म जान लिया।

गौतम को देखकर इन्द्र बिल्ली का रूप लेकर भागने लगा परन्तु उसे जानकर गौतम ने इन्द्र को शाप दिया जिससे इन्द्र वृषण भूमि पर तत्काल गिर पड़े।

'गौतमेनैवमुक्तस्य सुरोपेण महात्मना।
पेततुर्वृषणौ भूमौ सहस्राक्षस्य तत्क्षणात् ।।१।२९।४८।।

इस प्रकार वृषणविरहित इन्द्र आश्रम से भाग गया। यहाँ इन्द्र को गौतम सहस्राक्ष करते हैं। सहस्राक्ष याने सर्वदूर देखनेवाला विद्वान, संयमी अर्थात् परमपुरुष। फिर यह परमपुरुष सहस्राक्ष इन्द्र ऐसे जार कर्म कैसे करेगा? इन्द्र के भाग जाने के पश्चात् अब ऋषि गौतम अपनी पत्नी की तरफ मूड़ते हैं। अहिल्या भय के मारे कांप रही थी। परपुरुष इन्द्र को भोग देकर वह पाप-चारिणी बनी थी परन्तु यह करने पर भी वह स्वयं को 'कृतार्थ' मानती थी। ऋषि गौतम ने अहिल्या को शाप दिया कि वह उसी स्थान पर एक हजार वर्ष तक वायुभक्षण कर तपस्या करेगी। तदन्तर काल में उस घोर वन में भगवान रामचन्द्र आयेंगे जिनके द्वारा अहल्या का उद्धार होगा। इतना कहकर गौतम ऋषि स्वयं तपस्या करने के लिए हिमालय में चले गये। रामायण में वर्णन दिया है—

तथा शप्त्वाच वै शक्रं भार्यामपि च शप्तवान्।
इह वर्ष सहस्राणि बहूनि निवसिस्यसि ।। १।४८।३० ।।
वातभक्षा निराहारा तप्यन्ति भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्व भूतानामाश्रमेऽस्मिन्निवत्स्यसि ।। १।४८।३१ ।।
यदा त्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि ।। १।४८।३२ ।।
तस्यातिथ्येनदुर्वृत्ते लोभमोहविवर्जिता।
मत्सकाशं मुदा युक्ता स्वं वपुर्धारयिष्यसि ।। १।४८।३३ ।।
एवमुक्ता महातेजा गौतमो दुष्टचारिणीम्।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे महातपाः ।। १।४८।३४ ।।

ऊपर निर्दिष्ट श्लोकों का केवल ऊपरी आशय लिया जाय तो सत्ययुग में और त्रेतायुग में केवल एक हजार वर्ष का ही अन्तर नहीं रह सकता है। इसलिए युग कल्पना, जो कि हम मानते हैं; सही नहीं है। अहल्या सत्ययुग

की और राम त्रेतायुग के माने जाते हैं ! फिर केवल एक सहस्त्र वर्ष के पश्चात त्रेतायुग कैसा आ सकता है ? 'इह वर्ष सहस्त्राणि' रामायण में कहा है। फिर गौतम अहल्या से कहते हैं कि एक हजार साल तक वायु-भक्षण कर और भूमि-शयन कर तपस्या करने के पश्चात उसकी काया अदृश्य बनेगी 'अदृश्या सर्वं भूतानाम्'। फिर वह रामचन्द्रजी का आतिथ्य करे जिससे उसकी काया स्वयं गौतम की जीवात्मा के अनुसार बनेगी, 'मत्सकाशं मुद्रा युक्ता स्वं वपुर्धारयिष्यसि'। इस कथन में रामायणकार जन्म की घटना का एक महान अतीन्द्रिय विज्ञान बताते हैं। जन्म के समय जीवात्मा जिन संस्कार युक्त गुणस्वभाव वाली रहती है उसी गुणस्वभाव संस्कार युक्त शरीर में ही वह जीवात्मा प्रकृति द्वारा अपने आप कर्षित की जाती है। इसका महान् दिव्य विज्ञान गीता में बताया है—

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।। अध्याय १५, श्लोक ७।।'

मृत्यु के पश्चात जीवात्मा अपनी पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ मन और बुद्धि लेकर बाहर चली जाती हैं और जन्म के समय वह जीवात्मा उसके गुण, कर्म, स्वभाव और संस्कारों से पूर्णतया मिलने वाली प्रकृति द्वारा याने शरीर द्वारा आपने आप कर्षित की जाती है—'प्रकृतिस्थानि कर्षति'।

जीवात्मा का अपने नियत शरीर द्वारा कर्षण होकर जीवात्मा शरीर में प्रवेश होने के क्षण को उस जीवात्मा का जन्म कहा जाता है। 'जनी प्रादुर्भवते इति जन्मः।' और इस प्रकार का जीवात्मा का जन्म मातृगर्भ में सात मास पूर्ण होते ही होता है। जन्म के पश्चात जीवात्मा जिस प्रकार उन्नति करे उस प्रकार उसका शरीर भी उस उन्नत अवस्था के अनुसार उत्क्रान्त बनते जाता है। जीवात्मा की उत्क्रान्ति के लिए उसका नियत शरीर भी उत्क्रान्त होना आवश्यक है अन्यथा जीवात्मा की उन्नति अथवा उत्क्रान्ति रुक सकती है। जीवात्मा एक चाहती है परन्तु उसका शरीर या प्रकृति अपने संस्कारों के अनुसार निम्न कर्म चाहती है। प्रकृति और पुरुष का यह संघर्ष जीवन में सदा चलता है। गीता इस संघर्ष का यथावत् वर्णन करती है—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।।अध्याय २, श्लोक ६०।।गीता।।

अपनी उन्नति करते-करते पुरुष अथवा जीवात्मा एक विपत्ति में आ जाती है वह विपत्ति यह है कि उसके उन्नत क्रिया-कलापों से संतुलन रखने के लिए उसकी कर्मेन्द्रियाँ जो कि प्रकृति द्वारा दिया हुआ उपकरण है उसे बजाय

उन्नत अवस्था में ले जाते हुए और नीचे खींचती है। यह प्रकृति से पुरुष का जो द्वन्द्व चलता है वह बड़े-बड़े प्रसन्न मन के पुरुषों के बारे में भी चलता है। मन एक चाहता है और इन्द्रियाँ अपने धर्म-संस्कारों के अनुसार अन्य वर्तन करती हैं।

उदाहरण स्वरूप यह देखा जाय कि हम ध्यान करना चाहते हैं और मन अन्य गलत विचारों के आधीन बन जाता है। हम आसन लगाकर ध्यान-मुद्रा करते हैं उसी समय चेहरे पर मक्खियाँ बैठकर अथवा मत्सर के दंश से शरीर व्याकुल हो उठता है और हमारा ध्यान टूट जाता है। हम निराहार रहना चाहते हैं परन्तु इन्द्रियाँ और जिह्वा उसके आधीन होकर मन को चञ्चल बना देती हैं। इस चञ्चल अवस्था का वर्णन गीता करती है—

विषया विनिपर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्टवा निवर्तते ।।गीता अध्याय २, श्लोक ५९।।

कथा के अनुसार गौतम जीवत्मा ब्रह्मकर्म करने के लिए ज्ञान-गंगा किनारे जाती है। गौतम कौन? जो जीवात्मा अपनी 'गौ' यानी इन्द्रियाँ संयम में रखकर उच्च 'तम' अवस्था में ले जाना चाहती है उसे ही रामायणकार गौतम ऋषि एक आदर्श अभिव्यक्ति है न कि कोई ऐतिहासिक व्यक्ति विशेष! साधक जीवात्मा ध्यान में मग्न होकर ब्रह्म जानना चाहती है जैसे कि ब्रह्मकर्म करने ज्ञान-गंगा के किनारे पर जाते हैं। परन्तु उस जीवात्मा की काया उतने उच्च संस्कार युक्त नहीं रहने से वह निम्न संस्कारों की काया 'अहल्या' अपनी इन्द्रियों के विलास में ही रत रहना चाहती है। यही अहल्या का इन्द्र से रत होना है। इन्द्र कोई स्वर्गस्थ अधिपति नहीं हैं। हमारी इन्द्रियभोग प्रवृत्ति याने इन्द्र हैं।

'हल' माने नागर। अपना शरीर एक क्षेत्र है जिसमें सत्कर्म का हल चलाकर उसे उर्वरा अर्थात सुहल्या बनाना चाहिए। उच्च संस्कार रहित शरीर को रामायणकार 'अहल्या' कहते हैं। जो कि इन्द्र के संभोग करने पर स्वयं को कृतार्थ मानती है। साधना करते समय जीवात्मा और उसकी अहल्यारूप काया में जो संघर्ष चलता है उसका चित्रण रामायणकार ने गौतम-अहल्या कथा द्वारा बहुत सुन्दर ढ़ंग से बताया है। उच्च आचार-विचार द्वारा साधक की काया शनैः शनैः 'सुहल्या' पथ पर अग्रसर होती है और काया पूर्णरूपेण सुहल्या बनेगी। तब उसकी घोर तपस्या और उच्च संस्कार द्वारा ही उसे आत्मानन्दरूप राम-दर्शन हो सकते हैं। काया की यह उच्च अवस्था ही साधक की रक्षा करती है। इसी रक्षाणात्मक उच्च अवस्था को

रामायणकार त्रेतायुग कहते हैं। 'त्र' याने रक्षा करना। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि यह साधनाद्वारा प्राप्त अवस्थाएँ हैं न कि कोई कालगणना! साधक गौतम और उसकी अहल्या-काया इनकी सत्य-ब्रह्म जानने की इच्छा मानो सत्ययुग है। और उनकी इच्छा की रक्षा होकर उसका आत्मज्ञानरूप आनन्दफल-प्राप्त होना माने त्रेतायुग में अहल्या को भगवान् राम के दर्शन होना है।

तपस्यापूत अहल्या की अब सुहल्या बन जाती है। ऐसे सुहल्या को प्रथम वन्दन करते हैं न कि अहल्या राम का पदस्पर्श करती है। तदन्तर काल में गौतम आते हैं। गौतम और तपस्यापूत अहल्या याने उच्च जीवात्मा और उसकी उच्च संस्कार युक्त काया राम का स्पर्श करती है। यह जनता में रूढ़ कल्पना रामायण में नहीं है। रामायण में वर्णन है—

राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा।
स्मरन्ति गौतमवचः प्रतिजग्राह सा हितौ ॥ १ । ४९ । १८ ॥

रामोऽपि परमां पूजां गौतमस्य महामुनेः।
सकाशाद्विधिवत्प्राप्य जगाम मिथिलां ततः ॥ १ । ४९ । २३ ॥

प्रथम रामचन्द्रजी ने सुहल्या का चरण-वन्दन किया और वाद में गौतम वहाँ आकर अपनी पत्नी सुहल्या के साथ भगवान राम का विधिवत् स्वागत करते हैं। राम की परम पूजा होने के पश्चात् राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र मिथिला नगरी की ओर प्रस्थान करते हैं। याने अहल्या की सुहल्या वन राम उसकी कृपा नहीं पाते हैं। जब तक राम मिथिला की ओर जाने के लिए सत्पात्र नहीं वन सकते हैं और मिथिला की जनकनन्दनी सीता का स्वयंवर में पाणिग्रहण करने के लिए भी सुयोग्य नहीं बन सकते हैं। अहल्या की तपस्थापूत उच्च अवस्था याने सुहल्यारूप सीता है जो कि मिथिला नगरी में राम के आगमन की माला लेकर युग युग से बाट जोह रही है। इस प्रकार की जड़वृत्तियों के ऊपर आनेवाली संस्कार वृत्तिकाया याने सीता है इसलिए सीता को जड़ पृथ्वीतत्व से ऊपर निकाली हुई भूमि-प्राप्त पुत्री रामायणकार बनाते हैं।

अव भगवान रामचन्द्रजी के साथ हम भी मिथिला वन को लाधकर प्रत्यक्ष मिथिला नगरी में प्रवेश करें। मिथिला नगरी के राजा विदेही जनक थे। उन्हें भूमि में हल चलाते समय एक लड़की मिली थी जिसका नाम उन्होंने सीता रखा था, यह हम जानते हैं। सीता उपवर हुई थी। उसके

लिए वर-शोधन करना जनक राजा का पितृकार्य था। परन्तु वर-शोधन करने के लिए और कहीं न जाकर उन्होंने विचित्र प्रण द्वारा सीता के सुयोग्य वर को ही अपने मिथिला में बुलाकर सीता-स्वयंवर करने का सोचा। स्वयंवर के लिए एक विचित्र शर्त थी और वह यह कि जनक को परशुराम द्वारा दिया गया प्रकाण्ड शिवधनुष उठाकर जो पुरुष उस पर प्रत्यचा चढ़ायेगा उसीको सीता माला पहनाकर अपना पति मानेगी। ऊपरी ढंग से देखा जाय तो यह प्रण अजीव-सा लगता है जिसको पूरा कर कोई भी उजड्ड, भीमकाय पहलवान भी सीता जैसे एक सुसंस्कार सम्पन्न कोमल लतिका को शर्त के अनुसार शिवधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर खींचकर घसीटते हुए अपने घर ले जा सकता है। परन्तु रामायणकार का शिवधनुष कोई साधारण कमान नहीं वरन् उच्च आध्यात्मिक साधना का एक शरीर स्थित उपकरण है। राम भगवान को दण्डधारी वताये हैं इसलिए राम का विवाह भी उसी कोदण्ड याने धनुष की उपमा लेकर ही करना आवश्यक है। शिव याने कल्याणकारक अवस्था दे सकने वाला और धनुष याने शरीर अवयव जो कि अपने मज्जा-पृष्ठ अथवा मेरुपृष्ठ में स्थित है।

शिवधनुष भंग एवं सीता स्वयंवर :

कोदण्डधारी राम। उनका शरवेध कभी भी गलत नहीं होता था। कारण कि वह ब्रह्म पर सदा शरवेध कर तीर चलाते थे। ब्रह्म की ओर चलाया हुआ तीर कभी बेकार नहीं जाता है। उपनिषद् स्पष्टतया कहते हैं—

'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।'

प्रणव-साधना यही धनुष है, आत्मा उस पर चढ़ाये जाने वाला तीर है और वह तीर ब्रह्म रूप लक्ष्य को भेदना है रामायण ग्रंथ का जन्म इसी उपनिषद् वाक्य द्वारा हुआ है। इसलिए रामरूप जीवात्मा के सब जीवन में धनुष और शर लेकर ही सारी रूपकात्मक कथाएँ रचित की हैं। राम का विवाह भी एक धनुष को लेकर ही निश्चित किया है। शिवधनुष को जो वीर उठाकर प्रत्यंचा चढ़ायेगा उसे ही स्वयंवर में सीता को देने का तय हुआ था। स्वयंवर याने स्वयं वधु अपना वर चुने। परन्तु सीता के स्वयंवर में सीता को अपना दुल्हा चुनकर स्वयंवर करने का कोई अधिकार नहीं था। सीता स्वयंवर के सर्व प्रण स्वयं जनक राजा द्वारा एक पराये परशुराम ने निश्चित किये थे और उन पूर्वनिर्धारित प्रणों के अनुसार चलना ही सीता का काम था। और

तिस पर भी जबरन विवाह को सीता स्वयंवर आज तक कहा गया है। ऐतिहासिक ढ़ंग से देखा जाय तो सीता का वह स्वयंवर नहीं था वरन जबरन विवाह था। परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने पर सीता का राम से विवाह स्वयंवर ही था। वह कैसे, यह देखें।

ऊपरी ढंग से देखने से सीता स्वयंवर की शर्त ऐसी थी कि कोई भी उजड्डु, लठैत राक्षस उस भारी शिव धनुष को उठाकर कोमल सुन्दर और सुसंस्कृत सीता को अपनी भार्या बनाकर उसपर बलात्कार कर सकता था। तो क्या एक पिता अपनी पुत्री के विवाह के लिए इस प्रकार मूखतापूर्ण शर्त रखेगा? हरगिज नहीं। फिर शिवधनुष का आशय और कुछ आध्यात्मिक होना चाहिए जो कि लेखक को पैंतालीस साल पूर्व विहार के एक योगी ने बताया था। शिव धनुष यानी अपनी पीठ का मेरूदण्ड जिसपर साधनाओं द्वारा नियमन कर याने प्रत्यंचा चढ़ाकर उस द्वारा अपनी साधनारूप कायावृत्ति सीता हम सहज प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन यह शिवधनुष कोई भी ऊजड्डु, असंस्कारी, लठैत नहीं उठा सकता और उसपर प्रत्यंचा चढ़ा सकता। उस मेरूदण्डरूप शिव-धनुष पर साधना द्वारा सच्चा आनन्द पानेवाला एक राम ही प्रत्यंचा चढ़ा सकता है। विना आध्यामिक साधना आत्मानन्द राम को अच्छी कायावृत्ति सीता नहीं प्राप्त हो सकती है। सीता के लिए विधाता ने राम को ही वर बनाया था। जैसे गुणस्वभाव और संस्कार वैसी काया प्राप्त होती है। राम का शिव याने कल्याणकारक धनुषरूप मेरूदण्ड पर प्रत्यंचा चढाना है। परन्तु इस शिवधनुष पर प्रत्यंचा चढाने के पहले ही वह शिवधनुषरूप मेरूदण्ड के तीन टुकड़े हुए जैसा कि उस विहार के योगी के, साईबाबा के और सातारा के वसंतराव साधक के मेरूदण्ड के हुए थे।

राम और सीता का यह नियतिबद्ध स्वयंवर प्रकृति द्वारा अपने आप सम्पन्न होता है। इसीलिए राम बिना अपने पिता दशरथ से पूछे अपना विवाह परस्पर निश्चित कर लेते हैं। बाद में दशरथ आदि सबों को बुलाया जाता है। राम के विवाह के साथ भरत, शत्रुघ्न, और लक्ष्मण के भी विवाह हो जाते हैं। जनक राजा अपनी वृत्तिरूप भाइयों की कन्याएँ उन्हें विवाह में देते हैं! लक्ष्मण को उर्मिला, भरत को माण्डवी और शत्रुघ्न को श्रुतकीर्ति विवाह में दी गई। उच्च भावना एवं संस्कारों की मिलनस्थली उर्मिला है, तो अच्छा ज्ञान सुननेवाली श्रुतकीर्ति है। भरत की भार्या माण्डवी है जो अपने प्राप्त ज्ञान का अच्छा मण्डन करती है। मण्डन याने रचना और कुशलता।

ज्ञान को कुशलता से मंडित करना भी व्यवहार में आवश्यक है। यही भरत-पत्नी माण्डवी है। इस प्रकार चार पुत्र, चार वहु और अपनी तीन और अन्य तीन सौ रानियाँ लेकर राजा दशरथ अयोध्या लौटते हैं ।

राम परशुराम भेंट :

इस प्रकार सब दाशरथी जन अयोध्या लौट रहे थे तो उनके सन्मुख मार्ग में परशुराम खड़े हो जाते हैं। यही परशुराम थे जिन्होंने पृथ्वी को २१ वार नि:क्षत्रीय किया था। एक वार भी यदि पृथ्वी नि:क्षत्रीय की जाय तो पृथ्वी पर एक भी क्षत्रीय नहीं रहेगा। परन्तु एक वार नहीं एक्कीस बार पूरी पृथ्वी नि:क्षत्रीय करने पर भी इस पृथ्वी पर आज ब्राह्मणों से भी अधिक संख्या में क्षत्रीय मौजूद हैं। इसका यह आशय है कि परशुराम ने अन्य वाहरी क्षत्रीयों का संहार न कर अपने अन्तर्गत जो क्षत्रीय-वृत्तियाँ थीं उसका संहार किया होगा। क्षत्रीय-वृत्ति याने झगड़ाखोर वृत्ति है। इन झगड़ाखोर वृत्तियों का परशुराम ने एक्कीस वार कैसे संहार किया? अपनी पाँच कामेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा और पाँच पंचमहाभूत इन सवों को मिलाकर बीस होते हैं। इन सवों का राजा मन है उसे मिलाकर कुल एक्कीस होते हैं। इन एक्कीस तत्वों में स्थित अपनी झगड़ाखोर वृत्तियाँ परशुराम मारते हैं। इस प्रकार परशुराम एक्कीस बार पृथ्वी नि:क्षत्रीय करते हैं। इसी प्रकार गणेशजी को एक्कीस दुर्वाएँ वहन करनी पड़ती हैं। वह वहन केवल संख्या का न होकर वृत्तियों का है। एक्कीस तत्वों में छिपे हुए दुष्प्रवृत्तियों का हनन याने परशुराम का एक्कीस वार पृथ्वी नि:क्षत्रीय करना है और अपनी 'दु:' याने वुरी 'वाह' याने वृत्तियाँ बुद्धिरूप गणेश को अर्पण करना याने एक्कीस दुर्वाएँ गणेश को चढ़ाना है।

इस प्रकार एक्कीस वार पृथ्वी नि:क्षत्रीय करने वाले महान पराक्रमी ब्रह्म जाननेवाले ब्राह्मण परशुराम राम के सन्मुख खड़े हो जाते हैं। यह वही थे जिन्होंने राजा जनक को अपना शिवधनुष दिया था। इस धनुष पर कोई भी प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सकता है, यह परशुराम को गर्व था। परन्तु वह शिवधनुष तोड़ने से भी उसे तोड़ दिया था। राम की यह धृष्टता देखकर परशुराम को बहुत क्रोध आया था और इसी क्रोधभरी वृत्ति से वे राम की और भी परीक्षा लेने के लिए मार्ग में डटे खड़े थे। परशुराम ने राम को अन्य एक विष्णुधनुष दिया कि जिस पर राम प्रत्यंचा चढ़ायें भगवान राम

ने उस विष्णु धनुष पर भी प्रत्यचा चढ़ाई। तिस पर परशुराम अधिक क्रोधित वन राम को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारते हैं। परशुराम का इस प्रकार दुर्व्यवहार देखकर भाई लक्ष्मण राम को उस दुष्ट ब्राह्मण की खातमा करने को कहते हैं। परन्तु राम वचनवद्ध थे। वे अपने जीवन में कभी भी किसी ब्राह्मण और अबला पर शस्त्र नहीं चला सकते थे। राम कहते हैं—

'ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्र कृतेन च।
तस्माच्छक्तो न ते राम भोक्तं प्राणहरं शरम् ॥ १ । ७६ । ६ ॥

प्रश्न यह उठता है कि राम यदि किसी ब्राह्मण स्त्री-पुरुष को नहीं मारने का प्रण करते हैं तो फिर वे अपने जीवन में केवल ब्राह्मण स्त्री-पुरुषों को ही क्यों मारते हैं? इसका आशय यह है कि राम जिन कथित ब्राह्मण स्त्री-पुरुषों को मारते हैं वे प्रत्यक्ष जाति निहाय ब्राह्मण हैं जो साधक राम के आध्यात्मिक जीवन में वाधाएँ डालते हैं। कई वृत्तियाँ स्त्री-पुरुष न होकर साधक राम के अन्तर्गत छिपे हुए कथित ब्रह्म-वृत्तियाँ हमें इतनी उच्च लगती हैं कि उन्हीं के द्वारा हमारा उद्धार होकर हम ब्रह्म को जान सकते हैं, ऐसा हमें लगता है। इस प्रकार की वृत्तियाँ ऊपरी भाव से यद्यपि ब्रह्म जानने वाला ब्राह्मण है उस पर भी सच्चे साधक राम को इन अब्राह्मण वृत्तियों का संहार करना आवश्यक है। इसलिए भगवान राम ताटका का, शुर्पणखा, मारिच, कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत एवं रावणरूप कथित ब्राह्मणवृत्तियों का संहार करते हैं। जपमाला लेकर जपसंख्या गिनना जिससे हमने पूर्ण ब्रह्म जाना है यह वृत्ति याने शूर्पणखा है। हमने वहुत अधिक याने कुंभ इतना कर्णद्वारा श्रवण किया है इसलिए हमने ब्रह्म जाना है। यह अहंकारी वृत्ति कुम्भकर्ण है। हमने अपने सब इन्द्रियों को दमन कर जीत लिया है और तद्-द्वारा हमने ब्रह्म जाना है यह वृत्ति इन्द्रजित है। और हमने सम्पूर्ण दसग्रंथ मुखस्त किये हैं, वेदों का खण्डन किया है, हम जाति से ब्राह्मण हैं, हम राजा हैं, हम बुद्धिमान हैं, हम सर्वेसर्वा सत्ताधीश हैं इसलिए हम स्वयं ब्रह्म याने ब्राह्मण हैं इन सब नीच कथित ब्राह्मण-वृत्तियों का संहार राम साधक करते हैं जिसे हर एक आध्यात्मिक साधक को करना पड़ता है।

इसलिए रामायणकथा केवल ऐतिहासिक घटनाएं नहीं वरन् प्रत्यक्ष जीवन में पाये जाने वाला आध्यात्मिक इतिहास यत्न है। हर साधक के लिए, फिर वह संसार के किसी भी देश, वंश, धर्म कल्पना का हो, रामायण एक आदर्श आध्यात्मिक ग्रंथ है।

विष्णु धनुष पर प्रत्यंचा चढाकर राम और सब लोग अयोध्या लौटते हैं। अयोध्या क्या है यह हमने देखा है। जहाँ वृत्तियों का युद्ध नहीं उस निर्द्वन्द अवस्था को रामायणकार अयोध्या कहते हैं। राम की यह राजधानी है।

रामायण में अर्जुन :

राम परशुराम संवाद में एक स्थान पर अर्जुन का उल्लेख आया है। रामायण ग्रंथ महाभारत ग्रन्थ के पूर्व का माना जाता है। महाभारत का वीर अर्जुन यदि ऐतिहासिक पुरुष माना जाय तो अर्जुन का उल्लेख रामायण में आना ऐतिहासिक दृष्टि से असंभव है। इसलिए रामायण जैसे महाभारत भी एतिहासिक नहीं वरन आदर्श आध्यात्मिक ग्रंथ है, इस निर्णय पर आना पड़ता है। महात्मा गांधीजी का भी यही मत था। परंतु चालाक पंडितों ने उनका मत अनुल्लेख द्वारा समाप्त किया इसलिए आज महाभारत भी रामायण जैसे इतिहास माना जा रहा है। अर्जुन का उल्लेख देखिये।

न्यस्तशस्त्रे पितरी मे तपोबल समन्विते।
अर्जुनो विदधे नृत्युं प्राकृतां बुद्धिमास्थितः : ॥ १। ७५॥ २३ ॥

अयोध्याकाण्ड

तृतीय अध्याय

इस प्रकार अपने अन्दर की ताटका-वृत्ति का वध कर और सर्व प्रकार की विद्या एवं शस्त्राभ्यास कर रामचन्द्र भगवान बनते हैं और उस पुण्यकर्म द्वारा स्वपिंड का अहल्यापन मुक्त कर राम मिथिला को गमन करते हैं। कठोर योग-साधना करने के कारण प्राप्त हुए सामर्थ्य द्वारा वे मिथिला में जाकर अपने मेरूदण्ड रूप शिवधनुष का भंग कर सीता की प्राप्ति करते हैं जो कि जनक राजा की भूमिपुत्री थी। अब राम की पिंडकाया अहल्या न रहकर सुहल्या सीता बनती है। अपने पिंडराज्य का अनासक्त राजा याने विदेही जनक हैं जो मिथ्या संसाररूप मिथिला के राजा हैं। जड़ देह-भाव के ऊपर आनेवाली पृथ्वी-कन्या सीता हैं। भगवान राम आपकाजी नहीं थे उन्होंने अपने साथ सब वृत्ति रूप भाइयों का भी विवाह करवाया। लक्ष्मण को उर्मिला, भरत को माण्डवी एवं शत्रुघ्न को श्रुतकीर्ति दिलवाई। अपने ध्येय पर सदा डटे रहनेवाले विवेक याने लक्ष्मण। लक्ष्यं अन: याने ध्येय की ओर सदा अग्रसर रहनेवाले लक्ष्मण थे। ज्ञान में सदा रत रहने वाला वैराग्य-वृत्ति याने भरत भैया थे। 'भा' याने ज्ञानप्रकाश एवं उसमें सदा रत रहनेवाले भरत है। अपने शत्रुरूप दुर्वृत्तियों का हनन करने वाले छोटे भाई शत्रुघ्न थे। माताएँ कुशलता-बुद्धि, याने कौसल्या, कायाभाव से परे कैकया और सबों से भिन्नभाव से रहने वाली सुमित्रा थी। दश इन्द्रियों का चालन करने वाला दशरथ राजा पिता थे। यह सब ईक्ष्वाकु याने मीठी वाणी बोलनेवाले; काकुस्थ याने इंगलापिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का स्वरज्ञान रखनेवाले काकुस्थ और अपने वचन पर दृढ़चित्त रहनेवाले रघुकुल के थे। उनकी सब वृत्तियाँ इष्ट थीं इसलिए उनके गुरू वसिष्ठ थे।

अब राम सोलह साल के हो गये थे। और राजा दशरथ तिहत्तर साल के। दशरथ बहुत बूढ़े हो गये थे इसलिए अपने सामने युवराज राम को अयोध्या का राजा बनाना वे चाहते थे। उन दिनों की रीति के अनुसार बड़ा पुत्र राज्य सिंहासन पर बैठाया जाता था। राम सब पुत्रों में ज्येष्ट थे और सबों के प्रिय भी थे। राम ही अयोध्या का राजा बनें, यह सब चाहते थे। राजा दशरथ ने अपने मंत्रियों की, गुरुजनों की एवं सभी रानियों की सलाह

ली। सबों को यह कल्पना बहुत प्रिय लगी। राम को राजा बनाया जाय इसलिए राज्याभिषेक की तैयारियाँ शुरू हुईं। सारे पौरजन बड़े उल्लास से उस शुभ दिन की बाट जोह रहे थे। सर्वत्र शृंगार-रचनाएँ की गईं। रंगोलियाँ एवं नववस्त्र परिधान किये जाने लगे। राम अब अयोध्या का राजा बन रहे थे। स्वर्गीय आनन्द सारे अयोध्या में उमड़कर बह रहा था। माता कौसल्या तो आनन्द में विभोर थीं, कारण उसका पुत्र राम अब अयोध्या का राजा बन रहा था। कैकेया माता भी महल में राज्याभिषेक का मनः चित्र रंगाकर धुंद बैठी थी। उसका प्रिय राम राजा बन रहा था! इतने में कैकेया की एक मन्थरा नामक दासी कैकेया के महल में बड़ी तेजी से प्रवेश करती है। कैकेया का प्रासाद चन्द्रमा की धवल प्रकाश से नहाया था। राजपथ सिक्त था और एकाध सरोवर में पूर्ण विकसित कमल जैसे दीखता था। रामायण में सुन्दर वर्णन हैं—

प्रासादं चन्द्र संकाशमारूरोह यदृच्छाया ॥ २।७।१॥
सिक्तं राजपथां कृत्स्नां प्रकीर्णकमलोत्पलाम्।
अयोध्यां मन्थरा तस्मा त्प्रासादा दन्व वैक्षत ॥ २।७।२॥

दासी मन्थरा कैकेया के प्रासाद में चुपके से जाती है और देखती है कि वह आनन्द में विभोर है जैसा कि उसी का पुत्र राजगद्दी पर बैठ रहा है। अपने साम्राज्ञी का यह बालिश वर्तन देखकर मन्थरा कैकेया से कहती है—

हर्षं किमर्थम स्थाने कृतवत्यासि बालिशे।
शोकसागर मध्यस्थं नात्मानमवबुध्यसे ॥ २।८।२॥

"अरी साम्राज्ञी तूं शोकसागर में डूब रही है और तिस पर भी एकाध बालिश-वृत्ति के मूर्ख स्त्री जैसी तूँ अपना सब शोक बिसारकर आनन्द में कैसे विभोर हो रही है? तूँ अपने ऊपर आने वाले महान संकट परम्परा को क्यों नहीं निहार सकती है? तेरे सौतन का पुत्र राम राजगद्दी पर आरूढ़ होने के पश्चात् तुझे कौसल्या के सामने एकाध दासी हाथ जोड़कर खड़े रहना पड़ेगा। आज तूं राजा दशरथ की प्रिय रानी है कल जाकर मुझे कौसल्या और राम के प्रासाद में जो जूठे वर्तन माँजना पड़ेगा, जूठे वर्तन," इत्यादि वचनों से मन्थरा कैकेया के मन का मन्थन कर रही थी। आखिर परिणाम हुआ। कैकेया मन्थरा की बात मान लेती है। परन्तु सवाल था कि ज्येष्ट भ्राता राम मौजूद रहकर भी उसे दूर हटाकर अपने पुत्र भरत को राजगद्दी पर कैसे बैठाया जाय?

परन्तु साधक की वृत्तियों का मन्थन करने वाली मन्थरा कुछ कम बुद्धिमान नहीं थी। इस जटिल समस्या का इसके पास उत्तर अवश्य था। जिसे स्वयं

कैकेया जानती थी, परन्तु बुद्धिभ्रम के कारण वह अपने वर भूल गई थी। मन्थरा ने उन वरों की उसे याद दिलाई। देवासुर युद्ध में कैकेया ने राजा दशरथ को बड़ी सहायता की थी जिस पर प्रसन्न होकर राजा दशरथ ने प्रिय कैकेया को दो वर देने का वचन दिया था। उस समय कैकेया के सामने कोई समस्या नहीं थी इसलिए उसने वह दो वर तदन्तर काल में माँग लेने की इच्छा दर्शायी। बात वहीं पर रह गयी थी। उन वरों की याद अब दासी मन्थरा रानी कैकेया को देती है और एक वर से राम को वनवास भेजने और दूसरे वर से भरत को राजगद्दी पर बैठाने के वर माँगने को कहती है। मन्थरा कहती है—

'तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरो शुभदर्शनं ॥ २।९।१७ ॥

वह और सुझाती है—

'रामाभिषेकं संभारान्निगृह्य विनिवर्तय।
तौ च याचस्व भर्तारं भरतस्याभिषेचनम्।
प्रव्रजनंच रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश॥ २।९।२०॥

मन्थरा की सलाह के अनुसार कैकेया अपने क्रोधागार में जाकर अपना केशसंभार मुक्त कर रोने-धोने लगती है। राजा को यह बात मालूम होती है। राजा दशरथ कैकेया पर अधिक प्रेम करते थे। दशरथ दौड़ते हुए कैकेया के प्रासाद की तरफ जाते हैं और अपनी प्रिय रानी कैकेया से इस प्रकार के क्षोभ का क्या कारण है, यह पूछते हैं।

कैकेया इसे देवासुर युद्ध के समय दिये हुए दो वर माँगती है। राजा दशरथ उसे वह दो वर देने का अभिवचन देते हैं। यह देवासुर युद्ध क्या है यह हमने अध्याय ७ के 'देवासुर युद्ध' के स्तम्भ में देखा है। कैकेया दो वर माँगती है—

'राम प्रव्राजनं दूरं नव वर्षाणि पञ्च च।
भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभः॥ २।९।३०॥

राम दूर वनवास में नौ अधिक पाँच ऐसे कुल मिलाकर चौदह वर्ष भेजा जाय और दूसरे वर द्वारा भरत को पृथ्वी का राजा बनाया जाय। राजा दशरथ यदि इन वरों को न देने का सोचें तो कैकेया ने राजा दशरथ को रघुकुल के एक वचन की रीत बताई 'रघुकुल रीति सदा चल आई। प्राण जाय परू वचन न जाई॥' दशरथ राजा बड़ी असुविधा में पड़ गये। यदि हाँ कहते हैं तो प्रिय राम को अकारण चौदह वर्ष तक वनवास भेजने का

पालन करना पड़ता है और यदि ना कहते हैं तो रघुकुल के वचन विरुद्ध व्यवहार होता है। कैकेया फिर से माँगती है—

'नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
चीरा जीनधरो धीरो रामो भवतु तापसः॥॥ २।७२।२७।

राम दण्डकारण्य में चौदह साल जाकर और चीराजीन पहनकर तापसी एवं धीर पुरुष बनें और भरत अयोध्या का राजा बनें। विना राम दशरथ कैसे जीवित रह सकते हैं। दशरथ उलझन में पड़ गये। वे कुछ भी नहीं बोलते थे। राजा दशरथ अपना वचन पूरा करने की अवस्था में नहीं हैं, यह देखकर बुद्धिमान कैकेया ने राम को अपने पिता का हाल देखने के लिए अपने प्रासाद में बुलाया।

राम आकर सब देख लेते हैं और सब कुछ जान लेते हैं। पिता द्वारा दिये हुए वर अब वह नहीं पालन करते हैं इसलिए अब राम स्वयं इस बात का निर्णय करें, यह बुद्धिमान कैकेया राम को सुझाती है। कैकेया अपने दो वरों का दशरथ के सामने पुनरुच्चार कर राम उस पर क्या कहते हैं, यह देखती है—

'राम प्रव्राजनं दूरं नव वर्षाणि पञ्च च।
भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभ॥'

पिता का वचन सत्य करने के लिए राम राजगद्दी का त्याग करने के लिए तैयार हो जाते हैं परन्तु राम केवल राज्य त्याग कर घर में आराम से बैठें, यह राम की हिमायती माता कैकेया नहीं चाहती थी। वह राम को तपस्या करने दण्डकारण्य में भेजना चाहती है। अच्छा, वह वन कौन-सा भी नहीं चलेगा तो वन भी भयानक और क्रूर श्वापद एवं राक्षसों से भरा हुआ दण्डकारण्य ही चाहिए। कैकेया कहती है—

'नवपञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
चीराजीन धरो धीरो रामो भवतु तापसः॥'

राम नौ और पाँच ऐसे मिलाकर कुल चौदह साल दण्डकारण्य में रहकर घोर तपस्या करें और धीर पुरुष बनें। राम चीराजीन पहनें, राजवस्त्र न पहनें, कैकेया की शर्तें वहुत बारीकी में थीं। राम को वह धीर पुरुष और तापसी बनाना चाहती है कारण राजगद्दी पर बैठने से उसका प्रिय राम माया में फँसकर स्वयं को भूल जायेगा, यह वह जानती थी। इसीलिए राम केवल राज्य त्याग कर घर में चूप न बैठें, राम दण्डकारण्य में, जाकर धीर पुरुष, तापसी बनें, यह वह चाहती है।

परन्तु राम को भगवान बनाने की कैकेया की आन्तरिक इच्छा दशेन्द्रिय परायण दशरथ क्या जानें? वह अपनाही देखते थे। बिना राम याने आत्मानन्द दशेन्द्रियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं? दशरथ राम की भलाई नहीं जानते हैं वह केवल अपनाही राम याने आनन्द देखते थे। राम तपस्या करने के लिए यदि घोर दण्डकारण्य में जाते हैं याने इन्द्रियों को वन में जाकर घोर तपस्या करने लगते हैं तो सुख-लालच में विभोर पड़ने वाली दशरथ रूप इन्द्रियाँ वहाँ पर सिवाय कष्ट के और कुछ न पातीं। फिर सुख-लोलुप दशरथ रूप इन्द्रियों को उनका रामरूप सुख और आनन्द कैसे प्राप्त होता? एक एक की सुख और आनन्द की अपनी एक कल्पना रहती है। अन्य प्रकार का आनन्द और सुख वह सह नहीं सकते हैं। भोगी पुरुष वन में जाकर आत्मानन्द नहीं सह सकता है और अध्यात्म प्रवण तापसी शहर में रहकर राजभोग में आनन्द नहीं पा सकता है। राम को याने आध्यात्मिक साधक-वृत्ति को वन में जाकर तपस्या कर धीरपुरुष बनाना साधक की विदेही-वृत्ति कैकेया चाहती है तो राम याने शहरी भोग-विलासों के सिवाय दशेन्द्रिय परायण साधक की अन्य दशरथ-वृत्ति वन में नहीं रहना चाहती है। दो प्रवृत्तियों का झगड़ा साधक के मन में चल रहा है। एक, दशरथरूप भोग-प्र वृत्तिऔर दूसरी, कैकेया रूप विदेही-वृत्ति जो वन में जाकर तपस्या करना चाहती है। परन्तु साधक की रामवृत्ति कैकेया का कहना मानती है और बगैर अपने पिता को पूछे वन में जाना पसन्द करती है। राम वनवास स्वीकारते हैं।

परन्तु बिना राम दशरथ जीवित नहीं रह सकते हैं। राम का यह निर्णय देखकर दशरथ कैकेया को समझाते हैं जिसका कहना राम माने--

'अञ्जलिं कुर्मि कैकेयी पादौ चापि स्पृशामि ते।
शरणं भव रामस्य माऽधर्मो मामिह स्पृशेत् ॥२।१२।३६॥'

हे कैकेया, मैं हाथ जोड़कर तेरे चरण छूता हूँ, मैं तुझे पूर्ण शरण में हूँ परन्तु अधर्म से तूं राम को वनवास में न भेज। मैं राम बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। अयोध्या नगरी में रहकर सर्वभोग विलास करे, इसी में मेरा आनन्द याने राम है। वनवास में जाकर तपस्या करने में मुझे कोई भी राम नहीं है। इसलिए हे कैकेया मेरे राम को तूं वनवास न करवा। राम को अयोध्या में ही रहने दे। यदि तूं चाहती है तो भरत को राजगद्दी पर बैठा परन्तु कैकेया तं मेरे राम को वन में भेजकर वहाँ के कष्ट उठाने के लिए मत

कह। हे कैकेया मैं तेरे चरण छूता हूँ। मेरे लिए तूं इतना कर। कैकेया मैं तुम्हारी पूर्ण शरण में आया हूँ।'

परन्तु दशरथ के शहराती भोगविलास-वृत्ति का कोई परिणाम कैकेया और राम पर कुछ नहीं हुआ। कारण वे दोनों तपस्या-प्राप्त आनन्द याने राम चाहते थे। कैकेया के सामने एक जटिल प्रश्न था और वह यह कि यदि वह अयोध्या की राजगद्दी पर भरत याने ज्ञानरूप वैराग्य को बैठाती है तो राजभोग में मस्त रहनेवाला राम अयोध्या में कैसे रह सकता है? राम राजा बनें तो भरत अयोध्या में नहीं रह सकता और वैराग्यरूप भरत राजा बनता है तो भोगविलास में आनन्द माननेवाला राम अयोध्या में नहीं रह सकता है। इसलिए कैकेया अपना आनन्दरूप रामवृत्ति दण्डकारण्य में भेज कर तपस्या द्वारा धीरपुरुष बने और वैराग्यरूप भरतवृत्ति अयोध्या के सिंहासन पर बैठे, यह चाहती है। आनन्दरूप राम भी अपनी हिमायती माता विदेही वृत्तिरूप कैकेया का कहना मानते हैं और राम दण्डकारण्य में जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। परन्तु दशरथ इस बात के लिए तैयार न थे। वे अपनी ही पुरानी रट लगा रहे थे। दशरथ की यह भोगवृत्ति देखकर कैकेया उस पर क्रोधित होकर कहती है—

'सत्वं धर्मं परित्यज्य रामं राज्येऽभिषिच्य च।
सह कौसल्यया नित्यं रन्तुमिच्छसि दुर्मते ॥२।१२।४५॥'

इस श्लोक में कैकेया दशरथ को अधर्मी और दुर्मते कहती है। और कारण क्या है? तो दशरथ राम को बाह्यतः धर्म-रीति से अयोध्या के राज्य पर बैठाते हैं और अपनी ज्येष्ट पत्नी कौसल्या से रत होना चाहते हैं। तो क्या ज्येष्ट पुत्र राम को गद्दी पर बैठाना अधर्म है और पत्नी कौसल्या से रत होना पाप है? इससे स्पष्ट है कि कैकेया द्वारा वाल्मीकिजी पाठकों को यह बताता चाहते हैं कि रामायण का सच्चा आशय ऊपरी अर्थात सामाजिक अथवा ऐतिहासक नहीं वरन गहन आध्यात्मिक है। वह आशय कौन-सा है, यह हम देखें। राम याने सात्विक आनन्द। क्या सात्विक आनन्द राज्य सिंहासन पर बैठ कर पाया जाता है? राजगद्दी पर बैठ कर आसुरी आनन्द पायेगा न कि सात्विक। राजसिंहासन पर बैठ कर भी राजा विदेही जनक जैसी अपनी वैराग्यवृत्ति रखनेवाला भरत जैसे ज्ञान वैराग्यशील-वृत्ति अपने सात्विक आनन्द में मस्त रहेगी। इसलिए भरत के बजाय रामवृत्ति को राजसिंहासन पर स्थापित करना कैकेया अधर्म मानती थी। राम का गद्दी पर स्थानापन्न होना पिण्डधर्म के अनुसार अधर्म था। राम का धर्म

भोगराज्य का त्याग कर वन में जाना और तपस्या कर उस द्वारा राम याने आनन्द पाना ।

अब अपनी ज्येष्ट रानी कौसल्या से रत होना इसमें दसरथ कौन-सा पाप कर दुर्मति बनते हैं ? क्या अपनी विवाहित पत्नी से रत होना पाप है ? क्या कौसल्या वेश्या जैसी थी ? हाँ, देहभाव से ऊपर रहनेवाली कैकेया के लिए दशरथ को कौसल्या से रत होना पाप ही था। कौसल्या याने साधना में आवश्यक ऐसी कुशलता है, यह हमने देखा है। यह साधना कुशलता यदि केवल भोग के लिए ही उपयोग में लायी जाय तो क्या साधक वैराग्यशील और देहभावविरहित बन सकता है ? हरगीज नहीं। इसलिए कौसल्या से रत होना इस कर्म में रानी कैकेया दशरथ की दुर्मति और पाप देखती थी। वह चाहती है कि दशेन्द्रिय परायण अपनी कुशल बुद्धि कौसल्या-भोग में न लगा कर कैकेयारूप विदेही अवस्थावृत्ति में लगायें और राम के बजाय भरतरूप वैराग्यवृत्ति को अयोध्या के राजसिंहासन पर आरूढ़ करें। आखिर भरत जैसा ज्ञानवैराग्य सम्पन्न व्यक्ति ही अयोध्या याने निर्द्वन्द्व वृत्तिरूप नगरी का राजा बन सकता है। इसलिए राजा दशरथ कौसल्या से रत होने में और राम को अयोध्या का राजा बनने में कैकेया अधर्म और पाप देखती थी।

इस प्रकार हिमायती कैकेया दशरथ और राम को अधर्म और पाप से बचाना चाहती है। कैकेया की हिमायती बुद्धि राम जान गये थे इसलिए प्रत्यक्ष पिता दशरथ द्वारा नहीं कहने पर भी राम पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर दण्डकारण्य में जाते हैं। रामायण के आन्तर आशय ऊपरी आशयों से भिन्न है।

मन्थरा :

मन्थरा याने मन के सारे स्तरों का मन्थन करनेवाली साधक की शुद्ध बुद्धि जो साधक की आध्यात्मिक सेवा के लिए सदा दासी जैसी तत्पर रहती है। परन्तु यह शुद्ध बुद्धि साधक-जीवन में साधक द्वारा उपेक्षित याने किसी दासी जैसी रहती है। परन्तु यही मन्थरा है जो प्रत्यक्ष विदेही वृत्तिरूप कैकाया को शुद्ध सलाह देकर उसका आध्यात्मिक अधःपतन रोकने की प्राण से चेष्टा करती है। मन्थरा याने विचारों का पूर्ण मन्थन कर उसमें से केवल सदविचारों को प्राधान्य देनेवाली सदसदविवेक बुद्धि है। वैदिक परम्परा में भावना से ऊपर कर्तव्य श्रेष्ठ माना जाता है। इसलिए सारा समाज

राम सिंहासन पर आरूढ़ होकर अयोध्या का राज करें, यह मानता था परन्तु साधक की कर्तव्य तत्पर बुद्धि मन्थरा इन सारे व्यावहारिक विचारों का विरोध कर राम को धीर तापसी बनने दण्डकारण्य में भेजना चाहती है और भरत को सिंहासनस्थ बनाना चाहती है। इसलिए रामायण में दुष्ट कैकेया ही रामवृत्ति की हिमायती माता है और एक उपेक्षित दासी मन्थरा साधक की वैराग्यवृत्ति को सदा जागृत रखनेवाली सद्सद्विवेक बुद्धि है। मन्थरा-बुद्धि हर साधक के अन्तःकरण में है परन्तु उसे हम एकाध सामान्य उपेक्षित दासी जैसा मानते हैं। मन्थरा को दासी बना कर रामायणकार वैदिक परम्परा की महानता दिखाते हैं। सामाजिक दृष्टि से यद्यपि कोई दासी भी है तो भी वह साधक को शुद्ध और सुयोग्य आध्यात्मिक उपदेश दे सकती है, परन्तु उस दासी की ओर हमारा ध्यान रहे, यह अमृत तत्व रामायणकार मन्थरा दासी द्वारा हमें देना चाहते हैं। बालादपि सुग्राह्यम्।

हम उपदेश सुनते हैं वसिष्ठ गुरू का जो कि दशरथ के दरबार में सेवा कर अपनी शुद्ध बुद्धि बेचता है, हम उपदेश सुनते हैं कौसल्या का जो अपनी कुशल बुद्धि राम साधक को राज्यभोग की सलाह देती है। परन्तु रामायणकार बताते हैं कि साधक तू माता कैकेया की आज्ञा मान जिसकी विचलित बुद्धि मन्थरा जैसी एक दासी ने रास्ते पर लायी थी। रामायण का श्रेष्ठ पात्र मन्थरा है।

राम और कृष्ण का आदर्श

भगवान राम :

वास्तविक राम के श्वसुर विदेही जनक हैं जो राजपाट सम्भालते हुए भी अलिप्त वृत्ति से रहते हैं परन्तु उनके दामाद रहकर भी राम को राजपाट कर उससे निर्लेप रहना कठिन होता है। भरत चौदह साल राज्य करता है परन्तु वह स्वयं को राज्य का कार्यकारी समझता है न कि राजा अथवा मालिक। भरत का आदर्श इस दृष्टि से राम से भी उच्च है। राम के वापस लौटने पर भरत उनका राज्य उन्हें तुरन्त लौटा देते हैं और चौदह साल वनवास में रहकर भी राम पुनः राज्यभोग के लिए तैयार रहते हैं। राज्य कार्यभार के लालच से राम परे नहीं रह सकते हैं इसीलिए राम को रामायणकार मर्यादा पुरुषोत्तम मानते हैं। एक मर्यादा तक राम आदर्श हैं परन्तु उस मर्यादा से ऊपर राम नहीं जा सकते हैं। राज्य कार्यभार सम्हाल

कर एक तापसी जैसे रहता है परन्तु वह तापसी वृत्ति रखने के लिए राम को वनवास में जाकर प्रत्यक्ष तापसी जीवन जीना पड़ता है। केवल सात्विक आनन्द ही जीवन का ध्येय मानने पर वह आनन्द साधक कर्मरत रहकर भी पा सकता है। सीता का रावण द्वारा हरन होने पर राम सीता के लिए अपार शोक करते हैं इतना कि लक्ष्मण और सुग्रीव उन्हें किसी प्राकृत जैसी पत्नी के लिए शोक न करने की बात कहते हैं। छोटा भाई लक्ष्मण साथ रहकर भी अपनी पत्नी के लिए तनिक भी विलाप नहीं करता है परन्तु उसका आदर्श राम के सामने नहीं है। राम एक मजनू जैसे सीता के लिए विलाप करते हैं। यह आदर्श समाज के सन्मुख रहना ठीक नहीं है।

सीता-वियोग के कारण राम किसी कामुक व्यक्ति जैसे स्त्री-भोग सुख के लिए ललचते हैं इतना कि राम का यह कामुक भाव साधारण व्यक्ति को भी वहुत खटकता है। लक्ष्मण भी तरुण था और अपनी पत्नी से दूर था परन्तु उसकी धीर गम्भीर वृत्ति भी राम का चञ्चल मन शान्त नहीं कर सकती है। सीता से मिलने के लिए राम लतावृक्षों को भी आलिंगन करते हुए दिखायी देते हैं। आध्यात्मिक रूपकात्मक ढंग से यद्यपि यह वर्णन ठीक होगा तो भी सामाजिक नीति, धैर्य और संयमशीलता की दृष्टि से राम का इस प्रकार संयमहीन, विवेकहीन वर्ताव सामाजिक आदर्श की दृष्टि से ठीक नहीं है। लक्ष्मण और भरत का व्यवहार राम से भी वढ़कर आदर्श है। राम का इस प्रकार वर्णन करना रामायणकार की दृष्टि से ठीक था कारण वाल्मीकि ने राम को एक मर्यादा पुरुष के रूप में समाज के सन्मुख खड़ा करने की चेष्टा की है। साधारण व्यक्ति इसी प्रकार राम जैसा वर्ताव करता है परन्तु कुटुम्व, गाँव, समाज और देश के लिए व्यक्ति को क्या करना चाहिए इसका आदर्श राम द्वारा वाल्मीकि ने अवश्य खड़ा किया है। पत्नी के शोक में भी राम समाज और देश को नहीं भूलते हैं। पत्नी का अपहरण होने पर वह उसको अवश्य छुड़ाता है, परन्तु कर्तव्य के लिए आगे चलकर सीता के साथ राम का जो व्यवहार दिखाया गया है वह समर्थनीय नहीं है।

भगवान गोपालकृष्ण :

रामजीवन में जो त्रुटियाँ रह गई थीं उनको दूर करने का प्रयास रामायण ग्रन्थ लेखक के पश्चात अपना महान ग्रन्थ महाभारत लिखने वाले भगवान वेद व्यास ने उत्तम किया। उनका आदर्श चरित्र-जीवन भगवान गोपालकृष्ण हैं। 'ग' याने इन्द्रियाँ। जो अपनी समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण संयम रखकर उस

द्वारा अखिल विश्व की दिव्य शक्तियाँ कर्षण करता है उसे व्यासजी गोपाल कृष्ण कहते हैं। ऐसा संयमी व्यक्ति अवश्यमेव भगवान है, केवल प्रचार द्वारा नहीं। ऐसे उत्तम गुणयुक्त महापुरुषों का शरीररूप उपकरण भी उनका महान कार्य करने के लिए सर्वाङ्ग सुन्दर दिखाया है। भगवान राम और कृष्ण त्रिभुवन सुन्दर शरीर इसीलिए दिखाये हैं। सारे ऐतिहासिक आध्यात्मिक महापुरुषों का शरीर इसी प्रकार सुन्दर है जैसे कि आद्य शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव, तुकाराम, कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द इत्यादि! ऐसे महापुरुषों की कुंडलिनी जागृत होने से उनमें सम्पूर्ण उत्क्रान्त मानव के सर्व गुण रहते हैं। वे कवि, लेखक, चित्रकार, गायक, वादक, मल्ल, तत्वज्ञानी, बुद्धिमान, समाजनीति एवं राजनीति कुशल, कुशल संघटक, सबसे प्रेम करने वाले, कुटुम्बवत्सल परन्तु उसकी माया से परे, भोग उपकरण अथवा घटना का पूर्ण उपयोग कर उनसे सदा मुक्त, राजपाट कर भी उससे राजा जनक और भरत जैसे पूर्ण आलिप्त, स्त्रियों में प्रिय परन्तु स्त्रीमाया से पूर्ण आलिप्त इत्यादि सम्पूर्ण उत्क्रान्त मानव के पूर्ण गुणयुक्त रहते हैं। इस प्रकार का महान दिव्य पूर्ण जीवन व्यासजी ने भगवान गोपालकृष्ण द्वारा मानव-समाज के सामने खड़ा किया है।

राम सुन्दर शरीरी, वीर और कुशल संघटक अवश्य दिखाये गये हैं परन्तु भगवान गोपालकृष्ण जैसे वे उत्तम गायक, मल्ल, तत्वज्ञानी, राजनीति निपुण, कलावान, स्त्रियों के साथ रहकर भी उनकी माया से परे, पूर्ण ब्रह्मचारी, पत्नी के लिए शोक कर तमाम जीवन बरबाद न करने वाले इत्यादि पूर्ण गुणयुक्त नहीं बताये गये हैं। इसीलिए भगवान वेदव्यास भगवान गोपालकृष्ण को पूर्णावतार कहते हैं। राम का जीवन मर्यादा में रहने योग्य एक उत्तम पुरुष का दिखाया है इसीलिए राम को मर्यादा पुरुषोत्तम दिखाया है। गोपाल कृष्ण जीवन के सब खेल खेलते हैं अच्छों में, बूरों में रहकर भी वे अपने ध्येय की ओर सदा अग्रसर रहते हैं। अपना राज्य स्वयं निर्माण करते हैं, औरों को न्याय-मार्ग से उनके राज्य प्राप्त करवाते हैं; अन्याय करने वाले कितने भी शक्तिशाली अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त हों उन्हें नीचे खींचते हैं और यह सब करते हुए समय आने पर सब छोड़कर अपनी इच्छा से देहत्याग कर निर्वाण प्राप्त करते हैं। इतना पूर्ण आदर्श आजतक किसी भी लेखक ने समाज के सामने नहीं खड़ा किया है। अपनी मर्यादा में उत्तम पुरुष रहने वाले राम हैं तो सब मर्यादाओं को लीलया लाँघकर पूर्ण पुरुष बनने वाले भगवान गोपाल कृष्ण हैं।

राम का अपनी मर्यादाओं की कक्षा में रह सकने वाला सामान्य परंतु उत्तम आदर्श-जीवन संसार के सभी मानवों को लुभाता है। इसी कारण रामायण और राम-जीवन का प्रचार महाभारत से अधिक हुआ। राम-जीवन के करुणाजनक प्रसंग सामान्य जनों पर अधिक परिणाम करते हैं। हर प्रसंग पर सीता का जो छल होता है और उस समय सीता जिस प्रकार धीर वृत्ति से रहती है, वह उसका जीवन समस्त मानवीय स्त्रियों के लिए अवश्य आदर्श है। यही कारण है कि रामायण ग्रन्थ सारे संसार में अधिक लोक प्रिय हुआ।

नवपञ्चम योग

ज्योतिष शास्त्र कुण्डली में नव पञ्चम योग एक पूर्ण योग माना गया है और यह नव पञ्चम योग जिस व्यक्ति की कुण्डली में रहता है उसे बहुत भाग्यशाली और पूर्ण पुरुष माना जाता है। अध्यात्म में आत्म-ज्ञान जैसा उत्तम नव पञ्चम योग कौन-सा है? उस नव पञ्चम योग-सिद्धि के लिए उस व्यक्ति को सामाजिक हाल, छल, असुविधा, अन्याय कितना भी क्यों न सहना पड़े परन्तु वह आध्यात्मिक महापुरुष अपने ध्येय के लिए सब कुछ सहता है। इस प्रकार का नव पञ्चम योग दिखाने के लिए रामायणकार ने राम की तपस्या कर धीर पुरुष बनने के लिए कैकेया द्वारा नव पञ्चम वर्षों तक दण्डकारण्य में तपस्या करने भेजा है। राम को चौदह साल वनवास भेजने के लिए कैकेया कहती हैं। सवाल यह है कि चौदह साल ही क्यों? पाँच साल, दस साल अथवा ग्यारह साल क्यों नहीं? और वह भी कैकेया राम को एकदम सीधे चौदह साल वनवास में जाने के लिए नहीं कहती है, वह राम को नव और पञ्चम साल वनवास में जाने के लिए कहती है—

"नव पंचम वर्षाणि दण्डकारण्य आश्रितः।
चीराजीन धरो धीरोरामो भवतुतापसः॥"

कैकेया राम को उत्तम पुरुष बनाना चाहती है 'रामो भवतु तापसः'। वैदिक जीवन में उत्तम पुरुष वह जो तापसी बनकर आत्म-ज्ञान जाने। कैकेया राम को यही बनाना चाहती है। एक उत्तम तुरुष के जीवन में इस प्रकार और श्रेष्ठ नव पञ्चम योग कौन-सा रह सकता है? इसलिए राम की हिमायती माता कैकेया राम को उसका नव पञ्चम ग्रह योग पूर्ण करने के लिए उसे वन में नव पञ्चम वर्ष रहने के लिए कहती है। नव और पाँच

मिलाकर चौदह अवश्य होते हैं परन्तु राम वनवास में अब पञ्चम साल ही बितायें, यह कैकेया की आन्तरिक इच्छा है। राम अयोध्या की गद्दी पर विराजमान होते तो वे इस प्रकार अध्यात्म जानकर उत्तम न बनते। वे अपना आध्यात्मिक धर्म छोड़कर अधार्मिक बनते। इसलिए राम को अयोध्या की गद्दी पर बैठा कर अधर्म न करने के लिए कैकेया दशरथ राजा को कहती है—

'सर्वं धर्मं परित्यांज्य रामं राज्येऽभिषिष्यच' राम का नव पञ्चम योग जंगल में जाकर, तपस्या कर, आध्यात्म जानकर उत्तम पुरुष बनने का था। कैकेया राम से यही करवाती है। हर साधक के लिए उसकी हिमायती माता कैकेया है न कि कौसल्या जो अपने पति और पुत्र को व्यावहारिक माया में फँसाकर उत्तम पुरुष नहीं बनने देती है। इसीलिए कैकेया दशरथ से कहती है कि दशरथ राजा कौसल्या से सदा रत रहकर पाप करेगा, "सह कौसल्या नित्यं रन्तुमिच्छासि दुर्मते ॥"

दण्डकारण्य

राम को यदि जंगल ही जाना है तो राम किसी जंगल में जाकर अपना डेरा लगा लेते। परन्तु कैकेया राम को अन्य किसी भी वन में नहीं वरन् केवल दण्डकारण्य में ही जाकर तपस्या करने के लिए कहती है। इसका आशय दण्डकारण्य में ही तपस्या करने से विदेही-वृत्ति कैकेया को अध्यात्म में कुछ विशेष लाभ होता होगा। वह क्या है,- यह बाद में देखेंगे। प्रथम दण्डकारण्य की औपचारिक कथा देखें।

ईक्ष्वाकु के एक सौ पुत्र थे। आखिरी पुत्र था दण्डक। दण्डक बहुत उदण्ड था और ऋषि-मुनियों को बहुत तकलीफ देता था। उसे ईक्ष्वाकु ने बहुत समझाया परन्तु वह किसी की बात नहीं मानता था। आखिर अपना आध्यात्मिक कर्तव्य करने के लिए ईक्ष्वाकु ने उदण्ड दण्डक को अपने राज्य के बाहर निकाल दिया और जंगली श्वापदों से एवं राक्षसों से भरे हुए दक्षिण अरण्य में रहने के लिए कहा। दण्डक उस जंगल में अपनी क्रूरता के साथ रहा करता था इसलिए उस दक्षिणा पथ अरण्य को दण्डकारण्य कहा जाता था। वहाँ पर तपस्या के लिए आने वाले ऋषि-मुनियों को दण्डक बहुत पीड़ा देता था, यहाँ तक की तपस्या छोड़कर ऋषि-मुनि दण्डकारण्य से भाग चले। दण्डक की उदण्डता बढ़ती रही। उस अरण्य में एक शुक्राचार्य नामक ऋषि रहते थे।

उनकी अरजा नामक एक सुन्दर पुत्री थी। दण्डक की अरजा पर बुरी नजर थी। एक दिन आश्रम में शुक्राचार्य को न देखकर दण्डक ने अरजा पर बलात्कार किया। पिता शुक्राचार्य ने यह सुनकर दण्डक को शाप दिया जिस द्वारा दण्डकारण्य में जहाँ-तहाँ भूडोल और उद्रेक होकर दण्डकारण्य मानव-निवास के लिए और भी खराब हो गया। तो भी कुछ ऋषि-मुनि दण्डकारण्य में तपस्या करने जाते ही थे। वहाँ उनपर राक्षसों द्वारा अनन्वित अत्याचार होते थे। कहा जाता है कि राक्षसों द्वारा असंख्य ऋषि-मुनि दण्डकारण्य में नित्य मारे जाते थे और उनकी हड्डियों की ढेर दण्डकारण्य में जहाँ-तहाँ लगी थी जिसपर भी ऋषि-मुनि दण्डकारण्य में अपने सुखी गाँव और सुसंस्कृत समृद्ध समाज छोड़कर असंस्कृत, असभ्य एवं मृत्यु के भय से सदा आतंकित बने हुए दण्डकारण्य में मरने जाते थे। कौन ऐसा बुद्धिमान मानव है जो जानबूझ कर असंस्कृत, असुखी दण्डकारण्य के राक्षसों के साथ रहने के लिए जायेगा और एक दिन उनके द्वारा खाया जायेगा अथवा मारा जायेगा ?

फिर दण्डकारण्य और उसमें रहनेवाले राक्षसों की कथा में कुछ सत्य होना चाहिए जिसे हमें जानना आवश्यक है। दण्डक उस घने अरण्य का अधिपति था इसलिए उसे दण्डकारण्य कहा जाता था, यह कथा बताती है। परन्तु रामायण की हर कथा के अनुसार दण्डकारण्य की कथा में कुछ आध्यात्मिक रहस्य अवश्य होना चाहिए। दण्डकारण्य याने हमारा मेरुदण्ड है। अरण्य में जिस प्रकार लता, वृक्ष, वल्लियों की घनी बस्ती रहती है उसी प्रकार हमारे मेरूदण्ड में मज्जातंतुओं की घनी बस्ती रहती है। साधनाकाल में इन्हीं मज्जातंतुओं पर विशेष प्रक्रियाएँ होकर साधक का मन और शरीर अधिक सुदृढ़ और शुद्ध बनता है। इसलिए इन मेरूदण्ड में स्थित मज्जातंतु रूप जंगल में साधना-समय में साधक को रहना ही पड़ता है। कुछ साधक इस प्रकार के दण्डकारण्य में रहने के कारण उसमें बसती करनेवाले दुर्गुण रूप राक्षसों द्वारा मारे जाते हैं याने उनमें वे साधना में अधिक सफल नहीं हो पाते हैं। तिस पर भी अनेक साधक साधनारूप दण्डकारण्य में तपस्या करने के लिए अवश्य जाते हैं। इसीलिए कथा में बताया गया है कि राक्षसों के द्वारा मारे जाने के बावजूद भी अनेक ऋषिमुनि दण्डकारण्य में तपस्या करने जाते ही थे। वास्तव में इस प्रकार राक्षस भरे जंगल में कोई साधक जान-बूझ कर नहीं रहने जायेगा। परन्तु दुर्गुणरूप राक्षस रहने पर भी हर साधक अपने मेरुदण्डरूप दण्डकारण्य में अवश्य रहने जायेगा। राक्षस याने साधक स्थित दुर्गुण और बुरे संस्कार हैं।

मेरुदण्ड की साधना करते समय साधक की पुरानी चित्तवृत्तियाँ उद्दण्ड हो उठती हैं। इसलिए दण्डक उद्दंण्ड स्वभाव का बताया गया है। इस दण्डक ने शुक्राचार्य की सुन्दर पुत्री अरजा पर बलात्कार किया याने साधक की उद्दण्ड वृत्ति अपनी साधना में अपरिपूर्ण अरजा-काया पर बलात्कार करती है। याने साधना करने के लिए साधक की काया सूरजा रहनी चाहिए। रज याने परिपूर्ण होना और अरजा याने अपरिपूर्ण-अहल्या-काया ! इस प्रकार की अरजा-काया पर साधना द्वारा बलात्कार करने से साधक की काया में झटके आकर साधक की मज्जासंस्था (nervous system) बिगड़कर साधक शरीर को कई बार झटके बैठ सकते हैं। यही दण्डकारण्य में भूडोल और भूकम्प होना है। साधना करते समय कई साधकों का शरीर डावाडोल होकर उन्हें झटके आना, वृत्तियों में उद्रेक आना इस प्रकार के विचित्र अनुभव आते हैं। यही शुक्राचार्य का दण्डक को शाप है जिस द्वारा दण्डक राज्य में याने दण्डकारण्य में भूडोल और उद्रेक होना है। इसलिए साधक को अपनी अरजा याने साधना के लिए अपरिपूर्ण काया पर बलात् साधना प्रयोग नहीं करने चाहिए। कारण उससे काया अरजा पर बलात्कार होकर शुक्राचार्य याने साधक-शक्ति द्वारा (शुक्र याने शक्ति) शरीर में उद्रेक और भूडोल जैसे अनुभव आ सकते हैं। साधना के लिए साधक का शरीर आसन, प्राणायाम द्वारा सुरजा अथवा सुहल्या बनाना आवश्यक है। इस प्रकार की सुरजा, सुहल्या कायाद्वारा साधना करने से यानी समागम करने से साधक के शरीर में उद्रेक अथवा भूडोल नहीं होते हैं।

इसी दण्डकारण्य में तपस्या करने कैकेया भगवान राम को तपस्या कर धीर पुरुष बनने के लिए चौदह साल भेजना चाहती है। पिता दशरथ इस प्रकार के तपस्या कष्ट के लिए तैयार नहीं थे। उनका आनन्द याने राम अयोध्या के सुखासीन जीवन में रहना उनकी वृत्ति के लिए अच्छा था। इसलिए राम अयोध्या में ही रहे, दण्डकारण्य में न जायें, यह राजा दशरथ चाहते थे।

देवासुर युद्ध और दाशराज्ञ यज्ञ

कैकेया को दशरथ द्वारा देवासुर युद्ध में जो दो वर प्राप्त हुए थे उस देवासुर युद्ध के बारे में हमने कुछ जाना है। देवासुर युद्ध याने अपनी साधना करते समय साधक के मन में जो अच्छी और बुरी वृत्तियों का संघर्ष होता

है उसे देवासुरयुद्ध कहते हैं, यह हमने देखा है। इस प्रकार के देवासुर युद्ध जीतने के लिए साधक की अच्छी वृत्तियाँ याने सुर मजबूत रहे, यह आवश्यक है। सुर वृत्तियाँ मजबूत तभी बन सकती हैं जब कि साधक की देहवृत्ति नष्ट होकर वह कैकेया बने। इस प्रकार की कैकेया-वृत्ति की सहायता से ही दशेन्द्रिय रूप दशरथ साधक देवासुर युद्ध में जीत सकता है। इसलिए दशरथ प्रसन्न होकर अपनी प्रिय रानी कैकेया को दो वर देना चाहते हैं। कैकेया अपने वर भूल गई थी परन्तु साधक की सदसद विवेक बुद्धि याने मन्थरा कैकेया को उसके दो वरों का स्मरण करवा देती है जिस द्वारा वह अयोध्या के राज्यपद पर ज्ञान प्रकाशरूप भरत को बैठाना चाहती है और आत्मानन्द राम को अधिक आत्मसम्पन्न बनाने के लिए राम को दण्डकारण्य में तपस्या कर धीर पुरुष बनने के लिए भेजना चाहती है। यही देवासुरयुद्ध है जिसमें युद्ध करना हर साधक का कर्तव्य है। यही वह दण्डकारण्य है जिसमें हर रामरूप साधक को तपस्या करने जाना पड़ता है।

दाशराज्ञ यज्ञ

ऋग्वेद में इसी प्रकार दाशराज्ञ यज्ञ का वर्णन आया है जिसको हमारे विद्वान प्रत्यक्ष घटित ऐतिहासिक यज्ञ-युद्ध मानते हैं। दशरथ में जो दश इन्द्रियाँ हैं वही दाशराज्ञ यज्ञ में भी है। दश+अर्+ज्ञ याने दशराज्ञ यज्ञ है। दश याने दशेन्द्रियाँ, अर् याने साधना द्वारा प्रगट होना और ज्ञ याने उस प्रकार की साधना कर ज्ञान प्राप्त करना है। दशेन्द्रियों को साधना द्वारा अधिक सम्पन्न करते समय साधक की असुर वृत्तियाँ भी अधिक जोर कर उठती हैं। बुरी और अच्छी वृत्तियों में संघर्ष चलकर साधक अपनी श्रद्धा के कारण अपनी बुरी वृत्तियों पर विजय पाता है। साधक की इसी विजय को देवासुर युद्ध में पायी गयी विजयादशमी कहते हैं जो हर वैदिक हर साल समारोह के साथ सम्पन्न करता है। इसी दिन पर राम रावण को मारते हैं। इसी दिन पर वीर अर्जुन अपने शमी पेड़ पर रखे हुए शस्त्र निकालकर कुवृत्तिरूप कौरवों पर विजय प्राप्त करते हैं। इसीलिए अर्जुन को विजय कहा गया है। दाशराज्ञ यज्ञ यही है जिसका रूपकात्मक वर्णन ऋग्वेद में आया है। दशेन्द्रियों पर पूर्ण संयम का दिन याने विजयादशमी है।

इस प्रकार दाशराज्ञ यज्ञ का आध्यात्मिक स्वरूप न जानने के कारण पाश्चिमात्य विज्ञानों ने उस दाशराज्ञ यज्ञ में आर्य-अनार्यों का भीषण युद्ध खोज निकाला है। वे दाशराज्ञ यज्ञ में सहस्त्रावधि अनार्यों का संहार देखते

हैं जिसमें कि एक पक्ष में पन्द्रह आर्य-जनों के गुट हैं और दूसरे पक्ष में पचीस अनार्य जनों के गुट बताये हैं। एक पक्ष में केवल पन्द्रह आर्य गुट और दूसरे पक्ष में केवल पचीस अनार्य मारे जाते हैं। क्या इस प्रकार के अत्यन्त छोटे संघर्ष को भीषण युद्ध कहा जायेगा? और क्या इस अत्यन्त लघु झटपट द्वारा हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि बाहर से आये हुए आर्यों ने इस भारत में रहने वाले अनार्यों का भीषण संहार किया? इस प्रकार के ऐतिहासिक निष्कर्ष निकालने के लिए अन्वेषक के मन में कुछ कल्पनाएँ पहिले से ही गृहित रखी जाती हैं, यह इसका कारण है। वास्तव में दाशराज्ञ यज्ञ में जो आर्य हैं वे कोई बाहरी आर्यजन रहकर साधक के अन्त:करण में स्थित आर्य याने सद्वृत्तियाँ हैं और अनार्य याने उसी अन्त:करण की बुरी हठेली वृत्तियाँ हैं जिसमें यह संघर्ष सदा चलता है। पन्द्रह आर्य गुट याने दशेन्द्रियाँ और पंचकरण वृत्तियाँ हैं और पचीस अनार्य गुट याने दशेन्द्रियाँ पँच तन्मात्रा, पँच मूलतत्व और उसपर पँचकरण वृत्तियाँ हैं जो कि साधक की आर्य-वृत्तियों को सदा नष्ट करने के लिए तत्पर रहती हैं। दाशराज्ञ यज्ञ में इन्हीं आर्य और अनार्यों का युद्ध होकर आर्य-वृत्तियों ने अपने शत्रुरूप अनार्य-वृत्तियों का संहार किया है। वेद-वर्णित, रामायण महाभारत वर्णित सारे देवासुर युद्ध साधना में रत साधक की अच्छी बुरी वृत्तियों का संघर्ष है न कि प्रत्यक्ष ऐतिहासिक युद्ध है।

यह सत्य न जानकर पश्चिमात्य विद्वान कुछ अंटसंट अन्वेषण करते हैं और उनके अन्वेषणों को जैसे तैसे मानकर हमारे विद्वान उन झूठ कल्पनाओं को सिद्धान्त बनाकर भारत में आर्य-अनार्य का झगड़ा पैदा करना चाहते हैं। तामिलनाडु के लोग स्वयं को बेकार के अनार्य मानकर उत्तर भारतीय लोगों को आर्य मानते हैं और इस झूठे सिद्धान्तों को लेकर भारत से विलग होना चाहते हैं। राम इसी प्रकार आर्य और रावण इसी प्रकार अनार्य माने गये हैं जो सभी मूर्ख कल्पनाएं हैं। वेद उपनिषद और रामाण महाभारत ग्रंथों में जो कथाएँ वर्णित की हैं वे ऐतिहासिक आलेख न होकर आध्यात्मिक रूपकात्मक कथाएँ हैं। यह ध्यान में आने से उन महान ग्रन्थों में वर्णित कथाओं पर गलत सिद्धान्त निकाले जाते हैं और उन गलत सिद्धान्तों पर आधारित कुछ ऐतिहासिक गोष्ठियाँ स्वीकार की जाती हैं जिनके कारण एक संघ भारतीय समाज में फूट के बीज बोये जाते हैं। यह सब विघटनात्मक कल्पनाएँ हमें अब दूर करनी होंगी और इसलिए इन महान ग्रंथों का सही आशय जनता के सन्मुख रखना पड़ेगा। लेखक वही आवश्यक कार्य कर रहा है।

जो साधक साधना में प्रगति करता है और सद्गुणयुक्त बनता है उसे सुर कहा जाता है। इन गुणों के विरोध में जो हैं वे असुर हैं। जो साधक अपनी प्रगति कर अपने को आगे बढ़ाता है उसे आर्य कहा गया है। अर् याने आगे बढ़ना। जो आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर पाता है उसे अनार्य कहा जाता है। आर्य अनार्य कोई वंश अथवा देश-समाज नहीं है। हर देश में और हर मानव-समाज में सुर-असुर और आर्य-अनार्य हैं। आज जिसे आर्य बड़ा माना जाता है उसे आर्य छोड़कर अन्य नाम दिया जाय जिससे कि आर्य-अनार्यवाद मिट सकता है।

देवासुर युद्ध में कैकेया ने सक्रिय काम किया था इस कथा द्वारा हमारे विद्वान आर्य-स्त्रियाँ अपने पति के साथ युद्ध में भी शरीक होती थीं, यह सिद्धान्त निकालकर धन्य मानते हैं। विश्व के हर समाज में सूरवीर महिलाएँ उत्पन्न हुई हैं। फिर वह समाज कथित आर्य या अनार्य क्यों न हो। कैकेया ही पति के साथ युद्ध करने जाती है और द्रौपदी भी पांडव-पति के साथ युद्ध-क्षेत्र पर जाती है। क्या वह अनार्य पत्नियाँ थीं? सुरासुर युद्ध, राम-रावण युद्ध और महाभारत युद्ध साधना-क्षेत्र के दिव्य युद्ध हैं—यह समझ लेने पर केवल कैकेया अथवा द्रौपदी ही युद्ध-क्षेत्र पर जाकर अपने पति को किस प्रकार सहायता करती हैं, यह ध्यान में आना कठिन न होगा। रामायण महाभारत अद्वितीय ग्रंथ है जिसका गर्व हरएक मानव को करना चाहिए। कारण वह अखिल मानव-समाज के लिए आदर्श ग्रंथ है।

राम का बड़प्पन :

कैकेया को दिये हुए वरों का पालन करना दशरथ-वृत्ति की शक्ति के बाहर की बात थी। कारण कि वन में जाकर तपस्या करना और उसमें आनन्द मानना दशेन्द्रिय लोलुप दशरथ की ताकत के बाहर की बात थी। शहराती चैन-सुखों में पली हुई दशरथ-वृत्ति वन में जाकर तपस्या करने में क्या राम याने आनन्द ले सकती है? इसलिए दशरथ अपने दिये हुए वचनों के अनुसार चलना आवश्यक नहीं समझते थे। सामाजिक नीति के अनुसार इस प्रकार दिये हुए वचनों का पालन नहीं करना ठीक नहीं है। राम यह अधःपतन देखते हैं और अपने पिता-वृत्ति की भलाई के लिए अपने पिता की इच्छा के खिलाफ दिये हुए वचन-पालन करने के लिए स्वयं वनवास की तैयारी करते हैं। वैदिक परम्परा में सामाजिक नीति-मूल्यों को अधिक स्थान दिया जाता है न कि केवल व्यक्तिगत स्वार्थ। शास्त्रकार इसीलिए कहते हैं—

त्यजेत् एकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिविम् त्यजेत् ॥

एक के त्यागमय जीवन से सारा समाज यदि अपने आदर्शों पर स्थित रहता है, सुखी रह सकता है तो समाज के लिए व्यक्ति अपना होम अवश्य करे। भगवान राम सामाजिक नीति के लिए स्वयं को जीवन तक जलाते हैं। रामायण पढ़ने और सुनने वाले भगवान राम का यह दिव्य आदर्श कितना रख सकते हैं, यह प्रश्न है। सारा संसार यह जाने कि कुल की प्रतिष्ठा के लिए राम अपना होम करते हैं।

रामायण में प्रसंगों का वर्णन करते समय थोड़ा अतिशय रस का सहारा लेते हैं। राम को वनवास में भेजने की वात निकलने पर दशरथ बेहोश होते हैं, ऐसा रामायण में वर्णन किया है। क्या वह पिता या आदमी है जिसके पुत्र को वनवास भेजने की केवल वात निकालने पर जो बेहोश हो जाता है? राम की वनवास-वार्ता सुनकर दशरथ बेहोश हो जाते हैं, 'नष्टा च मम चेतना।' इसलिए इस वेहोसी का आशय अन्य होना चाहिए जो कि हमारे पाठक जानते हैं। इस संभ्रमात्मक अवस्था से राम ही कुछ धर्म-मार्ग पर निकालेंगे, इस इच्छा से दशरथ राम की ओर देखते हैं, 'रामं द्रष्टुमिच्छामि धार्मिकम् ?' राम को बुलाया जाता है और कैकेया राम को सब हाल सुनाती है। पिता को कथित दुःख देकर भी राम पिता की आध्यात्मिक भलाई के लिए वनवास जाना स्वीकारते हैं जिसके कारण दशरथ की मृत्यु भी हो सकती है, यह राम जानते हैं। राम अपना कर्तव्य जानते हैं इसीलिए राम भाई लक्ष्मण को कहते हैं, 'लक्ष्मण भावना से कर्तव्य श्रेष्ठ है।' समाजधारणा के लिए इस प्रकार की कर्तव्य भावना की वहुत आवश्यकता है जो कि रामायण की नींव है। भावना से कर्तव्य श्रेष्ठ है।

राम की वनवास की तैयारी :

पिता की मरणासन्न अवस्था देखकर भी राम साधक वन में जाना निश्चित करते हैं। राम-पत्नी सीता यह वार्ता सुनकर दौड़कर आती है। क्या पति वनवास में जाय और पत्नी सुखलोलूप वनकर ऐश आराम करेगी? आर्य स्त्री ऐसा कभी नहीं करेगी। जीवात्मा राम तपस्या करने के लिए वनवास जायेगी और पत्नी सीता याने वृत्तिकाया क्या महलों में चैन करेगी? राम के पश्चात सीता अयोध्या अकेली अयोध्या के राजा भरत के आधीन नहीं रहना चाहती है। सीता कहती है—

'यथ मामेवम ब्यागां वनं चैव नयिष्यसे ।
विषमद्यैव पाश्यामि मा वशं द्विषतां गमम् ॥२।३०।१६॥

सीता कहती है, 'पतिदेव आप मुझे वन में नहीं ले जाते हैं तो मैं अयोध्या में भरत के आधीन नहीं रहना चाहती हूँ। इससे मैं विषपान कर मरना अधिक पसन्द करती हूँ।'

सीता :

ऊपर निर्दिष्ट वाक्य में रामायणकार ने स्त्री की अपने पति के प्रति जो वृत्ति रहनी चाहिए उसका सुन्दर वर्णन किया है। पत्नी की पति के प्रति धारणा और त्याग की वृत्ति मानवीय संस्कारों की उच्चतम अवस्था है। उत्तम स्त्री अपने पति के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानती है। संकटकाल ग्रस्त पति को छोड़कर कोई भी स्त्री सुख में रहने के लिए उसका त्याग नहीं करेगी। अपने ऊपर अन्य पुरुष प्रेम करे, वह उत्तम अवस्था का, अधिकार का, गुणवान एवं कलावान भी रहे परन्तु अपना निम्न अवस्था का पति उच्च संस्कार युक्त पत्नी कभी नहीं छोड़ेगी। रावण राम से अधिक गुणवान, सत्तावान, पण्डित, शूरवीर और सीता पर प्रेम करने वाला दिखाया है परन्तु सीता अपनी निष्ठा राम से नहीं हटाती है। राम अकेला वनवास में जा सकते थे जैसे कोई पुरुष जेल में जाकर बन्दी वास का समय काटता है, परन्तु सीता राम के विना एक क्षण नहीं रह सकती है। सीता का आदर्श सारी दुनिया की स्त्री-जाति के लिए आदर्श जीवन है। सीता-वृत्ति अपने वारेण्यं पतिवृत्ति के साथ वनवास भी स्वीकारना अधिक पसन्द करती है बनिस्पत भरत-वृत्ति का स्वीकार करने। इसपर गीता स्पष्ट रूपेण कहती है—

श्रेयान स्वधर्मो विगुणः परधर्मात स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्वेसः परधर्मो भयावहः ॥अध्याय १८, श्लोक ४७॥

अपने अपने धर्मसंस्कार के अनुसार साधक-काया सीता चले, अन्य धर्म यद्यपि कितने भी ऊँचे रहें साधक-वृत्ति के लिए त्याज्य है। अपने ही पिंडधर्म के अनुसार साधना करते करते मृत्यु भी यदि आ जाय तो भी साधक अपना पिंडधर्म न छोड़े। कारण कि मृत्यु के पश्चात वह साधक अच्छी काया लेकर पुनः अपनी साधना शुरू कर अपनी आध्यात्मिक प्रगति कर सकता है। अध्याय ६ के ४०, ४१ श्लोक में कहा है—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

अपनी वृत्ति के अनुसार अध्यात्म साधना करने से मृत्यु के पश्चात वह साधक अच्छे कुल में जन्म लेकर अपनी साधना उसके आगे शुरू करता है। सीता के लिए साधना में केवल आनन्द मानने वाले राम का अस्तित्व उसके पति जैसा था। सीता का राम से इसीलिए विवाह हुआ दिखाया है। भरत याने वैराग्य, आनन्द से भी बढ़कर त्याग वृत्ति ! सीता वह भरतरूप वैराग्य और त्यागवृत्ति का अब कैसे स्वीकार कर सकती है। वह रामवृत्ति से ही प्रामाणिक रहे, यही उसके लिए धर्म और श्रेयस्कर था। इसलिए सीता राम के साथ वनवास में जाकर वहाँ पर भी अपने पतिरूप राम आनन्द के साथ सुखी रहती है। सीता के द्वारा रामायणकार स्त्रीजाति के सन्मुख एक उच्च आदर्श अवश्य रखते हैं परन्तु साथ साथ साधना में पालन किये जाने वाले स्वधर्म का आचरण कैसा किया जाय, यह भी बड़ी सुन्दरता से दिखाते हैं। रामायण की सुन्दरता गहन आशयों में अधिक है।

लक्ष्मण :

इसके पूर्व अध्याय में लक्ष्मण कौन यह हमने देखा है। फिर से लक्ष्मण की स्मृति पक्की करने के लिए लक्ष्मण के बारे में दुबारा लिखा जा रहा है। लेखक पर यह आरोप आ सकता है कि वह वही बात फिर से लिखता है परन्तु यह पुस्तक सामान्य जनों के लिए लिखी जा रही है और सामान्य जन वही ज्ञात एक दो बात लिखने के पश्चात् ध्यान में रख सकते हैं इसलिए लक्ष्मण-चरित्र को पुनः एक बार पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। लक्ष्मण याने अपने ध्येय की ओर आगे बढ़ने वाली साधक की विवेक बुद्धि है। 'लक्ष्य' याने ध्येय और 'अम्' याने स्पन्दन करना अथवा आगे बढ़ना। इसलिए लक्ष्मण-चरित्र द्वारा रामायणकार पाठकों के सन्मुख एक अति संयमशील और विवेकपूर्ण साधक-वृत्ति रखना चाहते हैं। राम और लक्ष्मण वनवास में जाते हैं। राम अपने साथ अपनी स्वानुभूति रूप सीता को ले जाते हैं। परन्तु लक्ष्मण अपनी पत्नी को तपस्या वन में नहीं ले जाते हैं। राम सीता चौदह साल खाते हैं, पीते हैं, पति-पत्नि का आनन्द लेते हैं और सोते भी हैं परन्तु लक्ष्मण इन सब बातों से दूर रहता है और वह भी स्वयं जान-बूझकर ! चौदह साल लक्ष्मण

भैया नहीं सोते हैं। चौदह साल की कड़ी तपस्या !! ठीक ही है विवेक यदि सोये तो साधक राम तपस्या कैसे करेगा ? साधक का विवेक दिन-रात जागृत रहे, यही लक्ष्मण-चरित्र द्वारा रामायणकार बताते हैं। राम तपस्या करने वन में नहीं जा सकते हैं जबतक लक्ष्मण रूप विवेक राम के साथ न हो, इसलिए लक्ष्मण भी राम के साथ दण्डकारण्य में जाने के लिए सिद्ध हो जाते हैं।

अब दण्डकारण्य में राम, सीता और लक्ष्मण जाने के लिए सिद्ध होते हैं। तस्पया करने जाना है इसलिए स्वयं राम चीराजीन याने वल्कल मँगवाकर पहनते हैं। राम को देखकर सीता और लक्ष्मण भी वल्कल चीराजीन पहनते हैं। कैकेया की वैसी इच्छा थी 'चीराजीन धरो धीरो रामो भवतु तापसः'। जाने के पूर्व वह तीनों माता कौसल्या और पिता दशरथ से आखिरी भेंट करने जाते हैं। वन में जाते समय राम लक्ष्मण से कहते हैं कि जो दैव में होगा उसके लिए साधक को आगे जाकर जो भी हो वह स्वीकारना चाहिए। 'दैवं हि तया प्रभावम् ।।' २।२३।३८। परंतु पुरुषार्थी लक्ष्मण राम की यह दैवाधीनता नहीं मानते हैं। लक्ष्मण कहते हैं—

'विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते।
वीराः संभावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ।। २।२३।१६ ।।'
दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रवाधितुम्।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ।। ३।२३।१६ ।।'

लक्ष्मण कहते हैं, 'जो कायर है, जिसमें पराक्रम नहीं है, वही दैव का भरोसा करता है। सारा संसार जिन्हें आदर से देखता है, ऐसे शक्तिशाली पुरुष कभी भी दैव की उपासना कर परावलंबी नहीं रहते। वे अपना मार्ग अपने उत्तम कर्मों द्वारा निकाल लेते हैं। दैव पुरुष के लिए है न कि पुरुष दैव के लिए। पराक्रमी पुरुष दैव के आधीन कभी नहीं होता।' लक्ष्मण के यह आर्य-वचन सारे संसार के मानवों के लिए आदर्श अनुकरणीय है। ऐसा पराक्रमी पुरुपार्थी लक्ष्मण विवेक-वृत्ति साधक राम के साथ दण्डकारण्य में अवश्य जाना चाहिए तभी राम साधना में अग्रसर बन रावण रूप दुर्वृत्तियों को मार सकते हैं।

राजा दशरथ से भेंट करने जाते समय पिता दशरथ राम की वनवास की तैयारी देखकर अधिक शोक करते हैं। और राम वनवास में न जायँ इसलिए राम को कई प्रकार से समझाते हैं। दशरथ राम को विह्वल होकर कहते हैं—

'अहं राघव कैकेया वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम् ।। २।३४।२६ ।।'

दशरथ कहते हैं, 'केकयी को दिये गये वरदान द्वारा मैं मोह लिया गया हूँ। तुम मुझे बंदीवान बनाकर स्वयं अयोध्या का राजा बन जाओ।' किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति की इसी प्रकार अवस्था होती है। श्रीमद्भगद्गीता इसका वर्णन करती है—'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहितः।' राम किसी की नहीं मानता यह देखकर आखिर दशरथ राम, लक्ष्मण, सीता को अपने राज्य की सीमा तक रथ में पहुँचाने के लिए सुमंत्र को कहते हैं। 'सु' याने अच्छा, मन याने मन, और 'त्र' याने रक्षा करना। साधक के मन की मजबूत धारणा अवस्था याने सुमंत्र है जो कि अयोध्या राज्य की मर्यादा तक राम को रथ द्वारा पहुँचा देती है।

औपवाह्यं रथं युक्ता त्वमायाहि हयोत्तमैः।
प्रापयेनं महाभागमितो जनपदात् परम्॥ २।१०।३९॥

अयोध्या राज्य तक राम के रथ का सारथी सुमंत्र रहता है। उपनिषद् इस सुमंत्र सारथी का वर्णन करते हैं 'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रगहमेव च॥' आशय यह कि आत्मा अपने रथ का मालिक है, शरीर यह रथ है, बुद्धि उस रथ का सारथी है और मन उस रथ को चलाने वाले घोड़ों का लगाम है। भगवान श्रीकृष्ण इसी प्रकार अर्जुन साधक के रथ का सारथ्य करते थे।

सारे पौरजन राम के रथ के पीछे दौड़ रहे थे कारण उनका प्रिय राम उन्हें छोड़कर वनवास में जा रहे थे। 'राम लौटो, वनवास में न जाओ' अयोध्या वासी कहते हैं, परन्तु कर्तव्य कठोर राम वनवास जाते हैं। सारी अयोध्या शोकसागर में डूबी थी। भयानक दृश्य था वह। ब्राह्मण भी राम के रथ के पीछे भाग रहे थे कारण राम उनकी दृष्टि से ब्राह्मण हितैषी थे। 'ब्राह्मस्यं कृत्स्नमेतत् त्वां ब्रह्मण्य मनुगच्छाति॥ २।४५।२१॥' राम रथ के पीछे दौड़नेवाले ब्राह्मण याने शुद्ध ब्रह्मवृत्ति है न कि कोई जातिवाचक ब्राह्मण लोग! परंतु इन्हीं कथित ब्राह्मण-वृत्ति के रावणादि को राम मारते हैं। राम का कार्य ही कथित ब्राह्मणों की हत्या करना था फिर वह पुरुष हो या स्त्री!

●

दण्डकारण्य में प्रवेश

चतुर्थ अध्याय

गुह राजा से भेंट :

इस तरह कौसल राज्य की परिसीमा पार कर राम, लक्ष्मण, सीता, सुमन्त्रसह शृंगवेरपुर की सीमा में आ पहुँचे। कौसल राज्य याने रामायणकार की भाषा में कुशलतापूर्वक कार्य करने की साधक की भूमिका है। शृंगवेरपुर याने पूर्व से भी अधिक 'वरम्' श्रेष्ठ 'शृंग' अवस्था है जो कि प्रगतिशील साधक साधना-काल में पाता है। इस राज्य का राजा गुह नामक निषाद था जो योगी निशा समय योग-साधना कर अपनी साधना कुछ बढ़ाता है और उस द्वारा समाज को कुछ देता है उसे निषा+द याने निषाद कहा है। निशा याने रात्रि, और निषाद याने रात्रि में अच्छे कर्मों को देने वाला गुह राजा है। इसका नाम गुह क्यों रखा है? गुह याने गुहा या गुंफा है। यह गुहा या गुंफा हरएक योग साधक में सुषुम्ना नाम नाड़ी द्वारा प्रकट होती है। शिवधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर राम अपनी कायावृत्ति सीता का स्वयंवर करते हैं इसलिए उसी शिवधनुष याने मेरूदण्ड में स्थित सुषुम्ना के निषाद याने काले राज्य में आ पहुँचना राम-साधक के लिए अब आवश्यक है। सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करने के बाद योगी एक प्रकार के घने काले वातावरण का अनुभव करता है। यही गुह याने सुषुम्ना निषाद राज्य है।

राम को साधना गतिरूप रथ का सारथ्य सुमन्त करते हैं। यह जानकर कि राम अपने निषाद राज्य में प्रवेश कर रहे हैं, राजा गुह बहुत संतुष्ट हुआ और उसने राम राजा के स्वागत की जोरदार तैयारियाँ शुरू कीं। इस गुह के बारे में वेदों में निम्न प्रकार वर्णन आया है—

'अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञं वषट्कारस्त्व विष्णुः पुरुषः परः॥'

आशय यह कि साधना-क्षेत्र की परे अवस्था में जो महान विश्व है उस महान विश्व का द्वार गुहा याने सुषुम्ना है जो कि निशा के समय योगियों द्वारा सिद्ध किया जाता है। सारी दुनिया सोती है तब योगी रात्रि के समय अपनी साधना करते हैं। गीता कहती है, 'या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।'

इसी गुह को भगवान राम नौका द्वारा गंगा पार कराने के लिए कहते हैं। गंगा याने ज्ञान-गंगा। उसके पूर्व गुह राजा ने भगवान राम के रथ के अश्वों को घास आदि का प्रबन्ध किया। भगवान राम ने राजा गुह के उस आतिथ्य को स्वीकार किया। अश्वों के लिए घास, पानी याने प्राणायाम की तांत्रिक साधना है। अश्व याने श्वास विरहित अवस्था याने प्राणायाम तंत्र साधना है। उन अश्वों को घास, पानी याने प्राणायाम तंत्र की जानकारी है जो कि सुषुम्ना द्वारा याने गुह द्वारा भगवान रामरूप योग साधक पाते हैं। बात छोटी परन्तु उसका आशय बहुत महान है। रामायण के सारे लेखक की यह खूबी है कि अति सामान्य कथा से साधक योगशास्त्र का गहन आशय पा सकते हैं। इस प्रकार गुह द्वारा अश्वों के लिए घास, पानी पाकर राम एक रात गुह के निषाद राज्य में रहते हैं याने राम साधक एक रात गुह रूप सुषुम्ना में स्थिर होकर प्राणायाम का तंत्रज्ञान पाते हैं और दूसरे दिन प्रातःकाल में ज्ञान रूप गंगा पार कर वत्स देश में प्रवेश करते हैं। वत्स याने वात्सल्य अथवा प्रेम। यह वत्स देश धनधान्य से समृद्ध था। कौन-सा धनधान्य होगा यह? साधनाओं में पायी जाने वाली अनेक दिव्य अनुभूतियाँ!

मांस, सुरा इत्यादि का सेवन :

इस प्रकार ज्ञानगंगा पार करते समय उस जमाने के अनुसार सीता गंगा को प्रार्थना करती है और सीता गंगा माता से कहती है—

सुराघट सहस्त्रेण मांस भूतोदनेन च।
यक्षे त्वां प्रीयता देवी पुरीं पुनरूपागता ॥ १।५२।८९ ॥

'हे देवी अध्योया वापस आते समय में तुझे हजार सुरा घटों से और मासान्न से पूजा अर्पण करूँगी।' जिसका जो खाद्यान्न होगा वही वह अपनी पूजा व्यक्ति अथवा स्थानों को अर्पण करता है। प्रत्यक्ष राम अयोध्या काण्ड में सर्ग १०३ के श्लोक ३० में इसी प्रकार कहते हैं—

'इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो भवति तदान्नास्तस्य देवताः ॥'

राजा दशरथ की मृत्युनंतर राम स्वतः जो नित्य भोजन करते थे वहीं वे अपने मृत पिता को पिंडरूप से अर्पण करते हैं। उस समय राम का आहार कंदमूल फल का था इसीलिए राम अपने पितरों को वहीं अर्पण करते हैं। परन्तु अन्य स्थानों पर राम, लक्ष्मण और सीता भी मांस और मद्य का खानपान करते थे, इसके रामायण में अनेक उल्लेख हैं और कारण भी वैसा ही है। उस समय

के राजा लोग और क्षत्रीय भोजन में मांस और सुरापान करते थे। राम, लक्ष्मण, सीता को रामायणकार अपनी कथा में क्षत्रीय बताते हैं इसीलिए कथा के अनुसार राम-सीता को मद्यमांस का ग्रहण करते हुए दिखाना उन्हें आवश्यक है। क्षत्रीय मांस खाते हैं इसलिए राम, सीता भी मांस खाते हुए दिखना ठीक है. परन्तु उन्हें मद्यपान करते हुए दिखाना एक आदर्श इस नाते ठीक नहीं है।

और एक बात ध्यान में रखी जाय। साधक, फिर किसी भी जात, पंथ अथवा मजहब का हो, साधना की चरम अवस्था में रहते समय मांस और मद्य का बिलकुल सेवन नहीं कर सकता है। मांस मद्य वह खा ही नहीं सकता है। उस प्रकार के खाद्यान्न से उसे घृणा उत्पन्न हो जाती है। इसके कइ उदाहरण दिये जा सकते हैं। कबीर मुसलमान थे परन्तु उनका आहार सच्चे ब्राह्मण जैसा रहता था। योगी अरविन्द क्षत्रीय थे परन्तु उनका आहार सात्विक रहा करता था। रामायण में स्वयं भरत का वाक्य इस बारे में अधिक ज्ञानदेही है। देखिये ॥२।८८।२६॥

'अद्य प्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषुवा।
फल मूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन् ॥ २।८८।२६ ॥'

'आज से मैं पृथ्वी पर अथवा तिनकों पर ही सोऊँगा, फलमूल का ही सेवन करूँगा और सदा वल्कल वस्त्र तथा जटा धारण किये रहूँगा।' राम, लक्ष्मण, सीता साधकों के परम दैवत माने जाते हैं इसलिए उनका खान-पान मद्य-मांस का दिखाना साधनाशास्त्र के विरोध में अतएव आध्यात्मिक आदर्शों को छोड़ कर है। हर साधक, फिर वह किसी भी जाति अथवा खानपान का हो, साधना में प्रगत रहने पर मांस-मद्य का अपने आप त्याग करता है। वह ब्रह्म जानकर ब्राह्मण बनता है इसीलिए शास्त्रों में ऐसे ब्राह्मणों को मद्य-मांस का सेवन नहीं करना चाहिए, ऐसा कहा है। मानवों के दाँत, पेट की आतों की लम्बाई मांसाहार के अनुकूल नहीं है। क्रम विकास द्वारा मानव-शरीर इस उच्च निरामिष अवस्था में उत्क्रान्त हुआ है। इसलिए उत्क्रान्त मानव शरीर को मद्यमांसादि का सेवन नहीं करना चाहिए। मानव शाकाहारी है और वह रहे। जिसे पूर्णत्व पाना है उसका खान-पान मद्य-मांस नहीं रह सकता है।

खानपान का शास्त्रीय विचार वैदिक परम्परा में जितना किया है उतना अन्य मजहबों में नहीं किया है। वैदिक परम्परा में खानपान का यह विज्ञान जैन मत द्वारा प्राप्त हुआ है। यह जैन मत का वैदिक परम्परा पर महत्वपूर्ण ऋण है जो कि उत्क्रान्त शास्त्र को लेकर है। मानव जिस बन्दरों द्वारा उत्क्रान्त हुआ है वे सब वानर योनियाँ केवल शाकाहारी थीं और आज

भी हैं। उत्क्रान्त जीवयोनियों का आहार निरामिष रहता है जिस उत्क्रान्त योनियों की चरम चोटी पर मानव है। इसलिए मानव का आहार निरामिष ही रहना चाहिए। मानव का मांसाहार और मद्य प्राशन उसके बहुत पूर्व मांसाहारी योनियों की गलत नक्ल और बुद्धि है। जंगली मानव ने परवश होकर सहजता से पाया जाने वाला मांसाहार शुरू किया होगा। वह आहार आसानी के कारण उन जंगली मानवों को अच्छा लगा। जंगली मानव मांसाहार के संस्कारों के कारण तदन्तर काल में मांसाहारी बना जो संस्कार आज का उन्नत मानव अपने जिह्वा लौल्य के कारण बड़ी चाव से स्वीकारता है। परन्तु मानव के लिए मांसाहार अनुत्क्रान्त दशा का परिचायक है। मांसाहारी मानव अध्यात्म में कभी भी प्रगत नहीं बन सकता, यह सत्य है, फिर यह सत्य कोई माने या न माने!

वैदिक परम्परा ने यह सत्य जाना था इसलिए चातुर्वर्ण्य समाज-व्यवस्था में ब्रह्म जानने वाले ब्राह्मणों को मांसाहार वर्ज्य किया था, परंतु वैदिक परम्परा का यह आध्यात्मिक ज्ञान और उत्क्रान्त दशा मानव-उन्नति की चरम अवस्था तक ले जाने वाले जैनमत ने अपने मतावलंबी जैनों के लिए सर्व समाज में ही मांसाहार वर्ज्य किया है। जैनमत का यह यत्न वैदिक परम्परा के सर्व साधारण वर्ण व्यवस्था से भी अधिक उच्च, व्यापक और साहसी था इसमें सन्देह नहीं है। अखिल मानव समाज के लिए खानपान का यह जैनमत निःसंदेह आदर्श है। राम का खानपान का आदर्श इस दृष्टि से गौण पक्ष का है, मानना ही पड़ेगा।

राम लक्ष्मण और सीता के मद्यमांस भक्षण के कुछ उदाहरण और भी देखा जाय। राम-लक्ष्मण कई पशुओं की हत्या कर मांस खाते हैं—

"तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान् वराहमृश्यं पृषतं महारूरूम्।
आक्षय मेध्यं त्वरितं बुभुक्षितौ वासायकाले ययतुर्वनस्पतिम् ॥२।५२।१०२॥'

मृग, वराह याने सूअर एवं महारूरू याने रोही इत्यादि प्राणियों की हत्या राम-लक्ष्मण खाद्य के लिए नित्य करते हैं। तपस्या लीन साधक इस प्रकार मांसाहार नहीं करता। 'एणेयं मांस माहृत्य' ॥२।५६।२२॥' एणेय की हत्या माँस के लिए की है। एक स्थान पर तो कृष्ण मृग को पूरा भुंना गया और उसका रुचिकर मांस खाया गया है—'अयं सर्वः समस्तांगः श्रुतः कृष्णमृगो मया ॥२।५६।२८॥' परंतु तापसियों का यह अन्न कदापि नहीं रह सकता है। राजा भरत राम से भेंट करने के लिए दक्षिण में आते हैं उस समय

गुह राजा भरत का भी मद्यमांस से स्वागत करता है परन्तु तपस्यालीन भरत गुह राजा का वह मद्यमांस आतिथ्य नहीं स्वीकार करते हैं—

'इत्यक्तोपायानं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च।
अभिचक्राम भरतं निषादाधिपति गुंहः ॥१।८४।१०॥'

कारण तापसी जीवन स्वीकार करने के कारण अब भरत ब्राह्मण बन गये थे। इसलिए अब ब्राह्मण जीवन जीने के लिए मद्यमांस का त्याग भरत करते हैं—'अद्यप्रभृति भूमौ तुशयिष्येऽहंतृणेषु वा। फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन॥ भरत को चित्रित करते समय वही वाल्मीकिजी उनको तापसी जैसा वर्णन करते हैं परन्तु राम के समय वही वाल्मीकिजी तापसी का आदर्श-जीवन नहीं दिखाते हैं। इसका कारण फिर से यही हो सकता है कि राम को उन्होंने मर्यादा पुरूषोत्तम दिखाया है।

सीता भी मद्यमांस भक्षण के बारे में रामलक्ष्मण के पीछे नहीं थीं। कालिंदी नदी पार करते समय सीता कालिंदी माता से प्रार्थना कर कहती हैं, ॥२।५५।२०॥—यक्ष्ये त्वां गोसहस्त्रेण सुराघटशतेन च। स्वस्ति प्रत्यागते रामे पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम्॥ इस श्लोक में गो और सुराघटों का स्पष्ट उल्लेख है जिस द्वारा सीता कालिंदी की पूजा-बांधना चाहती है। याने सहस्त्र सुराघटों के साथ सीता सहस्त्र गौ को भी तर्पण करती है। एकाध धूर्त व्यक्ति इस वचन से यह कह सकता है कि रामायणकाल में गोहत्या होती थी। अपने जमाने की रीति को लेकर ही लेखक अपनी ग्रन्थरचना करता है इसलिए रामायणकाल में गोमांस खाते थे इस प्रकार का आशय यदि कोई निकालना चाहे तो निकाल सकता है। उसी प्रकार राम अगस्ति आश्रम में जाते हैं उस समय राम का स्वागत करने के लिए अगस्ति महर्षि एक गौ-बछड़े को मार कर उसके मांस को राम, लक्ष्मण, सीता को परोसते हैं, ऐसा लिखा है। यह स्पष्टतया उस जमाने के भोजन खाद्यरीति का उल्लेख जाना जा सकता है। परंतु रामायण का आध्यात्मिक आशय इससे एकदम भिन्न है। गौ का आशय इन्द्रियाँ लेने पर गोमांस भोजन याने इन्द्रियां को संयम कर उस द्वारा प्राप्त उच्च आचार-विचारों का भोजन है न कि मांसाहार! सीता कालिंदी याने सुषुम्ना को अपनी इन्द्रियों द्वारा किये जानेवाली तपस्या का सहस्त्रगुण गोमांस और सुरापान करवाना चाहती है यह उस वाक्य का आध्यात्मिक आशय मानना चाहिए। मृग याने मन की चञ्चलता, गौ याने इन्द्रियों का शक्ति सामर्थ्य और सुरा याने शरीर और

मन की चेतना जिसे राम, लक्ष्मण, सीता अर्पण करना चाहते हैं। रामायणकार स्पष्ट लिखते हैं कि यह सब हिंसा वे लोकहितार्थ के लिए करते हैं। मांसाशन और सुरापान कौन-से लोकहित के लिए किया जाता है ? इसलिए राम, लक्ष्मण, सीता का मांसाशन और सुरापान आध्यात्मिक आदर्श के लिए ही है, यह इन श्लोकों का स्पष्ट आशय है।

श्रवणकुमार कथा

तदन्तरकाल में रामलक्ष्मण वाल्मीकि आश्रम के पास चित्रकूट पर एक आश्रम कुटिया बांध कर रहते हैं। इधर राम, लक्ष्मण, सीता को अयोध्या राज्य सीमा को पार कर सुमन्तु अयोध्या वापस जाते हैं और वह राजा दशरथ को राम, लक्ष्मण, सीता का सारा हाल सुनाते हैं। राम, लक्ष्मण, सीता का कष्टमय जीवन सुनकर दशरथ अति दुःखित होते हैं। अपने इस पुत्रवियोग दुःख का असली कारण अब दशरथ सबको बताते हैं। अपने काम के लिए आवश्यक उतने श्लोक अयोध्या काण्ड, सर्ग ६४, श्लोक १४ से ५५ तक देखेंगे उस समय दशरथ युवराज थे। उनका कौसल्या से विवाह होने वाला था याने अपने आध्यात्मिक आशय से साधक दशरथ में साधना की कुशलता उस समय उतनी नहीं थी जितनी कि तदन्तर काल में प्राप्त हुई थी। दशरथ कहते हैं—

भगवंश्चापहस्तोऽहं सरयूतीरमागतः।
जिघांसुः श्वापदं किंचिन्निपाने चागतं गजम् ॥१।६४।१४॥
ततः श्रुतो मयाशब्दो जले कुम्भस्य पूर्यतः।
द्विपोऽयमिति मत्वाहं बाणेनाभिहतो मया ॥२।६४।१५॥
गत्वा नद्यास्त तस्तीरमपश्यमिषुणा हृदि।
विनिर्भिन्नं गतप्राणं शयानं भुवि तापसम् ॥२।६४।१६॥
त्वयापि च यदज्ञानान्निहतो मे स बालकः।
तेन त्वामपि शप्स्येऽहं सुदुःखमतिदारूणम् ॥५३॥
पुत्र व्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साप्रतम्।
एवं त्व पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ॥२।६४।५४॥
अज्ञानास्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः।
तस्मात्वां नाविशेत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप ॥२।६४।५५॥

आशय यह है। उस समय दशरथ युवराज याने अविवाहित था। युवराज दशरथ शिकार करने रात को जाता है। एक नदी के किनारे उसने अपना

डेरा एक पेड़ के नीचे लगाया था। दशरथ को पशुहत्या करनी थी। कौन-सा पशु था यह ? पुरुष सूक्त में कहा है—

'सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधं कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवघ्नः पुरुषं पशुम् ॥' पुरुषसूक्त १५॥

आशय यह कि साधक में जो पशुभाव है उसका वध करना चाहिए न कि प्रत्यक्ष गरीब जानवरों का ! युवराज दशरथ इसी प्रकार अपने पशुभाव का वध करने जाता है। यह पशुभाव साधक रात को ही करता है। कारण योगी रात को अपनी साधना करता है। गीता कहती है—'या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमि।' साधना करने के पश्चात ही साधक का पशुभाव नष्ट हो सकता है। इसलिए दशरथ रात्रि को पशुवध करने जाता है। नदी याने ज्ञान गंगा। इस ज्ञान गंगा के किनारे पर युवराज दशरथ रात को साधना कर अपने अन्दर के पशुभाव नष्ट करता है। पशु देखकर दशरथ ने अपना तीर चलाया। कौन-सा तीर और कहाँ चलया ? उपनिषद कहते हैं 'प्रणवो धनुः शरोः आत्मा ब्रह्मतल्लक्षम् उच्यते।' आत्मसाधना यह कमान है, आत्मा यह तीर है और वह तीर ब्रह्म में मारना है। ब्रह्म पर तीर मारने के लिए साधक दशरथ को प्रथम अपने पशुभाव नष्ट करने पड़ते हैं इसलिए दशरथ साधक रात के समय पशु समझ कर अपना तीर चलाते हैं। परन्तु बाहरी पशु मारने के बजाय दशरथ का तीर अपने में स्थित ब्राह्मण कुमार पर लगता है। इस ब्राह्मणकुमार का नाम था श्रवणकुमार !

श्रवण कुमार

इस प्रकार का श्रवणकुमार आरम्भ में हर साधक में स्थित रहता है। केवल कथा-श्रवण करने से ही अपने को आत्मज्ञान होगा यह प्रारम्भ में याने साधना की कुमार-अवस्था में हर आध्यात्मिक साधक की कल्पना रहती है। परन्तु आत्मज्ञान की यह कल्पना गलत है, इसका उल्लेख उपनिषद में स्पष्टतया मिलता है। 'नाममात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥' आत्मज्ञान केवल प्रवचन देने से अथवा प्रवचन-श्रवण करने से नहीं प्राप्त होगा। उसके लिए प्रत्यक्ष आत्मसाधनाएँ करनी पड़ती हैं। इस प्रकार आत्म-ज्ञान की प्राप्ति केवल श्रवण करने से ही मिलती है, यह कल्पना पशुभाव समान है। अनेक लोग इसी मूर्ख कल्पना से ब्रह्मज्ञान प्राप्त सत्यार्थ में ब्राह्मण बन सकते हैं, यह विचार मान लेते हैं इसलिए इस श्रवणकुमार को ब्राह्मणपुत्र बताया गया है। कितना सुन्दर रूपक है ? इस कथित ब्राह्मणकुमार को अपने

पशुभाव नष्ट करने की इच्छा से दशरथ अनजाने तीर चलाकर मारता है। यह ब्राह्मण श्रवण कुमार पशु समझ कर मारता है। राम याने आनन्द-प्राप्ति के हेतु साधक दशरथ को अपने में स्थित पशुभावरूप श्रवण कुमार को मारना ही चाहिए।

परन्तु यह रोमांचकारी सुन्दर कथा इतने में ही समाप्त नहीं होती है। उस श्रवण कुमार को वृद्ध माता पिता हैं जिनको रात्रिसमय ज्ञानरूप जल पिलाने के लिए श्रवण कुमार उसी ज्ञान गंगा के किनारे जल लेने के लिए आया था। ज्ञान जल रात्रि के समय ही पिया जाता है इसीलिए उसी समय श्रवण कुमार अपने वृद्ध मातापिता की ज्ञान-तृष्णा तृप्त करने के लिए कमंडल लेकर उस ज्ञान गंगा पर आता है। पानी भरने की आवाज आती है और पशु समझ कर दशरथ तीर चलाता है। दशरथ में स्थित पशु श्रवण कुमार मरता है। यह श्रवण कुमार अपने वृद्ध माता-पिता को काँवरी पर बैठाकर तीर्थ-क्षेत्रां पर ले जाने के लिए सदा घूमता है। मातापिता इस प्रकार उनके इकलौते पुत्र श्रवण कुमार के कंधे पर स्थित काँवरी में बैठकर तीर्थक्षेत्र आकर मानते थे कि उस द्वारा उनको आत्मज्ञान हो जायेगा। इसी प्रकार की भावना सब साधकों की रहती है कि तीरथ और क्षेत्र गये कि आत्मज्ञान हो जाता है। इस प्रकार की भावना रखकर श्रवण कुमार के वृत्तिरूप माता पिता अपनी सारी जिन्दगी बिताकर वृद्ध भी हो जाते हैं परन्तु तीरथ-क्षेत्र की झूठी अभिलाषा उनके मन से नहीं छूटती है। यही अवस्था सब साधकों की रहती है। वे वृद्ध होकर मरते दम तक तीरथ करते ही रहेंगे और उस द्वारा हमें ब्रह्म मिल गया, इस प्रकार की कल्पना कर उसमें मस्त रहेंगे। यह कल्पना भी साधक में स्थित पशुभाव है जो नष्ट होना आवश्यक है। एक कवि कहते हैं—

तीरथ को सब फिरे देवपूजा करे।
वासना ना मरे कैसेनि भव तरे ॥
काया धुवे पाक मन ही नहीं पाक।
सुखदुःख की आस लीजे चरणन तले ॥

श्रवण कुमार के माता-पिता प्यासे थे परन्तु उनको अपनी प्यास बुझाने के लिए जो जल चाहिए था वह केवल श्रवण द्वारा सुनी हुई जानकारी ही थी। इसीलिए उन्हें अज्ञानी याने अन्ध बताया है। वे सारा जीवन अज्ञान के कारण अन्धे हीं थे। अन्य ज्ञान जल की प्यास उन्हें नहीं लगी थी। इसलिए दशेन्द्रिय संयमी दशरथ के द्वारा दिया जाने वाला ज्ञान जल वे वृद्ध नहीं

लेना चाहते थे। दशरथ कमंडल में भरकर पानी ले जाता है उन अन्ध वृद्धों की प्यास बुझाने के लिए परन्तु उन वृद्ध माता-पिता को जल चाहिए था केवल श्रवणकुमार के द्वारा श्रवणकुमार याने केवल सुनकर ज्ञान प्राप्त हुआ, यह कल्पना साधक के चित्त से अब मर गयी थी परन्तु आदमी आदत का गुलाम होता है। केवल श्रवण द्वारा प्राप्त जानकारी को जो ज्ञान मानते हैं उन्हें दशेन्द्रिय संयम द्वारा प्राप्त ज्ञानजल कैसे प्रिय लगेगा। वृद्ध अपने पुत्र श्रवणकुमार का ही ज्ञानजल पीना चाहते थे। वे बिना ज्ञानजल मरना पसन्द करते हैं और दशरथ को शाप देकर मर जाते हैं। शाप इस प्रकार था। दशरथ ने जिस प्रकार उन दोनों अंध वृद्ध माता-पिता पर पुत्र-शोक द्वारा मृत्यु लाई उसी प्रकार दशरथ भी पुत्र-शोक करते-करते मर जायेगा। यह शाप-वाणी राम के वनवास जाने के बाद दशरथ के ध्यान में आयी। अब दशरथ का पुत्र रूप आनन्द याने राम के वियोग से मरने की बारी आयी थी।

भरत का राज्याभिषेक

रामरूप साधक अब वन में जाकर तपस्या द्वारा आनन्द प्राप्त करना चाहता है इस कारण केवल शरीर भाव के भोगों में आनन्द याने राम माननेवाले दशरथ की मृत्यु होना स्वाभाविक है। दशरथ राम-राम कहते हुए मरते हैं। अयोध्या नगरी अब राजाविहीन थी। अब राज्य कैसे चलाया जाय? सबों ने भरत को अयोध्या की राजगद्दी पर बैठाने का सोचा। गुरु वसिष्ठजी ने ही यह सलाह दी थी। भरत को उसके ननिहाल से बुलाया गया। शत्रुघ्न भी वहीं गया था। दोनों भाई अयोध्या आये तो अयोध्या को शोक-सागर में डूबी हुई देखा। पूछताछ करने पर सब हाल मालूम हुआ। भरत अपनी माता कैकेया की बहुत निन्दा करते हैं। वास्तव में राम अयोध्या के राजा बनें, यह विधिवत् था। कैकेया ने मन्थरा के कहने में पड़ कर राम को दण्डकारण्य में भेजा जिसके कारण पिता दशरथ की मृत्यु हुई। यह जान कर वे अपनी माता पर बहुत क्रोधित हुए और अयोध्या राज पर बैठने से इन्कार किया। भैया शत्रुघ्न ने मन्थरा की चाल देख कर उसे उसके बाल पकड़ कर घसीट कर मारना चाहा परन्तु भरत ने शत्रुघ्न को समझाया कि आर्यजन किसी स्त्री और ब्राह्मण की हत्या नहीं करते हैं। शत्रुघ्न ने भरत का कहना मान लिया। भाई राम से बगैर भेंट किये भरत अयोध्या की राजगद्दी पर बैठना नहीं चाहते हैं। कारण वास्तव में अयोध्या के राजा राम ही थे। छल कपट से भरत को अयोध्या का राजा बनाया

जाता है जिस बात को ज्ञानरूप और वैराग्यवृत्ति भरत मानने के लिए तैयार नहीं थे।

इस दृष्टि से भरत का आदर्श राम से भी उच्च है। मिला हुआ राज्य भरत स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। लोभ के वश में कौन नहीं होता है? परन्तु वैराग्यवृत्ति भरत इस प्रकार अन्याय और पाप का राज्य स्वीकार करना नहीं चाहते। इसी प्रकार की वैराग्यवृत्ति द्वन्द्वरहित अयोध्या राजा बने इसीलिए मन्थरा और कैकेया ने सब नाटक रचा था। परन्तु भरत की इच्छा राज्य करने की नहीं थी। भरत राजा जनक की जामात थे जो वैराग्यवृत्ति के आदर्श थे। भरत भैया राम से मिलने और उन्हें वापस लौटा कर अयोध्या का राज्य स्वीकार करने के लिए आग्रह करने जिस मार्ग से राम जाते हैं उसी तपस्यामय दण्डकारण्य में जाने के लिए निकलते हैं। उनके साथ अयोध्यापुरी के सब भद्रजन भी भगवान राम से मिलने जाते हैं। अयोध्या के राज्य पर ज्ञानवैराग्य याने भरत नहीं बैठना चाहते हैं कारण राज्य आनन्दरूप राम का था जो न मिलने से पिता दशरथ ने अपनी देह त्याग किया था। इसलिए भौतिक आनन्दरूप राम के अयोध्या राज्य का स्वामी बनना ज्ञानवैराग्य भरत के लिए अधर्म एवं अन्याय था। वह राज्य आनन्दरूप राम का था, वैराग्य सम्पन्न भरत का नहीं। इसलिए राम का राज्य राम को लौटाने के लिए भरत राममार्ग से जाकर राजा राम से मिलने दण्डकारण्य में जाते हैं।

चित्रकूट :

इस समय राम, लक्ष्मण, सीता चित्रकूट पर स्थानापन्न हुए थे। गोवर्धन जैसे चित्रकूट को भी एक पर्वत मानते हैं और अपना कहना सार्थ है यह दिखाने के लिए ऐसे लोग उत्तर भारत में विद्यमान चित्रकूट दिखाते हैं। सन्त तुलसीदासजी कहते हैं—'चित्रकूट के घाट पर भयी सन्तन की भीड़। तुलसीदास चन्दन घिसे तिलक लगाय रघुवीर॥' परन्तु अपना वाल्मीकि चित्रकूट साधना में अनुभूत अवस्था है। साधना करते-करते साधक एक प्रकार के 'दृश्यानुविद्ध' अवस्था में आता है जिसमें साधक विभिन्न प्रकार के चित्र जैसे सजीव आकार अनुभव करता है। विभिन्न प्रकार के भाव-चित्र साधक की नज़रों के सामने सदा आते हैं और वे पूर्व जीवित जैसे लगते हैं। भावना-प्रधान साधक इस प्रकार के सजीव भाव-चित्र साधना काल में अवश्य देखता है। परन्तु वह भाव-चित्रों का आशय साधक

नहीं समझ पाता है। वह भावचित्र साधक के लिए कूट जैसे याने अनोखे रहते हैं। इसी कूट चित्र-अवस्था को वाल्मीकिजी चित्रकूट कहते हैं। यह अवस्था है न कि प्रत्यक्ष पर्वत अथवा स्थान। यह लेखक का निजी अनुभव है जो कि इस अवस्था के सब साधक पाते हैं। रामायण में कहा है कि यह चित्रकूट स्थान बहुत मनोहारी था जिस पर राम, लक्ष्मण, सीता कुछ समय ठहरे थे। इसी स्थान के पास राम भरत-भेंट होती है जिसका हृदयंगम वर्णन रामायणकार करते हैं। राम याने आनन्द और भरत याने वैराग्य इस चित्रकूट के पास मिलते हैं। याने साधक का आनन्द अब वैराग्य द्वारा प्राप्त उच्च अवस्था का है, यह इस कथा का आशय है।

राम भरत भेंट :

रामायणकार अपनी शैली में राम भरत भेंट का वर्णन करते हैं। राम भेंट नन्दी ग्राम में होती है। 'नन्द' को आ विशेषण लगाने से आनन्द शब्द बनता है जो कि साधक का नन्दीग्राम है। राम से नन्दी ग्राम पर मिलने के पूर्व भरत उसी गुह राजा के राज्य से आते हैं परंतु राम जैसे गुह का मांस-मद्य का आतिथ्य भरत स्वीकार नहीं करते हैं। कारण भरत वैराग्य सम्पन्न श्रेष्ठ साधक हैं। गुह राज्य को छोड़ भरत नन्दीग्राम तक पैदल ही आते हैं परंतु राजा हैं इस नाते उनकी सेना उनके साथ थी। कौन-सी सेना थी वह ? वैराग्य-वृत्ति ! भरत की सेना देखकर विवेक रूप लक्ष्मण भैया बहुत क्रोध में आकर कि भरत फिर से राम को तकलीफ देने के लिए आ रहे हैं, यह समझ कर भरत से युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते हैं। परंतु भगवान राम जानते थे कि भरत उनका राज्य उन्हें लौटाने आ रहे हैं इसलिए राम लक्ष्मण को शान्त भाव से समझाते हैं। भरत दूर से राम को देखते हैं और आनन्दातिरेक से तीर जैसे दौड़कर राम के चरणों पर अपना शिर रख देते हैं। इस भावना-प्रधान हृदयंगम वेला का वर्णन रामायणकार अपनी अजोड़ भाषा में करते हैं जिसका अनुवाद सन्त तुलसीदासजी भी बहुत मनोहारी ढंग से करते हैं।

राम साधक दण्डकारण्य की तपस्या करने जाते हैं उसके पूर्व उसकी जड़ों की आसक्ति कम होकर उसमें वैराग्य याने भरतभाव आना बहुत आवश्यक है। बिना वैराग्य साधना में प्रगति नहीं इसलिए राम और भरत का प्रेमालिंगन बहुत गूढ़भाव से रामायणकार नन्दीग्राम पर दिखाते हैं। वैराग्य में ही सच्चा चिरकाल आनन्द है इसलिए नन्दीग्राम पर राम भरत भेंट दिखाई जाती है।

प्रथम भरत भैया राम को अयोध्या लौटकर अपना राज्य स्वीकर करने के लिए अति नम्रभाव से आग्रह करते हैं—

'तस्य मे दास भूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि।
अभिषिञ्चस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव ॥२।१०१।८॥'

परंतु अयोध्या का त्यागकर राम अव तपस्या करने दण्डकारण्य जाते हैं अतः उसके लिए पुनः अयोध्या का राज्य स्वीकार करना उचित नहीं था। अब वैराग्य-वृत्ति भरत ही स्थानापन्न हों, यह साधना-दृष्टि से सुयोग्य था। इसलिए राम कहते हैं—

'कुलीनः सत्वसम्पन्न तेजस्वी चरितव्रतः।
राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मादिद्धो जनः ॥२।१०१।१६॥'

राम कहते हैं, 'हे भरत कुलीन, सत्व सम्पन्न, तेजस्वी और चारित्र्यवान व्यक्ति के लिए अव राज्य की अभिलाषा कर अयोध्या का राज्य स्वीकार करना अव पाप-कर्म है। इसलिए भरत मैं अव अयोध्या का राज्य नहीं स्वीकार सकता।'

परंतु अयोध्या का राजा वनने के लिए भरत तैयार नहीं थे। वे इस राज्य का कार्यभार राम का एक सेवक के नाते करने को तैयार थे। भरत राम को उनकी पादुकाएँ माँगते हैं जिन्हें वे अयोध्या के सिंहासन पर रखकर राज्य-कार्य चलायेंगे। राम ने भरत को अपनी पादुकाएँ दीं जिन्हें उन्होंने अपने हृदय से लगाकर भरत राम-कृपा मानते हैं। राम-पादुकाएँ अपने सिर पर लेकर भरत बड़े दुःख से अयोध्या लौटते हैं और एक कार्यकारी नाते राम का राज्य चलाते हैं। संसार के सारे सत्ताधीश इस प्रकार राम और भरत का आदर्श रख कर यदि राज्य कार्यभार सम्हालें तो संसार का मानव-समाज राम राज्य जैसा अति सुखी वनेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यहाँ दो भाई राज्य चलाने के लिए परस्पर आग्रह करते हैं और अन्य स्थान पर राज्य का स्वामी वनने के लिए परस्पर गले घोटे जाते हैं, मारकाट होती है और येनकेन प्रकारेण सत्ताधीश वनने की पूरी चेष्टा की जाती है। और उसके लिए कारण दिये जाते हैं राष्ट्र को बचाना है, देश को बचाना है और गरीबी हटानी है। बेचारी जनता इन घोषणाओं पर अपने को भूल जाती हैं और ऐसे सत्ता-पिपासुओं को अपना सत्ताधीश नियुक्त करती है। फिर यह सत्ताधीश रावण, चंगेज़खान, औरंगजेब और अन्य कुछ बन जाते हैं। रामायण का आदर्श सम्हालने के लिए सत्ताधीश की वृत्ति राम और भरत जैसी बननी चाहिए। इसलिए रामायण ग्रंथ सारे संसार के लिए आदर्श ग्रन्थ है।

तथागत बुद्ध और जाबाली :

भरत के साथ एक जाबाली नामक स्पष्ट वक्ता विचारवान् व्यक्ति आया था जिसे राजा दशरथ ने अपनी सभा में रखा था। रूढ़ कल्पनाओं को मानकर चलना जाबाली पसन्द नहीं करता है। कोई भी कल्पना अपनी शुद्ध बुद्धि की कसौटी पर न परखी जाय तब तक उस बात को जाबाली नहीं मानता था। जाबाली बुद्धि-संगत और वैज्ञानिक ढंग से विचार करता था। जाबाली भगवान राम को अयोध्या लौटकर अपना राज्य स्वीकार करने का आग्रह करता है ।।२।१०८।९ से १८ तक ।।—

राजभोगाननु भवन्महार्हान्पार्थिवात्मज ।
विहर त्वमयोध्यायां तथा शक्रस्त्रिविष्टपे ।।२।१०८।९।।
न ते कश्चिदशरथस्त्वं च तस्य न कश्चन ।
अन्यो राजा त्वमन्यस्तु तस्मात्कुरु यदुच्यते ।।२।१०८।१०।।
बीजमात्रं पिता जन्तोः शुक्रं शोणितमेव च ।
संयुक्तमृतु मन्यात्रा पुरुषस्येह जन्म तत् ।।२।१०८।११।।
गतः सह नृपतिस्तत्र गन्तव्यं यत्र तेन वै ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां त्वं तु मिथ्या विहन्यसे ।।२।१०८।१२।।
अर्थधर्मपरा ये ये तांस्ताञ्शोचामि नेतरान् ।
ते हि दुःखमिह प्राप्य निनाशं प्रेत्य भेजिरे ।।२।१०८।१३।।
अष्टकापितृ देवत्यामित्ययं प्रसृतो जनः ।
अन्नस्योपद्रवं पश्य मृतो हि किमशिष्यति ।।२।१०८।१४।।
यदि भुक्तमिहान्येन देहमन्यस्य गच्छति ।
दद्यात्प्रवसतः श्राद्धं न तत्पथ्यशनं भवेत् ।।२।१०८।१५।।
दान संवनना ह्येते ग्रन्था मेधाविभिः कृताः ।
यजस्व देहि दीक्षस्व तपस्तप्यस्व संत्यज ।।२।१०८।१६।।
स नास्ति परमित्येतत्कुरु बुद्धिं महामते ।
प्रत्यक्षं यत्तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु ।।२।१०८।१७।।
सतां बुद्धिं पुरस्कृत्य सर्वलोक निदर्शिनीम् ।
राज्यं स त्वं निगृह्णीष्व भरतेन प्रसादितः ।।२।१८।।

रामायण द्वारा बौद्ध तत्वज्ञान का पुरस्कार करना :

जाबाली कोई प्रत्यक्ष ऐतिहासिक पुरुष न था, वह वाल्मीकि का उत्पन्न किया हुआ रामायणीन पात्र है। इसलिए जाबाली पात्र द्वारा स्वयं

रामायणकार ही यह तत्वज्ञान सारे संसार को देना चाहते हैं, यह कहना अनुचित न होगा। इससे यह स्पष्ट है कि जाबाली द्वारा दिया गया तत्वज्ञान रामायणकाल में जनता में बहुत प्रचलित था, तब ही रामायणकार जाबाली के मुख से उस तत्वज्ञान का प्रचार करते हैं। जाबाली का तत्वज्ञान एक तरह से उस समय के बौद्ध तत्वज्ञान का निचोड़ है। जाबाली राजा दशरथ के आश्रित थे जिससे यह स्पष्ट है कि जाबाली का तत्वज्ञान इस समय के समाज में मान्य था जिस कारण उस समय के अपने लोक प्रिय ग्रन्थों में रामायणकार जाबाली का तत्वज्ञान निःसंकोच भाव से लिखते हैं। विशेष यह कि जाबाली यह तत्वज्ञान भगवान राम जैसे जगतमान्य व्यक्ति को बताते हैं इसलिए जाबाली का तत्वज्ञान विचारार्थ निश्चित रूप से है। आजकल के नवबौद्ध अपना माना हुआ बौद्ध तत्वज्ञान जाबालीरूप बुद्ध के तत्वज्ञान से कितना मिलता जुलता है, यह अवश्य देखें। जाबाली के वचन देखें।

राजभोग लेना यह पार्थिव शरीर का काम है आत्मा उन सब भोगों से अलग रहती है। इसलिए हे रामरूप आत्मन् तूं अयोध्या का राजभोग ले कारण सारी अयोध्या तुम्हारे कारण विरहातुर है। शक याने इन्द्र जिस प्रकार त्रिविष्टप याने स्वर्गरूप शरीर का भोग लेता है और तिसपर भी आत्मारूप इन्द्र उस भोग भाव से ऊपर रहता है उस प्रकार हे राम तूं अयोध्या में विहर ॥९॥ न तेरा दशरथ कोई है और न तूं दशरथ का कोई है। जैसे अन्य राजा अपना अपना राज्य कारोबार करते हैं। उस प्रकार तूं तटस्थभाव से अपना राज्य सम्हाल ॥१०॥ माता के उदर में पिता अपना बीज बोता है। पिता केवल कारणमात्र है। उस गर्भ का सच्चा पालन उसकी माता ही करती है जिसका भी बीज गर्भ की उत्पत्ति के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है ॥११॥ राम तूं उसी प्रकार जगत व्यवहार के लिए कारण-मात्र बन, कारण प्रवृतिभाव से सर्व भूतमात्र चलते हैं इसीलिए तूं स्वयं को मिथ्या इस संसाररूप राज्य का राजा या चालक मत मान। सब संसार अपनी प्रकृति द्वारा चल रहा है ॥१२॥ जिस अस्तित्व का जो धारणाधर्म है उस अनुसार सारा संसार चल रहा है। व्यक्ति स्वयं को इस संसार-चक्र का कर्ता मानकर बेकार के दुःख में पड़ता है और विनाश के गर्त में फँसता है ॥२३॥ अष्ट भाव द्वारा यह उत्पत्ति होती है और उस द्वारा यह जन उत्पन्न होते हैं जो कि अन्न द्वारा भी अपना जड़ अस्तित्व रखते हैं। इसलिए इसके हे राम मृत्यु के पश्चात क्या रहता है? यह संसार केवल जड़ की ही माया है। इसके सिवाय और क्या है? ॥२४॥ देह का नाश होने पर देह

पञ्च भूतों में विसर्जित होती है फिर श्राद्ध द्वारा किसको क्या मिलता है ? क्या श्राद्ध में दिया हुआ अन्न किसी को मिलता है ? ॥१५॥ इसलिए हे महामते बुद्धिमान राम, तूं परलोक की मिथ्या आशा से कोई कर्म न कर वरन् यह जन्म को अधिक सफल बनाने के लिए सुयोग्य व्यवहार और मन का तप कर। शरीर को कष्ट देकर आत्मा की अभिलाषा करना व्यर्थ है ॥१६॥ जो तेरे जीवन में है उसी को स्वीकार कर उसके द्वारा ही अपने जीवन का स्तर ऊँचा उठा। प्रत्यक्ष जीवन की तरफ से मुँह मोड़कर परलोक की व्यर्थ कल्पना के लिए इह जीवन को न बिगाड़ ॥१७॥ अपना सब व्यवहार बुद्धि-निष्ठ कर और सर्वजनों को अपनी बुद्धि-निष्ठ व्यवहार द्वारा अपना अस्तित्व दिखा दे। राज्य-लोभ का मन से त्याग कर न कि ऊपरी दिखावे से और भरत याने वैराग्य को संतुलित रखकर सारा व्यवहार कर ॥१८॥ जाबाली का यह बुद्धिनिष्ठ तत्वज्ञान सारा बुद्धिमान संसार याने सच्चे बौद्ध अवश्य मानेंगे। इस दृष्टि से जाबाली राम और बुद्ध बुद्धिमार्गी थे न कि इस दृष्टि से मज़हब। उस समय का यह बौद्धमत है जो कि जाबाली द्वारा वाल्मीकिजी सारे संसार को बताना चाहते हैं।

तथागत बुद्ध और रामायण काल :

जाबाली और राम के संभाषण में राम तथागत बुद्ध के बारे में कहते हैं—

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धः तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिकेनाभि मुखो बुद्धःस्यात ॥
२।१०९।३४॥'

आशय यह कि बुद्ध और चोर एक ही है तथागत बुद्ध को नास्तिक जानो। जिसे लोगों के हित की चिन्ता है ऐसे प्रत्येक बुद्धिमान को इस प्रकार के नास्तिकों का दर्शन भी नहीं करना चाहिए। इससे यह स्पष्ट है कि तथागत बुद्ध के जमाने में ही रामायण लिखी गई है। रामायण काल के बारे में जो कई प्रकार की कल्पनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं वह इस श्लोक के उद्धरण से बेकार हो जाती हैं। इसका मतलब यह है कि रामायण की ग्रन्थ-रचना बौद्ध काल की होनी चाहिए जब कि रामायण में तथागत बुद्ध का स्पष्ट उल्लेख है। कोई विद्वान रामायणकाल को ईसा के जन्म काल से पूर्व ५००० वर्ष और महाभारत को ३००० वर्ष मानते हैं जो कि इस उद्धरण से अप्रस्तुत माना जायेगा। इस श्लोक को कुछ लोग स्यात प्रक्षिप्त मानेंगे परन्तु अपनी कल्पना

के विरुद्ध इतर सब लेख प्रक्षिप्त मानना बुद्धिमानों को शोभा नहीं देती है। रामायण काल और बुद्ध काल एक ही है।

रामायणकार बुद्धमत के विरुद्ध न थे अन्यथा जाबाली का तर्कवचन वे इतनी अच्छी ढंग से न देते। इसके अलावा शबरी, हनुमान और सुग्रीव को बौद्ध भिक्षु दिखाना और उनके साथ राम का सख्य दिखाना इत्यादि वर्णन अपने रामायण ग्रंथ में वाल्मीकिजी न करते। वाल्मीकिजी का विरोध बौद्धमत द्वारा राष्ट्र और समाज के खिलाफ जो वृत्ति फैलायी जाती थी उस नास्तिक मत से था। समाजविरोधी और राष्ट्रविरोधी आचरण से रामायण-कार का विरोध था और इसलिए रामायणकार तथागत बुद्ध और उसके सम्प्रदाय को चोर और नास्तिक कहते हैं। बौद्ध मत सम्प्रदाय में वे गौतम बुद्ध के पश्चात एक ऐसी भावना उमड़ आयी थी कि जो राष्ट्रविरोधी एवं समाजविरोधी थी इसके बारे में उस समय का इतिहास साक्षी है। महाभारत और रामायण ग्रन्थ न निकलते और लोकप्रिय न बनते तो आज भारत की सब जनता ईरान, अफगानिस्तान, बंगला देश, हिन्देशिया जैसे पूर्ण मुस्लिम देश बन जाता कारण इन देशों में उस समय बौद्ध मत की बहुत प्रबलता थी। इतिहास साक्षी है कि जिन देशों के लोगों ने अपनी पुरानी श्रद्धा त्याग कर नयी श्रद्धाओं को स्वीकार किया वे सब देश क्रमागत बौद्ध, तदन्तर काल में ईसाई और तत्पश्चात मुस्लिम देश बने।

व्यक्ति की श्रद्धा एक बार अपने पूर्व जीवन से हट जाने से वह व्यक्ति अपनी श्रद्धाएँ समय समय पर बदल कर कहीं का नहीं रहता है इसका साक्षी प्राचीन इतिहास है। वैदिक मत का त्याग कर बौद्ध मत को स्वीकार करने वाले लोग तत्पश्चात काल में ईसाई अथवा मुस्लिम बने हैं। बंगाल में मुसलमानों को आज भी नेड़े कहते हैं। अपने सिर पर चौल अथवा चोटी नहीं रखते हैं उन्हें नेड़े कहा जाता है। बौद्धों को भी नेड़े कहा जाता था कारण वे शिखा-भ्रष्ट थे। यही बौद्ध शिखाभ्रष्ट बाद में अपनी श्रद्धा बदल कर मुसलमान बने जो कि शिखाभ्रष्ट याने अपना माथा चौलविरहित याने साफ रखते। विदर्भ में एक समय बौद्धमत का बहुत प्रचार था जो कि उस इलाके में स्थित अनेक बौद्ध मठ, गुंफा और चैत्य प्रासादों द्वारा आज भी दिखाई देता है। इसलिए विदर्भ के लोगों को भी 'नेड़े' या 'लेड़े' कहा जाता था। तामिलनाडु का नाडु शब्द भी इसी बौद्ध नेड़े से अपना सम्बन्ध रखता है। एक समय तामिल प्रदेश में बौद्ध मत का प्रचार अधिक था। नेड़ शब्दों से ही लड्डू शब्द बना है जो कि एकत्रितकरण का निदर्शक है। अनेक कण

इकट्ठे कर जो चीज दबाकर बनाई जाती है उसे लड्डू या नेडू याने इकट्ठे करना। परन्तु इस प्रकार के नेड़ों का एकत्रिकरण भारत के लिए विघातक ठहरा था और आज तामिलनाडु की भावना लेकर भारत विघातक ठहर सकता है। ऐसे विघातक तत्व किसी देशभावना के लिए स्वास्थ्यकर नहीं है। रामायण का विरोध ऐसे विघातक तत्वों से था न कि अच्छे आध्यात्मिक विचारों से।

रामायण अद्‌भुत रम्य लेखनशैली से इस्तम्बूल से लेकर कम्बोडिया तक वह ग्रन्थ बहुत लोकप्रिय बना और उस देश में वैदिक परम्परा पुनः एकबार प्रस्थापित हुई। रामायण का यह राष्ट्रीय कार्य उल्लेखनीय है। रामायण के इस ऐतिहासिक कार्य की तरफ विद्वानों का अभी तक ध्यान नहीं गया है जो रामायण का असली कार्य था। इसी रामायण ने बाद में सन्त तुलसीदास द्वारा सारे उत्तर भारत में लोकप्रिय बनकर सारा उत्तर भारत सम्पूर्ण मुसलमानमय बनने से बच सका। रामायण का कार्य आध्यात्मिक अवश्य है परन्तु राष्ट्रीय भी है जो कि समय समय के रामायण कर्ताओं ने अपने ग्रन्थों द्वारा किया है। सन्त तुलसीदास के समय सारा भारत मुसलमानों के आतंक से भयग्रस्त था। सन्त तुलसीदासजी ने हिन्दु हृदयों में नवीन उमंग और स्फूर्ति भर कर पुरानी श्रद्धाओं को पुनः वज्र जैसे बनाया जिस कारण उस समय के अनन्वित अत्याचारों को सहकर भी भारत वैदिक निष्ठाओं को लेकर पुनः जाग उठा। आज भारत में निधर्मी राज है इसका कारण है वैदिक परम्परानिष्ठ अथवा हिन्दुनिष्ठ विचार और आचार का हिन्दू समाज। भारत से हिन्दुनिष्ठा घटने पर भारत अन्य देशों जैसा मज़हबी अथवा साम्यवादी बनेगा, इसमें सन्देह नहीं है।

रामायय कोई निरर्थक इतिहास नहीं है। रामायण की वास्तविकता दर्शाने पर एकदिन भारत भी हिन्देशिया देश जैसे रामायण देश बन सकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी महान कार्य का एक नम्र प्रयत्न है जिसको विचारवान लोग समझें।

ऋषि और राक्षस :

चित्रकूट पर रहने वाले ऋषि-मुनियों को राक्षसों द्वारा बहुत तकलीफ झेलनी पड़ती थी इसलिए चित्रकूट को छोड़कर अन्य स्थान पर जाने के लिए ऋषिमुनि राम लक्ष्मण से कहते हैं। सवाल यह है कि इस प्रकार राक्षसों

द्वारा इतनी पीड़ा होती थी तो ऋषिमुनि उन प्रदेशों में क्यों बेकार अपनी जान देने जाते थे ? कोई भी विचारवान व्यक्ति इस प्रकार मरने के लिए राक्षसों से भरे हुए प्रदेशों में नहीं जायेगा। इसलिए राक्षसों का आशय अन्य होना चाहिए। राक्षस याने अपने अन्दर की बुरी वृत्तियाँ जो कि अपने में स्थित अच्छी वृत्तियों को याने ऋषिमुनियों को पीड़ा देकर मारना चाहती हैं। सारे दण्डकारण्य में इसी प्रकार राक्षस ऋषिमुनियों को मारकर उनकी हड्डियों की ढेर बनाकर छोड़ते थे। ऋषिमुनियों के कहने के अनुसार राम लक्ष्मण, सीता अन्य स्थान पर चले जाते हैं जहाँ पर उन्हें अत्रि ऋषि का आश्रम मिला। याने साधना-दृष्टि से साधक राम को अब चित्रकूट अवस्था में अधिक समय रहना अच्छा नहीं था। कूटचित्रों की अवस्था से ऊपर उठकर राम साधक अब सर्वत्र स्थित परमात्मा का दर्शन करने अत्रि आश्रम में जाते हैं। अत्र तत्र सर्वत्र भगवान देखनेवाला अत्रि। इस अत्रि की पतिव्रता पत्नी थी अनुसूया। 'अनु' याने अनुसरण करने वाली और 'सूया' याने प्रवेश करने वाली वृत्ति। साधक के विचार अत्रि बनते हैं इसलिए साधक की वृत्ति भी उन विचारों का अनुसरण कर उसकी पत्नी अनुसूया बनती है जैसा कि एक पतिव्रता अपने पति का सर्व प्रकार से अनुसरण करती है। इसलिए अनुसूया को आदर्श पतिव्रता बताया जाता है। इसी प्रकार के सर्वत्र परमात्मा को देख सकने वाली वृत्ति द्वारा ही त्रिगुणात्मक त्रैमूर्ति दत्त जन्म ले सकते हैं। पुराणों में वर्णन है कि अत्रि और अनुसूया के पुत्र दत्तात्रय हैं। दत्तात्रय वृत्ति साकार रूप है न कि कोई काल्पनिक देवता।

अत्रि और अनुसूया ने राम, लक्ष्मण, सीता का अपने आश्रम में बहुत सत्कार किया। वे तीन दिन और तीन रात अत्रि-आश्रम में थे। आशय यह कि उस सर्वत्र समान मानने वाले समभाव समाधि-अवस्था में साधक राम थे। अब साधक को तीन दिन तक समाधि लगने की उच्च अवस्था आती है। यहाँ पर अत्रि और अनुसूया राम, सीता को कुछ अलंकार देते हैं। एक निर्धन ऋषि और उसकी पतिव्रता राम-सीता को कौन-से अलंकार दे सकते हैं ? यह अलंकार थे उच्च वृत्तियों के ! 'अलं' याने उत्तम श्रेष्ठ अथवा पर्याप्त और अलंकार याने पूर्णता !! इस प्रकार की पूर्णता के अलंकार स्वीकार कर राम-सीता अत्रि-आश्रम को छोड़कर अन्य स्थान पर चले जाते हैं। इसी अलंकारों का त्याग सीता उस समय करती है जिस समय रावण सीता को लेकर लंका में भागता है। लंका याने माया। मायारहित अवस्था का याने अलंकारों का त्याग करने पर ही साधक की वृत्तिरूप सीता रावण द्वारा

लंका में भगाई जा सकती है। सीता को अपना पूर्व देने के लिए भगवान राम इसी अलंकार रूप अंगुठी को हनुमान के साथ भेजकर सीता को दिखाने के लिए कहते हैं। उस अंगुठी की पूर्व अलंकार-वृत्ति देखकर सीता की पूर्व राम-वृत्ति जागृत हो उठती है, सीता राम को पहिचान लेती है और सम्मान-वृत्ति द्वारा राम सीता का पुर्नमिलन होता है।

अब साधक राम दण्डकारण्य के गहन अरण्य में प्रवेश करना चाहते हैं इसलिए आगे के काण्ड को रामायणकार दण्डकारण्य 'अरण्य काण्ड' कहते हैं। 'काण्ड' याने कठिन यत्न अथवा बगावत। रूढ़ कल्पना अथवा अवस्था का त्याग कर ऊँची अवस्थाओं को स्वीकार करना इस प्रकार के पराक्रम को या बगावत को काण्ड कहते हैं। रामायण में हर काण्ड इस प्रकार के पुरुषार्थ से भरा हुआ है। अयोध्या काण्ड याने साधक की पिंड-रचना छोड़कर साधक अब दण्डकारण्य नामक जटिल साधना करने जा रहा है इसलिए अगला अध्याय अब अरण्य काण्ड से शुरू होगा। धीर-वृत्ति का साधक ही इस अरण्य में प्रवेश कर काण्ड कर सकेगा। अब अपनी पिंड मर्यादा को अधिक उन्नत उत्क्रान्त बनाने के लिए साधक राम अपने मेरुदण्ड रूप दण्डकारण्य में प्रवेश कर वहाँ के सब दुष्वृत्ति रूप राक्षसों का संहार करेगा जिसका व्यौरा अगले अरण्यकाण्ड में दिया है।

अरण्यकाण्ड

पञ्चम अध्याय

विराध राक्षस वध :

चिटकूट का परिसर छोड़कर राम, लक्ष्मण और सीता तदन्तर गहरे वन में जाते हैं जहाँ उन्हें स्थान-स्थान पर अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रम मिले। इन ऋषि-मुनियों को राक्षसों द्वारा बहुत तकलीफ होती थी। कई एक ऋषि-मुनियों को इन वृत्तिरूप राक्षसों ने सफाया किया था। फिर भी ऐसे घनघोर दण्डकारण्य में यह साधक रूप ऋषि-मुनि लगातार जाकर बसते थे। हमने यह देखा है कि दण्डकारण्य याने मेरुदण्ड की कठिन साधनाएँ हैं जिनमें कई साधक विफल हो जाते थे याने मारे जाते थे। इस भयानक अरण्य में जाने के पश्चात् द्विमूर्ति को एक भयंकर राक्षस मिला जिसका नाम विराध था। उस राक्षस ने अपना नाम विराध बताया था। क्या इतने सुसंस्कृत और उच्चारण में कठिन नाम राक्षसों में होते हैं या वह नाम वाल्मीकि निर्मित है? रामायण के सब नाम वास्तविक ऐतिहासिक नहीं वरन् वाल्मीकिजी ने अपने कथा प्रसंग के अनुसार स्वयं निर्माण किये हैं। उनमें एक नाम विराध है। राध याने आनन्द और विराध याने दुःख ! यह राक्षस भयानक शरीरवाला था जो कि देखते-देखते राम, लक्ष्मण की उपस्थिति में सीता को उठाकर भाग गया। ऐसा करते समय उसने राम-लक्ष्मण की बहुत निर्भत्सना की। उसका कहना था कि उसकी दृष्टि ठीक थी। वह राम, लक्ष्मण को कहता है, 'तुम ऊपर के भेष से मुनि जैसे दीखते हो परंतु तुम्हारे पास यह शस्त्र कैसे? और यह सुन्दर युवती तुम्हारे साथ कैसे रहती है? तुम्हारे इस प्रकार के बर्ताव से तुम मुनि सम्प्रदाय को कलंकित कर रहे हो। इतनी सुन्दर युवती तुम्हारे जैसे पापियों के साथ रहने योग्य नहीं है इसलिए इस सुन्दर स्त्री को मैं लेकर भाग जाता हूँ और उसे अपनी भार्या बनाता हूँ। यदि तुम विरोध करोगे तो मैं युद्ध में खातमा करूँगा।

तस्यैव ब्रूवतो दुष्टं विराधस्य दुरात्मना :

श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं संभ्राता जनकात्मजा।
सीता प्रवोपितो द्वेगात्प्रवाते कदली यथा ।।३।२।१५।।
तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम्।
अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्य मुखेन परिशुष्यता ।।३।२।१६।।
युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासि पापिनौ ।।३।२।१०।।
कथं तापसयोर्वाचं वासः प्रमदयासह।
अधर्म चारिणौ पापौ कौ युवां मुनि दूषकौ ।।३।२।११।।
इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति।
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रूधिरं नृधे ।।३।२।१३।।

इस प्रकार उस समय का चित्र रामायणकार पाठकों के सन्मुख खड़ा करते हैं। यह दीखता है कि आज जैसा उस प्राचीन काल में भी स्वयं को मुनि सम्प्रदाय के मानने वाले साधक अपने साथ शस्त्र और स्त्रियां भी रखते थे। अध्यात्म के नाम पर इस प्रकार स्वैर भोगाचार करने वाले व्यक्ति पापी ही माने जायेंगे इसलिए विराध राम, लक्ष्मण की निर्भत्सना करता है। राम, लक्ष्मण विराध के चङ्गुल से सीता को मुक्त करते हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो सीता को भगाने वाला रावण नहीं था, उसके पहले विराध सीता को लेकर भाग जाता है। विराध मरता नहीं, यह देखकर राम लक्ष्मण ने उसके पास एक गड्ढा खोदकर विराध को जीते जी उस गड्डे में गाड़ दिया। यह ध्यान में रखना चाहिए कि रामायण महाभारत में जो मारा जाता है वह वृत्तिरूप अस्तिव मुक्त हो जाता है।

इस कथा से उस समय के रिवाज पर प्रकाश पड़ता है। राम लक्ष्मण का रक्त-मांस युद्ध में खाने की बात विराध करता है। इसी प्रकार का एक उदाहरण महाभारत में भी है। दुःशासन का सीना फाड़कर भीम उसका लहू पी जाता है। उस समय के समाज में इस प्रकार के क्रूर कर्म करने वाले लोग अवश्य होंगे इसीलिए इस प्रकार के वर्णन अथवा उल्लेख रामायण महाभारत में आते हैं। उस समय इस प्रकार के नृशंस अत्याचार अवश्य होते होंगे जब कि उस प्रकार के उल्लेख उन ग्रन्थों में आते हैं। विराध को जिन्दा ही गाड़ने की कथा यह दिखाती है कि उस समय अपने शत्रुओं को

विजयी वीर जिन्दा गाड़ते थे। मुसलमानी सल्तनत में इस प्रकार के नृशंस अत्याचार चलते थे। उसके कई उदाहरण इतिहास में पाये जाते हैं। इस प्रकार के उदाहरण तैमूरलंग, चंगेजखान और औरंगजेब के इतिहास में भरपूर मिलते हैं। विराध का इस प्रकार का अन्त होने से वह सीधे स्वर्ग में चला गया। स्वर्ग याने वृत्तियों की सहजावस्था। विराध इस प्रकार स्वर्ग में गया और एक महान आपत्ति से सीता बच गई। विराध याने ऊपर से अच्छी लगनेवाली परन्तु साधक के कुल जीवन पर बुरा परिणाम करने वाली बात।

मुनि-सम्प्रदायों के प्रकार :

विराध-वध के बाद राम, लक्ष्मण, सीता दण्डकारण्य में आगे बढ़ रहे थे कि उन्हें उस घनघोर अरण्य में कई ऋषि-मुनि अपनी साधना बड़े प्रेम से करते हुए दिखाई दिये। दण्डकारण्य भयानक राक्षस और आपत्तियों से भरा हुआ रहता तो ऋषिमुनि उसमें जाकर तपस्या नहीं करते, यह हमने पिछले समय देखा है। इसलिए दण्डकारण्य याने साधक के मेरूदण्ड की ध्यान-साधना है और राक्षस याने साधक की चित्तवृत्तियों में स्थित बुरी वृत्तियाँ हैं जो कि साधक के आध्यात्मिक जीवन को समाप्त करती हैं। इस दण्डकारण्य में अनेक ऋषि-मुनि अपनी-अपनी साम्प्रदायिक कल्पनाओं के अनुसार साधना करते हुए रामायणकार ने वर्णन किया है। इससे यह स्पष्ट है कि उसपर साधना के अनेक मत-सम्प्रदाय भारत में थे जो कि उदारमतवादी वैदिक परम्परा की विशेषता है। अन्य मत-सम्प्रदायों में अथवा मज़हबों में इस प्रकार का मत-स्वातंत्र्य नहीं है। उनमें केवल एक ही मत अथवा कल्पना का एकाधिकार रहता है जो कि अन्य मत-कल्पनाओं के बारे में अनुदार वृत्ति उत्पन्न करता है। अन्य मज़हब के अनुयायी अपनी मज़हबी कल्पना को छोड़कर अन्य मज़हब अथवा धर्म-कल्पनाओं के बारे में बहुत अनुदार रहते हैं इतने कि अन्य धर्मावलम्बी उनकी निगाह में काफ़िर अथवा मृत्यु दण्ड देने योग्य है। वैदिक परम्परा वैज्ञानिक परम्परा होने के कारण उसमें सब मत प्रकारों को पूर्णतया स्वातंत्र्य है। उसी महान उदार परम्परा का वर्णन रामायणकार करते हैं।

मुसलमान मत-सम्प्रदाय तो अनुदारता का जीता जागता चित्र है जहाँ अन्य मत-सम्प्रदाय के जनों को काफ़िर कहकर उनपर अत्याचार किये जाते हैं और उनकी बहुबेटियों पर बलात्कार किये जाते हैं। संसार में जहाँ-जहाँ मुस्लिम राज्य का विस्तार था उन सब देशों में मुसलमान सत्ताधीशों ने यही अत्याचार और अनन्वित छल बलात्कार का प्रयोग किया। आज भी सारे

मुस्लिम राज्यों में इसी प्रकार के नृशंस प्रकरण चलते हैं और इसका कारण है अनुदार मतांधता ! ईसाई सम्प्रदाय भी मुसलमानों से कुछ कम नहीं था। धर्म के नाम पर अनन्वित छलबल के प्रयोग ईसाई सत्ताधीशों ने भी किये हैं। परन्तु आज ईसाई प्रधान देशों में पूर्व जैसी अनुदारता अथवा मतान्धता नहीं दिखाई देती है। मुस्लिम सम्प्रदाय की एक विशेषता है। जो मुसलमान बनना चाहता है उसे अपने राष्ट्र के संस्कार, सभ्यता, ऐतिहासिक श्रद्धा पुरुष और श्रद्धास्थानों का त्यान कर बाहरी पराये मुसलमान राष्ट्रों से अपनी श्रद्धा जुटानी पड़ती है और जो यह न करेगा वह काफुर माना जायेगा। उसे अपनी परम्परागत मातृभाषा और वेश-भूषा का त्याग कर पराये राष्ट्रों की भाषा और वेश को स्वीकार करना पड़ेगा। वह परम अस्तित्व को यदि परमेश्वर अथवा भगवान कहना हो तो उसने अब उस परमेश्वर को अल्हा ही कहना चाहिए। भारत की दृष्टि से राणाप्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, लक्ष्मीबाई आदि को राष्ट्रपुरुष न मानकर चंगेजखान, बाबर, तैमूरलंग और औरंगजेब जैसे पराये जालिमों को अपने आदर्श ऐतिहासिक पुरुष मानने चाहिए। मुसलमान बनना याने देश-विद्रोही बनना है।

वैदिक परम्परा इन बातों से सदा ऊपर रही है इसलिए इस महान परम्परा में अनेक मत-सम्प्रदाय सखीभाव जैसे बड़े ही प्रेम से व्यवहार करते हुए दिखाई देते थे और आज भी दिखाई देते हैं। रामायण में इसी उदार परम्परा का सुन्दर वर्णन है। इस वर्णन द्वारा यह दिखाई देता है कि रामायण काल में किस प्रकार अध्यात्म-साधनाएँ की जाती थीं। अपने-अपने विभिन्न पद्धतिं से साधना करने वालों का वर्णन रामायणकार करते हैं—

> वैखानसा बालखिल्याः सम्प्रक्षाला मरीचिपाः।
> अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहारश्च तापसाः ॥३।६।२॥

कोई अपने को ब्रह्मा के नखोंद्वारा, बालों द्वारा अथवा अन्य अंग-प्रत्यंगों द्वारा उत्पन्न हुए मानते थे। कोई कच्चा अन्न पत्थरों पर रगड़ कर खाते थे तो कोई कच्ची पत्तियाँ खाकर अपना उदर-निर्वाह करते थे।

> दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे।
> गात्रशय्या अशय्याश्च तथै वाभ्रावकाशिकाः ॥३।६।३ ॥

कोई दाँतों से चबा-चबाकर खाते थे। कोई तापसी कण्ठ तक पानी में डूबकर तपस्या करते थे। कोई शरीर को ही शय्या मानकर सोतें और कोई आकाश के नीचे सोते थे। कोई मिट्टी का बिछौना कर उस पर सोते थे।

मुनयः सलीलाहारा वायुभक्षास्तथापरे।
आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थाण्डिलशायिनः ॥ ३।६।४ ॥

कोई केवल पानी पीकर तो कोई केवल वायु भक्षण कर तपस्या करते थे। कोई आकाश के नीचे सदा रहते थे तो कोई मिट्टी में बैठते थे।

व्रतोपवासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससः।
सजपाश्च तपोनिष्ठा स्तथा पञ्चतपोन्विताः ॥ ३।६।५ ॥

कोई वस्त्र पहनते थे तो कोई नग्न रहते थे, कोई भींगे वस्त्र पहनकर तपस्या करते थे। और कोई वल्कल पहनकर रहते थे। कोई सदा जप करते थे तो कोई अपनी चारों ओर पञ्चाग्नि जलाकर साधना करते थे। कोई सूर्य में तपते थे।

सर्वे ब्राह्म्या श्रिया युक्ता दृढयोग समाहिताः।
शरभंगाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः ॥ ३।६।६ ॥

इस प्रकार हर कोई अपनी-अपनी साधना में दृढचित्त रहकर परन्तु अन्यों को किसी प्रकार पीड़ा न देते हुए आध्यात्मिक जीवन चलाते थे। इस प्रकार साधक और साधना प्रकार देखते हुए राम शरभंग ऋषि के आश्रम में जाते हैं।

सीता स्वयंवर के समय राम धनुष भंग करते हैं अब राम शरभंग करते हैं। धनुष याने मेरुदण्ड है और शर याने आत्मा है। शरभंग याने आत्मपरीक्षण अथवा आत्म-निरीक्षण है। इतने सारे तपस्वी अपनी अपनी तपस्या आत्म-प्राप्ति के लिये ही करते थे परन्तु इन सब साधनाओं से क्या आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है? इसकी खोज राम साधक करते थे। उनका-विचार मन्थन चालू था। आत्मसाधना का सुयोग्य विचार-मन्थन चालू था। आत्मसाधना का सुयोग्य विचार मन्थन याने शरभंग आश्रम है।

साधना आदर्श योगेश्वर गोपाल कृष्ण

ऊपर निर्दिष्ट सब साधना प्रकार याने केवल शरीर का ताड़न कर उस द्वारा शरीरतत्व से ऊपर स्थित परमतत्व अथवा आत्मतत्व को पाने की इच्छा करना है जो कि तत्वतः असम्भव है। अध्याय १७ के श्लोक ६ में भगवद्गीता इस बारे में स्पष्ट कहती है—

'कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थ तान्विद्धयासुरनिश्चयान् ॥'

'हे अर्जुन उन अज्ञानियों को तूं आसुरी स्वभाव वाले जान जो कि शरीररूप से स्थित भूतसमुदाय को और अन्तःकरण में स्थित मुझ अन्तर्यामी को शरीर

द्वारा पीड़ा देकर कृश करने वाले हैं।' बहुत से साधक अपने शरीर को अनशन आदि द्वारा अति कष्ट देते हैं और उन शरीर कष्टों द्वारा अपने को आत्मज्ञान हो गया है, यह मानते हैं। परन्तु इस प्रकार शरीर को कष्ट देकर उस शरीर में स्थित परमात्म स्वरूप को भी वे व्यर्थ कष्ट देते हैं। कुछ भोगवादी लोग इसका दूसरा सीरा लेकर शरीर का लालन-पालन करने में ही सर्वस्व मानते हैं। 'खाओ पिओ और मौज करो' यह उनका तत्वज्ञान रहता है। चार्वाक आदि यही कहते हैं, 'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः। ऋणं कृत्वा धृतं पीवेत्॥' कुछ धर्म-ग्रन्थों में उनके स्वर्ग में जो जायेगा उसे मद्यसांस, सुन्दर स्त्रियां और सुन्दर लौठों का वह भोग ले सकेगा, यह कल्पना लिखी है।

भगवान वेद व्यासजी ने अपने भागवत और महाभारत ग्रन्थों द्वारा सारे संसार के सम्मुख ऊपर निर्दिष्ट दोनों एकांगी कल्पनाओं से विलकुल भिन्न परन्तु ज्ञान के लिए आवश्यक इस प्रकार भगवान योगेश्वर गोपाल कृष्ण का आदर्श रखा है। उनके नाम में ही सब अध्यात्म विज्ञान है। कृष्ण किसे कहते हैं? शास्त्र कृष्ण शब्द की परिभाषा बताते हैं, 'कर्षति इति कृष्णः' याने जो दिव्य शक्तियों का अपने में कर्षण करता है वह कृष्ण है। गोपाल शब्द दो उप शब्दों द्वारा साकारित हुआ है। 'गो' याने इन्द्रियाँ और 'पाल' याने पालन करने वाला। गोपाल याने इन्द्रियों का अपने उच्च ध्येय के लिए यथायोग्य पालन करने वाला व्यक्ति। इस प्रकार इन्द्रियां का पालन कर उस द्वारा साधक की दिव्य शक्तियाँ अधिक वर्धित बन साधक नर का नारायण बन सकता है। इन्द्रियों की शक्तियाँ अधिक वर्धित बनने वाली अवस्था याने 'गोवर्धन' है। इसी गोवर्धन को उठाकर गोपाल कृष्ण अपने में सूप्त ऐसी गोपनीय शक्तियाँ याने गोप-गोपियों की रक्षा करते हैं। इन्द्रियों का पालन अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए करने वाला श्रेष्ठ साधक याने योगेश्वर गोपाल कृष्ण हैं। क्या ऐसा श्रेष्ठ साधक भगवान नहीं हैं? इसलिए संसार का आदर्श योगेश्वर भगवान गोपाल कृष्ण हैं जो ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं।

दण्डकारण्य की साधना कर राम योगेश्वर गोपाल कृष्ण बनने की चेष्टा करते हैं। इसलिए उन्हें प्रथम शरभंग आश्रय में जाना पड़ता है। शरभंग याने आत्म स्वरूप जानना है; 'शरो ह्यात्मा' उपनिषद कहते हैं। इस आश्रम का मार्ग मरने के पूर्व विराध ने बताया था। राम को सारे राक्षस इस दृष्टि से साधना में मदद करते हैं, परंतु उनको मारने के बाद! अपनी

दुर्वृत्तियों को जो साधक नष्ट करेगा उसी विजेता साधक को उसकी दुर्वृत्तिरूप राक्षस सहायता करते हैं। शरभंग ऋषि के आश्रम में राम साधक को सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम की जानकारी मिलती है। यह सुतीक्ष्ण ऋषि अगास्ति ऋषि का भाई था जिसका आश्रम वहाँ से पाँच कोस पर था। जिसकी बुद्धि साधना कर उत्तम तीक्ष्ण वनी है उस साधना अवस्था को रामायणकार सुतीक्ष्ण कहते हैं। भगवान गीता में कहते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन माम् उपयान्ति ते ॥ अध्याय १०, श्लोक १० ॥'
सुयोग द्वारा साधक सुतीक्ष्ण बनता है जो कि अगस्त्य का भाई है।

अगस्त्य एवं लोपामुद्रा :

अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुँचते-पहुँचते राम के वनवास के दस साल वीत गये थे। 'रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश ॥३।११।२६॥' अगस्त्य आश्रम में राम तीन दिन तीन रात रहे थे, 'अगस्त्य स्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ॥३।११।५४॥ अगस्त्य ऋषि की कथा वहुत मजे की है। अगस्त्य दण्डकारण्य में रहने गये उस समय वहाँ पर वातापि और इल्वल नामक दो राक्षस वंधु रहा करते थे। यह राक्षस वंधुद्वय दण्डकारण्य में रहनेवाले ऋषि-मुनियों को कुछ और ढंग से तकलीफ देते थे। इल्वल ब्राह्मण का रूप लेकर पितरों का श्राद्ध है, यह वता कर ऋषिमुनियों को श्राद्ध अन्न भक्षण करने के लिए बुलाता था। वातापि वकरा बनता था जिसका मांस श्राद्ध के लिए पकाया जाता था। उस बकरे का मांस खाने के पश्चात इल्वल अपने भाई वातापि को चिल्ला कर बुलाता था। ऋषिमुनियों के पेट में स्थित वातापि वहीं से जोर से चिल्लाता था, 'भैया मैं इन ऋषियों के पेट में हूँ। मुझे यह खा गये हैं।' यह सुन कर इल्वल ऋषि-मुनियों पर बहुत क्रुद्ध होकर उन्होंने उसके भाई को जिन्दा खाया है यह कह कर उन ऋषि-मुनियों को वह हत्या करता था। इस प्रकार इल्वल वातापि ने कई ऋषि-मुनियों के बलि चढ़ाये थे। उनके कृत्यों से सारा दण्डकारण्य आतंकित था।

अगस्त्य को देख कर वातापि इल्वल ने वही पुरानी चाल उन पर चलाई। वातापि बकरा मांसरूप से अगस्त्य के पेट में था। इल्वल अपने भाई वातापि का नाम लेकर पुकारता है, 'हे भैया वातापि तुम कहाँ हो।' परन्तु कई बार चिल्लाने के बावजूद भी वातापि की आवाज नहीं सुनाई

दी। अगस्त्य ने एक डकार देकर वातापि को हजम किया था। आखिर इल्वल को वह नाटक मालूम हो जाता है और अगस्त्य इल्वल को भी उसके भाई के पथ से भेज देते हैं। यह पराक्रम था अगस्त्य का। इसके अलावा अगस्त्य ऋषि ने एक ही आचमन में सागर का समस्त जल पीकर सागर को शुष्क बनाया था। ऐसे पराक्रमी ऋषि को कौन अपना दामाद नहीं बनायेगा। विदर्भ के राजा ने अपनी सुन्दर सुलक्षणी राजकन्या विवाह में अगस्त्य को दी। विदर्भ राज्य दण्डकारण्य के बिलकुल मध्य में था। विदर्भ राज्य एक उत्तम सांस्कृतिक और सम्पन्न राज्य था जो कि आजतक अपनी श्रेष्ठ संस्कृति और अतिथि स्वागत के लिए विख्यात है। साहित्य परम्परा में विदर्भ का नाम बहुत ऊँचा है। क्या इस प्रकार भयानक राक्षसों से परिपूर्ण दण्डकारण्य में विदर्भ जैसा एक सुसंस्कृत राज्य सुख से था? हाँ, रामायणकार उस प्रकार बताते हैं। इस विदर्भ राजकन्या का नाम लोपामुद्रा था जो कि अगस्त्य की भार्या बनी। अगस्त्य और लोपामुद्रा उन्हीं राक्षसों से भरे हुए घनघोर अरण्य में चैन से रहते थे। अब सारे राक्षस अगस्त्य से डरते थे कारण उन्होंने इल्वल और वातापि को खाकर हजम किया था।

अगस्त :

तीन उपशब्दों से अगस्त नाम बना है। संस्कृत में अगस्त को अगस्त्य: कहते हैं। 'स्य:' याने अवस्था, 'ग:' यानें गतिमानता और 'अ' याने नहीं। याने जहाँ गति ही नहीं है उस शून्य अवस्था को अगस्त्य: कहते हैं। निर्विकल्प समाधि-अवस्था में जाने के बाद यह शून्य अवस्था आती है। याने जो वृत्तिरहित शून्य अवस्था में सदा रहता है उस उच्च अवस्था रूप साधक को रामायणकार अगस्त कहते हैं। कौन-से सागर का अगस्त ने एक आचमन में प्राशन किया था? संसार सागर का। संसार को सागर की उपमा देते हैं। सागर जैसे तैरने के लिए दुष्कर है उसी प्रकार यह संसार भी पार करना बहुत मुश्किल है। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, सन्त, महात्मा इस संसाररूप सागर को पार करते-करते डूब गये। इस दुर्धर संसाररूप सागर को पार करना तो छोड़िए परंतु वह संसार सागर का सम्पूर्ण जल ही इस अगस्त ने एक ही संकल्परूप आचमन में पीकर साफ किया। ऐसे महान पराक्रमी और पुरुषार्थी अगस्त महर्षि थे। मीराबाई भी इसी प्रकार आधुनिक अगस्त थी। वह कहती हैं—'भवसागर सब सूख गयो हैं। फिकर

नहीं मुझे तरनन की।' मीराबाई के लिए इस संसार सागर में जल ही बाकी न रहा फिर वह किस जल का आचमन करेगी ?

अगस्त ऋषि ने राम, लक्ष्मण को दुर्मिल ऐसे अस्त्र बताये जिसका उपयोग राम रावण के साथ युद्ध करते समय उपयोग में ला सकते थे। अब अस्त्र याने क्या है, यह हम जान गये हैं। अस्त्र याने उच्च साधना अवस्था। वहाँ से पाँच योजन पर पञ्चवटी आश्रम में ठहरने के लिए अगस्त ने राम से कहा और यह बताया कि वहाँ पर सीता को आराम मिलेगा। ऋषि अगस्त के कहने के अनुसार राम पञ्चवटी की तरफ जाकर वहाँ अपना डेरा लगाते हैं जहाँ से कि रावण सीता को लेकर भाग जाता है।

लोपामुद्रा :

ऋषि का कुल और नदी का मूल नहीं देखना चाहिए इस प्रकार की एक कहावत है। अगस्त कहाँ के और कौन-से कुल के थे इसका ठीक पता नहीं है परन्तु हाँ जब कि वे ऋषि थे तो वे अवश्य ब्रह्म जानने वाले ब्राह्मण होने चाहिए। उनकी पत्नी लोपामुद्रा यह विदर्भ राजा की पुत्री थी। तो क्या उस समय आन्तरजातीय विवाह रूढ़ थे ? जो कुछ भी हो परन्तु लोपामुद्रा का और विदर्भ का क्या आशय है, यह देखें। दर्भ याने घास अथवा अहंकार। आज का विदर्भ अति ऊर्वरा देश है जहाँ कि सारी फसलें प्रचुर मात्रा में होती हैं इसलिए जहाँ दर्भ भी नहीं उग सकता है इस प्रकार का अनुत्पादिक देश विदर्भ नहीं है। विदर्भ याने अहंकार अविरहित साधक की अवस्था जो कि साधना अति आवश्यक है। साधना करते समय कई साधकों के द्वारा अपने आप मुद्राएँ होती हैं जो कि इस प्रकार के आध्यात्मिक अवस्था का परिणाम है। मुद्राएँ अपने आप होती हैं। शास्त्रों ने मुद्रा की परिभाषा बतायी है—

'मुदं ददाति देवानां द्रापयति असुरानपि' याने जिस अवस्था द्वारा देववृत्तियों को मुद याने आनन्द होता है और असुर वृत्तियों का नाश होता है उन्हें मुद्रा कहते हैं। साधना की प्राथमिक अवस्था में मुद्राएँ होती हैं, वह ठीक है परन्तु जिस श्रेष्ठ साधक को इन प्राथमिक मुद्रा-अवस्था से ऊपर जाकर अगस्त याने निर्विकल्प अवस्था में जाना है उसकी मुद्राएँ अपने आप लोप याने नष्ट हो जानी चाहिए। अगस्त की पत्नी लोपामुद्रा बतायी है जो कि अहंकार विरहित विदर्भ देश के राजा की पुत्री थी। बिना विदर्भ अवस्था के लोपामुद्रा अवस्था नहीं आ सकती है और बिना लोपामुद्रा के साधक शून्य-अवस्था में जाकर गतिशून्य अगस्त नहीं बन सकता।

इस प्रकार के अगस्त आश्रम में राम साधक तीन दिन तीन रात ठहरे थे याने राम साधक शून्य निर्विकल्प अवस्था में तीन दिन तीन रात थे। इसी अगस्त ने राम को पँच योजन दूर पञ्चवटी में ठहरने के लिए कहा था जहाँ से रावण सीता को लेकर भाग गया। इसलिए रामायणकार के अनुसार इस पञ्चवटी का वाल्मीकि आशय भी कुछ भिन्न होना चाहिए जो कि अधिक उन्मत्त साधना के लिए आवश्यक है। पञ्चप्राणों की साधना याने पञ्चवटी है जो कि द्रौपदी ने भी की थी और उस द्वारा अपने पञ्चप्राणरूप पति पाये थे। पञ्चवटी में जाने के पूर्व अगस्त ने जिन इल्वल और वातापि राक्षस बंधुओं को मारा था उनका आध्यात्मिक इतिहास देखें।

वातापि इल्वल :

यह कथा अति अद्भुत रम्य है जो कि प्रत्यक्ष व्यवहार में असम्भव है। इसलिए इस कथा का रामायणीन आशय कुछ भिन्न होना चाहिए, यह स्पष्ट है। जिस साधक को अगस्त बनना है उसको इल्वल वातापि को खाकर हजम करना चाहिए। इल्वल नाम दो उप शब्दों द्वारा बना है एक 'इल्' याने आत्मा अथवा जीवात्मा और दूसरा प्रत्यक्ष 'वल' है, जिसका आशय उस प्रकार यह है। इसी इल शब्द से प्राचीन इज़राइली भाषा में 'इली', 'एली' यह शब्द तैयार हुआ था। उस एली अथवा इल से अरबी भाषा में इल्ला अथवा अल्लाह शब्द बना है जो कि मुसलमानों का परवरदिगार माना जाता है। जिसे शून्य याने अगस्त अवस्था में जाना है उसे अपना इल याने इल्वल अवस्था से भी परे जाना चाहिए। इसलिए अगस्त अन्त में इल्वल को भी खा जाते हैं, याने नष्ट करते हैं। परन्तु इस इल्वल को नष्ट करने के पूर्व अगस्त प्रथम वातापि को खाकर हजम करते हैं। यह वातापि क्या है? वातापि नाम भी दो उप शब्दों से बना हुआ है, एक 'वात' और दूसरा 'अपि' शब्द है। वात याने वायुतत्व की अति उच्च अवस्था जो कि पर याने आकाशतत्व से थोड़ी नीची है। इस प्रकार के वायुतत्व की अवस्था को लांघकर याने हजम कर जो साधक उससे उच्च उस प्रकार के आकाशतत्व की ओर नहीं बढ़ेगा उसे उससे भी परे शून्य अवस्था कैसे प्राप्त होगी? इसलिए अगस्त साधक प्रथम वातापि को खाकर हजम करते हैं और बाद में आत्मावस्था याने इल्वल अवस्था जिसे लांघकर साधक शून्य अवस्था में जाकर स्वयं अगस्त बने। इसलिए वातापि को हज़म करने के पश्चात श्रेष्ठ साधक अगस्त फिर इल्वल को भी खाकर साफ करता है।

'इल' यह प्राचीन तमिल भाषा का शब्द है जो वेदों में और वेदांगरूप रामायण में आया है। प्राचीन वैदिककाल में तमिल ऋषि संख्या में अधिक थे इसलिए उनका इल शब्द वैदिक परम्परा गौरवित सारे प्राचीन देशों की भाषाओं में प्रचलित था जैसे इली, एली, एलीआस, इल्ला, अल्ला, अल्लाह, एन्जल इत्यादि। इन्हीं वैदिक द्रुविदों द्वारा सारे संसार में वैदिक परम्परा का प्रचार हुआ जो कि आज भी सारे संसार के प्राचीन इतिहास एवं उत्खनन द्वारा पाया जाता है। यही वह इल्वापि था जोकि वातापि नामक अपने भाई को बकरा बना कर उसका मांस ऋषिमुनियों को खिला कर उन्हें वातापि के हत्यारे मान कर उनकी हत्या करता था। इल याने परमात्म-अवस्था। परमात्म अवस्था-प्राप्ति के लिए साधक को वातापि अवस्था याने वायुतत्व की जटिल अवस्था हम कर उससे ऊपर उठना पड़ता है। जो ऋषिमुनि इस वातापि याने वायुतत्व की परम कठिन अवस्था को हजम याने पार नहीं कर सकते थे वे सारे इल्वापि याने परम आत्मावस्था तक नहीं पहुँच सकते थे याने वे इल्वापि द्वारा मारे जाते। अब वायुतत्व अवस्था क्या है, यह देखना पड़ेगा।

पचनत्व :

पचतत्वों में वायुतत्व की अवस्था बहुत उच्च परन्तु आकाशतत्व से नीची है। पृथ्वी याने सबसे अधिक जड़तत्व जो कि हम नित्य देखते हैं। पृथ्वीतत्व से ऊपर आपतत्व है जो कि ओतप्रोत (electrons & protons) अवस्था में है। इसी आपतत्व द्वारा सारा जड़ संसार पाया जाता है। इसलिए आपतत्व का नाम 'अप' माने जिस द्वारा सब कुछ प्राप्त होता है, ऐसा दिया गया है। कोई-कोई इसको जलतत्व भी कहते हैं। परन्तु यह जल से भी बहुत सूक्ष्म याने ओतप्रोत अवस्था में रहता है। इस आपतत्व से अधिक सूक्ष्म और कार्यकारीतत्व तेजस है जो कि प्रकाश-अवस्था द्वारा अपना कार्य करता है। भयानक वेग से आगे बढ़ कर 'प्र' अपना अस्तित्व स्थिर करनेवाली अवस्था 'काश' को तेजस याने अतिगतिमान अथवा प्रकाशतत्व कहते हैं। प्रकाश का वेग एक क्षण में १८६००० मील अथवा ३०००००८ किलोमीटर रहता है। प्रकाश इतने भयानक वेग से संसार में विचरण करता है। इस तेजसतत्व से भी अधिक तेज और बलशाली वायुतत्व रहता है। इस तत्व की गति एक क्षण में सारा ब्रह्माण्ड घूमकर वापस आने की है।

इतनी भयानक गति साधक नहीं सह सकता है इसलिए इस श्रेष्ठ अवस्था में जानेवाले कई साधकों के शरीर बेकामियाव बनकर उन्हें अपना शरीर त्याग करना पड़ता है जिसे कि हम मृत्यु कहते हैं। इसलिए रामायण-कार लिखते हैं कि वातापि बकरे को जो ऋषिमुनि हजम नहीं कर सकते थे याने सह नहीं सकते थे ऐसे ऋषिमुनियों को वातापि का भाई इल्वल याने परातत्व अथवा परमात्मतत्व मार डालता था। अब वातापि को बकरा क्यों बताया उसका भी अति उच्च विज्ञान है। बकरे को संस्कृत में अजा कहते हैं जिसका आध्यात्मिक आशय है जो अजन्मा याने जन्मा नहीं है वह उच्च शून्य अवस्था। उच्च शून्य अवस्था में जाने के लिए इस अजा याने बकरे को जो हजम करेगा वही श्रेष्ठ साधक अगस्त है। इसलिए अगस्त को वातापि और इल्वल दोनों को खाकर हजम करते हुए दिखाया है।

साधना में प्राप्त जटिल और दुर्गम अनुभव कितनी अदभुतरम्य शैली में रामायणकार लिखते हैं, यह इस कथा द्वारा देखा जा सकता है। कोई भी साधक इस प्रकार सुलभ और रोमांचकारी शैली में इस प्रकार की दिव्य अनुभूतियाँ नहीं लिख सकता है जब तक कि वह स्वयं उस गहन, प्रगाढ़ उच्चतम योग-साधनाओं की प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ नहीं लें सकता। इसलिए रामायणकार स्वयं को 'तपः स्वाध्याय निरतः वाग्विदांवरम् और मुनिपुंगव' निःसंकोच कहलाते हैं। कोई सामान्य इतिहासकार इस प्रकार की अदभुतरम्य शैली की रामायण नहीं लिख सकता जब तक वह तपस्वियों में और मुनियों में श्रेष्ठ न बने। धन्य वह मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि और धन्य वे जो इस रामायण परम्परा की सन्तान हैं। सारा संसार इस प्रकार रामायणमय बन सकता है जिस महान आदर्श के लिए वाल्मीकिजी ने अपना पूरा जीवन तपस्या में बिताकर स्वयं वाल्मीकि बने।

अगस्त से अस्त्र प्राप्त कर अब राम, लक्ष्मण और सीता पंचवटी में जाते हैं।

पंचवटी में वास्तव्य :

आज के विदर्भ और नासिक पञ्चवटी में सैकड़ों किलोमीटर का अन्तर है जो कि रामायण में केवल पाँच योजन का बताया है इसलिए पञ्चवटी याने भौगोलिक नासिक नहीं है वरन साधना-क्षेत्र में अनुभव आने वाली पञ्चप्राण साधना है। पञ्चवटी और चित्रकूट यह भौगोलिक अथवा ऐतिहासिक स्थान नहीं हैं जिन्हें कि और कहीं देखा जाय। पञ्चवटी की तरफ जाते समय रास्ते में राम से जटायू की भेंट होती है। यही वह जटायू है जो कि सीताहरण के

समय रावण से युद्ध कर सीता को उसके चंगुल से बचाना चाहता है परन्तु उस युद्ध में स्वयं जटायू मारा जाता है। जटायू को एक पक्षी राज बताया गया है जो कि आदमी जैसे बोलता है। एक पक्षी आदमी जैसे बोल नहीं सकता इसलिए जटायू यह साधना-क्षेत्र की एकाद अवस्था होनी चाहिए। वेदों को जटा कहा जाता है जिसके पठन को जटापाठ कहा जाता है इसलिए जटायू याने वेदज्ञान होना चाहिए। रावण भी वेदों का पण्डित दिखाया है। केवल ग्रन्थ-पठन करने से वेद याने ज्ञान नहीं हो सकता है। उसके लिए आत्मानुभूति आवश्यक है। इसलिए वेद ग्रन्थ-पठन का अहंकार याने रावण और प्रत्यक्ष वेदज्ञान याने जटायू इनमें वृत्ति-युद्ध बताने के लिए रामायणकार रावण-जटायू युद्ध का वर्णन करते होंगे।

पञ्चवटी में वास्तव्य करने के पश्चात राम, लक्ष्मण, सीता को कई आपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। परन्तु रामायणकार कहते हैं कि पञ्चवटी एक बहुत सुन्दर स्थान था जिसे देखकर त्रिमूर्ति सन्तुष्ट थे। हमने यह देखा है कि पञ्चवटी याने कठिन पञ्चाग्नि अथवा पञ्चप्राण साधना है। अपने पाँच प्राण माने गये हैं, प्राण, व्यान, उदान, अपान और समान यह वे पञ्चप्राण हैं। प्राणसाधना द्वारा साधक अपने प्राण अपने शरीर से निकलकर आवश्यक उस स्थान पर जा सकता है और परकाया-प्रवेश भी कर सकता है जिसे आद्य शंकराचार्य ने किया था। व्यान साधना द्वारा संसार की अन्य शक्ति अपने अस्तित्व में अधिक मात्रा में लाकर अपनी सब प्रकार की क्षमता बढ़ाई जाती है। उदान साधना करने से साधक पानी पर चल सकता है एवं आकाशगमन कर सकता है। अपान वायु से प्राण की गति उलटीकर साधक घण्टों तक बिना हवा के रह सकता है अपनी आँतें बाहर निकालकर उन्हें स्वच्छ प्राकृतिक बनाकर अधिक समय जी सकता है। समान की साधना याने परमेश्वर का अस्तित्व जहाँ तहाँ अणुरेणु, तृण, काष्ठ, पाषाण में देखना है। इस प्रकार पञ्चप्राणों की साधना करना याने पञ्चवटी है। परन्तु यह असली साधना भूलकर कोई लोग अपने चारों ओर पाँच अग्नि सुलगाकर उसमें सदा बैठते हैं और स्वयं को धन्य मानते हैं। इस प्रकार की हठयोग की साधना साधक को आत्मानुभूति नहीं दे सकती है।

पञ्चप्राणों की साधना पूर्ण होने से ही ब्रह्मरूप रावण द्वारा सीता भगाई जाती है। इस पञ्चवटी में कई प्रकार के हीरन आते थे जिन्हें देखकर सीता का मन भाता था। हीरन याने मन की चञ्चलता है। ऐसे ही एक सुवर्ण कान्ति के मृग की माया में फँसकर सीता राम-लक्ष्मण को उसके पीछे

दौड़ती हैं और स्वयं सुवर्णमय लंका की ओर लंकाधीश रावण के द्वारा हरण की जाती हैं। चञ्चल मन सुवर्ण की ओर खीचा जाता है। परन्तु उसके पूर्व पञ्चवटी में एक घटना हुई।

शूर्पणखा :

इस प्रकार राम सीता का समय बहुत आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था। एक दिन एक सुन्दर युवती राम के सम्मुख आ खड़ी हुई। उसका नाम था शूर्पणखा। वह रावण की बहन थी इसलिए ब्राह्मण थी और खूबसूरत भी ! वह विवाहित थी परंतु उसका पति विद्युत्जिह्व रावण द्वारा मारा गया था। विद्युत्जिह्व बहुत स्पष्ट वक्ता याने मुँहफट आदमी था। रावण के अवगुण वह रावण के मुँहपर साफ बता देता था जिस कारण क्रोधवश होकर रावण ने उसे एक दिन खतम ही कर दिया। अब यौवन भरी सुन्दर शूर्पणखा अकेली ही उस भयानक दण्डकारण्य में घूमती-फिरती थी। क्या एक सुन्दर ब्राह्मण युवती भयानक राक्षस भरे दण्डकारण्य में अकेली दिनरात घूम सकती थी ? हाँ, रामायणकार वैसा लिखते हैं। एक दिन वह शूर्पणखा राम सन्मुख आ खड़ी हुई और सीता के समक्ष बोल पड़ी, 'हे सुन्दर पुरुष तूं इस कुरूप नारी में क्या मगन है ? तूं मुझसे विवाह कर और मेरा स्वर्गीय भोग ले। मैं तेरे योग्य हूँ।'

रामायणकार शूर्पणखा का वर्णन करते हैं ॥ अरण्यकाण्ड, सर्ग १७ के श्लोक ॥

तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्त चेतसः।
तं देशंराक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ॥३।१७।५॥
सातु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः।
भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ॥३।१७।६॥
सिंहोरस्कं महाबाहुं पद्मपत्रायते क्षणम्।
आजानु बाहुं दीप्तास्ययतीव प्रियदर्शनम् ॥३।१७।७॥
गजविक्रान्त गमनं जटामण्डल धारिणम्।
सुकुमारं महासत्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम् ॥३।१७।८॥
रामामिन्दीवर श्यामं कंदर्पं सदृश प्रभम्।
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी कानमोहिता ॥३।१७।९॥

शूर्पणखा एक अति सुन्दर 'काममोहिता' और सुडौल शरीर की 'सुकुमारं' युवती थी, ऐसा रामायणकार उसका वर्णन करते हैं। उसे सूर्प जैसे बड़े-बड़े नख थे इस प्रकार उसका वर्णन कहीं भी नहीं है। फिर उसका नाम शूर्पणखा

याने शूर्प जैसे नखवाली इस प्रकार रामायणकार क्यों लिखते हैं ? आशय यह है कि रामायणकार शूर्पणखा नाम द्वारा हमें और कुछ सुझाना चाहते हैं। शूर्प का दूसरा आशय है नापना, गिनना। आध्यात्मिक साधना समय साधारणतः क्या गिना जाता है ? जप और सत्कर्म ! हम जो भी कर्म करते हैं वह हम पुण्यकर्म इस हिसाब से गीनते हैं जिस द्वारा हमारा अहंकार और भी बड़ जाता है। विशेषतः जप के समय जप गिनना ही आध्यात्मिक कर्म मानकर उस द्वारा हम सच्चा ब्रह्म जान सकते हैं, इस प्रकार की भावना जापक में जानबूझ कर बढ़ाई जाती है। जप को गिनने के लिए साधक वास्तविक देहभाव पर न रहे। जप करते-करते साधक अजपाजप अवस्था में चला जाय जहाँ अपने आप जप होता है परंतु जापक जप की संख्या गिनने के लिए देव-भाव पर नहीं रहता।

साधारण साधक सत्कर्म गिनता है जो उसे सुन्दर, सुडौल और ब्रह्मपरक लगता है इसलिए शूर्पणखा को रामायणकार सुन्दर, सुडौल और ब्राह्मण युवती दिखाते हैं और उसका नाम भी शूर्पणखा रखते हैं। 'शूर्प' याने गिनना और 'नख' याने ठोस। जो भी सत्कर्म हम गिनते हैं वह हमारे पुण्य कर्म में ठोस भरमार करते हैं इस प्रकार की वृत्ति याने रावण भगिनी सुडौल, सुन्दर शरीर की काम मोहिता शूर्पणखा है। इस कथा द्वारा रामायणकार यह सुझाना चाहते हैं कि कर्म करो या होने दो परन्तु उसे न गिनो। गिनते समय साधक में अहंकार-वृत्ति पैदा हो जाती है जिस द्वारा साधक अनजाने राक्षस-वृत्ति का बन जाता है। साधक को लगता है कि इस प्रकार सत्कर्म गिनने से साधक ब्रह्मज्ञानी याने ब्राह्मण बन जायेगा परंतु प्रत्यक्षतः वह शूर्पणखा जैसे रासक्षी-वृत्ति का बनता है। गीता स्पष्ट कहती है—

'सर्व कर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन् न कारयन ॥अध्याय ५, श्लोक १३॥'

जिसके वश में अन्तःकरण है ऐसी सन्यस्त वृत्ति से आचरण करने वाला पुरुष न करता है और न करवाता है। वह सब कर्मों को मन से त्यागकर अर्थात् इन्द्रियाँ इन्द्रियों के अर्थों में वर्तती है ऐसा मानता हुआ सच्चिदानन्द घन परम अवस्था में स्थिर रहता है। यह सब स्वभाव से चल रहा है, ऐसा वह मानता है।

इस प्रकार की कामुक वृत्ति शूर्पणखा आनन्द घन परमात्मा रूप राम के सम्मुख अपनी माया का परिणाम करने खड़ी हो जाती है। राम उसे समझाते

११

हैं कि वे एक पत्नीव्रती हैं और उनकी पत्नी विदेही जनक की पुत्री वैदेही सीता है। परन्तु वह न मानती थी। उसे राम विवेकरूप लक्ष्मण की तरफ भेजते हैं। लक्ष्मण इस प्रकार की माया में कैसे फँसेंगे? लक्ष्मण का रूख देखकर राम शूर्पणखा के नाककान काटने के लिए लक्ष्मण को कहते हैं। जैसा बताया वैसा लक्ष्मण भैया करते हैं और एक सुन्दर लगने वाली ब्राह्मण स्त्री अब कुरूप और तिरस्करणीय बन गई। ऐसी कुरूप अवस्था पर अब कौन मोहित होगा? राम लक्ष्मण ने यह जाना था कि अपना सत्कर्म गिनने वाली सुन्दर, सुडौल, ब्राह्मण युवती उनके लिए सुन्दर, सुडौल और ब्राह्मण नहीं वरन् नाक, कान कटी कुरूप कुलटा राक्षसी है जिसपर कोई भी साधक आसक्त नहीं हो सकता है। राम-लक्ष्मण ने उस आसक्त शूर्पणखा अवस्था का मन से त्याग किया था जो कि रायायणकार ने अपनी चटकीली भाषा में लिखा है। इस प्रकार शूर्पणखा के नाक, कान काटे जाते हैं। शूर्पणखा कोई ऐतिहासिक स्त्री नहीं वरन् साधक में स्थित काममोहिता गिनने वाली आसक्त अवस्था है जिसे राम साधक एक झटके से बदरूप करते हैं।

जिसे राम होना है उसके अपने अन्तर्गत के शूर्पणखा के नाक, कान काटने ही चाहिए। आशय यह कि सत्कर्म गिनना नहीं चाहिए।

शूर्पणखा का पति विद्युत जिह्व था। विद्युत जिह्व याने बिजली जैसा स्पष्ट बोलने वाला व्यक्ति। साधारण: सब जापक स्वयं भी अपना जप गिनते हैं और उस प्रकार जप गिनने के लिए अन्यों को स्पष्टतया बताते हैं। ऐसे विद्युत् जिह्व अवस्था को जिसे सचमुच ब्रह्म जानकर ब्राह्मण बनना है ऐसे रावण ने मारना चाहिए। इसलिए रावण अपने ही भगिनी पति विद्युत जिह्व को मारता है। कथा पूरी करनी है। इस प्रकार नाक, कान कटी शूर्पणखा विलाप करते-करते दण्डकारण्य में विचरती है जिसे उसके दूरस्थ सम्बंधी खर और दूषण मिलते हैं। खर-दूषण उसका बदला लेने राम, लक्ष्मण से लड़ने जाते हैं और शूर्पणखा अपने भाई रावण से मिलने लंका जाती है।

खर दूषण वध :

शूर्पणखा की यह विकराल अवस्था देखकर रावण के संबंधी खर और दूषण अपनी राक्षसों की सेना लेकर राम-लक्ष्मण पर आक्रमण करते हैं। राक्षसों की सेना हजारों की तादात में थी और राम, लक्ष्मण केवल दो ही थे। परन्तु उन दोनों ने सहस्त्रावधि राक्षसों सहित खर-दूषण का खातमा

किया। क्या केवल दो लोग सहस्त्रावधि राक्षसों को परास्त कर मार सकते हैं ? हाँ, साधक के जीवात्मारूप राम और विवेक रूप लक्ष्मण यदि मजबूत रहें तो वे अपने अन्तःकरण में स्थित हजारों दुर्गुणरूप राक्षसों को मार सकते हैं। आखिर यह खर और दूषण कौन है ? क्षर से खर शब्द बना है। साधना करते समय साधक को कुछ अच्छे अनुभव आते हैं। इन्हीं अनुभवों में जो साधक मशगुल रहेगा वह अध्यात्म में आगे नहीं बढ़ पाता है। पुराने अनुभव छूटने से याने क्षर (खर) होने से साधक नये अनुभव पा सकता है। परन्तु नये साधक को वह अनुभव क्षरता अच्छी नहीं लगती है। इसलिए जिसे राम बनना है ऐसे साधक को अपने में स्थित क्षर या खर का वध करना ही चाहिए, और दूषण का भी। साधना करते समय लोग अपनी निन्दा कर दूषण भी देते हैं। इससे साधक घबड़ा जाता है और अपना सत्कर्म करना छोड़ देता है। परन्तु इस प्रकार की दूषण-वृत्ति का साधक का खात्मा करना चाहिए और साधना में आगे बढना चाहिए। राम, लक्ष्मण इस प्रकार खर-दूषण को उनके हजारों साथियों के साथ मारकर नष्ट करते हैं। साधकों के लिए कबीरजी एक मन्त्र बताते हैं—

तू तो राम सुमर जग लडवा दे ॥ धृ० ॥
कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढ़त वाको पढवा दे ॥ २ ॥
हाथी चलत है अपनी गत मो, कुतर भुकत वाको भुकवा दे ॥ ३ ॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधु, नरक पचत वाको पचवा दे ॥ ४ ॥

खर-दूषण की सेना में एक ही राक्षस बचा था उसका नाम था अकम्पन। वह सीधा लंका में जाकर रावण को राम के पराक्रम का किस्सा सुनाता है और बहुत चर्चा के बाद वह रावण को सलाह देता है कि सीता का हरन कर वह सीता जैसी सुन्दर युवती को अपनी पत्नी बनाये। अकम्पन की सलाह रावण मान लेता है। इतने में रावण भगिनी शूर्पणखा कटे नाक, कान और विद्रूप अवस्था में रावण-सभा में आती है। अपनी बहन का यह विद्रूपीकरण करने वाला राम है यह सुनकर रावण अधिक बौखला उठता है और राम का नाश करने का सोचता है। शूर्पणखा भी अपने भाई को राम, पत्नी सीता को भगाकर पत्नी बनाने की सलाह देती है। स्त्रियाँ ही स्त्रियों की शत्रु बनती हैं। आखिर सब वृत्तियों का ही तो संघर्ष और वृत्तियाँ स्त्रीलिंगी शब्द है। जिस सीता के मोह के कारण राम उसको विद्रूप करता

है उसी सीता को उठाकर लंका में लाने के लिए बहन शूर्पणखा बताती है। रावण को वह उपदेश मान्य हुआ और सीता-हरण करने के लिए क्या किया जाय, इस बावद रावण सोचता है।

अकम्पन :

यह अकम्पन कौन है ? अकम्पन का सीधा आशय है कम्पन विरहित शून्य अवस्था। क्या रामायणकार को अकम्पन का यही आशय मान्य है ? हाँ, अकम्पन याने कम्पन रहित आत्मावस्था। आत्मरूप जानना है तो साधक को अपनी सीतावृत्ति का भी त्याग कर उसे ब्रह्मार्पण करना चाहिए। सीता-वृत्ति ब्रह्म रूप रावण में लीन होनी चाहिए तब ही राम रूप साधक ब्रह्म रूप बन सकते हैं अन्यथा नहीं। मन एक ऐसी चीज है कि मन के पूर्व संस्कारों का त्याग करने के लिए मन तैयार नहीं रहता है। इसलिए ऐसे मर्यादित मन का हरण ब्रह्म-वृत्ति के द्वारा करना आवश्यक है। सीता और राम का परस्पर बहुत प्रेम रहता है। पूर्व संस्कारों के कारण राम सीता एक दूसरे का त्याग करने के लिए तैयार नहीं रहते हैं। इसलिए साधक ब्रह्मवृत्ति याने रावण आक्रामक बनकर सीता-वृत्ति का हरण करने का विचार करता है। परन्तु सीता का हरण करना मामूली बात नहीं थी। कारण राम बहुत पराक्रमी थे और सीता भी राम के सिवाय अन्य प्रवृत्ति को अपना नहीं मानती थी। रावण कितना भी विद्वान, पण्डित, सत्ताधीश, धनवान और पुरुषार्थी क्यों न हो, परन्तु सीता सिवाय राम के अन्य किसी को नहीं मानती थी। ऐसी पतिव्रता सीता का हरण किस प्रकार किया जाय ? अकम्पन याने शून्य ब्रह्मावस्था ब्रह्मरूप रावण को सीता-वृत्ति का हरण करने को बताती है परन्तु सीता-संस्कारों को एकाएक ब्रह्मरूप बनाना सीधा काम नहीं था। सीता को किस प्रकार राम से भगाया जाय, इसका गहन विचार रावणरूप ब्रह्मसत्ता करती है।

स्त्री सुलभ स्वभाव का वर्णन : एक पति और पत्नीव्रत का विज्ञान :

सीता की जीवनी याने भारतीय स्त्री स्वभाव का आदर्श चित्रण है। सीता चरित्र अखिल स्त्री जाति के लिए आदर्श है। हर स्त्री को शूर्पणखा के बजाय सीता का चरित्र अपना आदर्श रखना चाहिए और पुरुषों को राम जैसा एक पत्नीव्रत को आदर्श अपने सामने रखना चाहिए और मज़हबों में एक पत्नीव्रत अवश्य है परन्तु वह कुछ समय तक मर्यादित रहता है। घटस्फोट

लेकर पतिपत्नी अन्य पतिपत्नी को संवंध रखते हैं। यह एक पतिव्रत नहीं है। इस प्रकार घटस्फोट लेकर व्यक्ति चाहे उतने लोगों से पतिपत्नी इस प्रकार नाता रख सकता है। वैदिक परम्परा में सब कुछ वैज्ञानिक व्यवहार रहने के कारण मानवीय जीवन का अति आवश्यक अंग जो कि विवाह है, उस बारे में भी अपना पूर्व अतीन्द्रिय वैज्ञानिक दृष्टिकोण संसार के सन्मुख रखा है। विवाह के साथ पति और पत्नी का शरीर सम्वंध अवश्य रहता है परन्तु उसके साथ मन का और उससे भी ऊपर जीवात्मा का संवंध रहता है जो कि अन्य सब संवंधों से अधिक महत्वपूर्ण और उत्क्रान्त जीवन देही होता है। दैनंदिन व्यवहार के साथ-साथ पति-पत्नी की जीवात्मा पर परस्पर संस्कार परिणाम होते हैं जिस कारण पति-पत्नी दोनों भी एक दूसरे के साथ स्वयं को उत्क्रान्त कर सकते हैं। उत्क्रान्ति शरीर की होती है। इस प्रकार जीवात्मा की होती है यह हमने पिछले अध्यायों में देखा है। वही जीवात्माएँ परस्पर प्रगाढ प्रेम से सारा जीवन व्यवहार करें तो उन दो जीवात्माओं की परस्पर उन्नति होती होकर वे मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकती हैं यह सहस्त्रावधि वर्षों से चलते आये हुए वैदिक परम्परा का अतीन्द्रिय अनुभव है। जन्म-जन्मान्तर का यह प्रेम-संवंध दो जीवात्माओं को अधिक उन्नत उत्क्रान्त वनाता है, यह वैज्ञानिक सत्य है। ईसाई मज़हव ने प्रेम पर अवश्य जोर दिया है। उसे पति-पत्नी का सारे जीवन तक का प्रेम मंजूर नहीं है। लगातार प्रेम और त्याग-वृत्ति से जीवात्माओं की परस्पर उन्नति अवश्यमेव होती है, यह वैदिक परम्परा ने जाना था। इसलिए वैदिक परम्परा ने सारे जीवन तक एक पति, एक पत्नी, एक पिता और एक माता का व्यवहार सामने रखा है। राम और सीता का जीवन इसी उत्क्रान्त जीवन का विज्ञान है।

विद्या, पराक्रम, सम्पत्ति और सत्ता इस दृष्टि से रावण राम से भी अधिक श्रेष्ठ दिखाया है जो कि साधारण स्त्रियों के लिए आकर्षण रह सकता है। धनवान, पराक्रमी, वैभवसम्पन्न और विद्वान पुरुषों को यह सदा लगता है कि अन्य स्त्रियाँ उसपर सदा लुब्ध रहती हैं। इसी प्रकार का स्वभाव रावण को वताया गया है जिस कारण वह सीता को अपनी भार्या वनाना अपना अधिकार मानता है। इसी पुरुष-वृत्ति के कारण सत्ताधीश, राजकारणी, साहित्यिक, कवि, महाराज, महात्मा और कथित आध्यात्मिक पुरुषों के स्त्री विषयक प्रकरण सदा चलते हैं। रावण का चरित्र इस प्रकार पुरुष सुलभ स्वभाव वाला दिखाया गया है परन्तु राम पर शूर्पणखा आदि अन्य स्त्रियाँ

लुब्ध रहकर भी राम अपना वैदिक एक पतिव्रत का आदर्श छोड़ता नहीं। ब्रह्म जानने वाला ब्राह्मण रहकर भी रावण सीता का बलात हरण कर उसे अपनाने की चेष्टा करता है। साधारण स्त्री इस प्रकार के सुलभ स्वभाव द्वारा आकर्षक पुरुष को लक्ष्य बनाती है परन्तु संस्कारित स्त्री अपना पति भले ही उस पर मोहित होने वाले अन्य पुरुष से गुण, सौंदर्य, सत्ता, विद्वता आदि से कभी भी कमी नहीं आने देती है। सुसंस्कारित स्त्री का यह संस्कार सुलभ आदर्श सीता द्वारा रामायणकार विश्व के सन्मुख रखते हैं। इस प्रकार का उच्च संस्कारिता मानवीय जीवन का आदर्श अन्य परम्पराओं ने अभी तक नहीं रखा है। अन्य परम्पराएँ केवल भौतिक सुख पर अधिक जोर देती हैं।

राम और सीता का यह अव्यभिचारी आदर्श संसार के लिए आदर्श है।

षष्ठम अध्याय

मारिच वध :

प्रथम मारिच कौन है, यह रामायणकार की ही भाषा में देखना उचित होगा—

> रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण।
> रत्नानि च रथाश्चैवं वित्रासं जनयन्ति मे ।।३।३९।१७।।

आशय यह कि जिस नाम की शुरूआत में रकार होगा उस नाम के उच्चारण से ही मारिच को अति तकलीफ होती थी और इसीलिए उसका नाम मारिच रखा है। 'मा' याने नहीं और 'रिच' याने रकार यह मारिच नाम का विज्ञान है। 'रे' यह अग्नि वीज का निर्देशक है। अग्नि याने प्रकाश अथवा ज्ञान। याने जिसे ज्ञान से नफरत है, भय है, उसे रामायणकार मारिच वृत्ति कहते हैं। साधना करते करते साधक कुछ सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। सिद्धियाँ उच्च माया का प्रकाश रहने से मायावश साधक इन सिद्धियों में मोहित होकर अपनी आत्मज्ञान-प्राप्ति के मार्ग से विचलित हो जाता है। इसलिए वैदिक परम्परा ने सिद्धियों के पीछे न पड़ने के लिए कहा है। परंतु साधारण साधक एकाध सिद्धि प्राप्त कर स्वयं को बहुत बड़ा मानता है। और सिद्धि का दिखावा कर उस द्वारा अधःपतित वन आत्मज्ञान से वंचित हो जाता है। आत्मज्ञान याने रकार है कारण 'र' अग्नि या प्रकाश अथवा ज्ञान का बीज है। इस प्रकार अपनी सिद्धि माया में फँसकर ज्ञान से विचलित होने वाला मायावी राक्षस को मारिच बताया गया है जो कि रावण का सम्बन्धी और ब्राह्मण दिखाया गया है।

इस प्रकार से अपनी सिद्धियों का खुला बाजार कर स्वयं को ब्रह्मज्ञानी मानने वाले कई भगवान देखे जाते हैं। इस प्रकार के कथित भगवान सिद्धियों का कुशलता से प्रचार कर यह दिखाना चाहते हैं कि वे सिद्ध पुरुष हैं जबकि वास्तव में वे हैं नहीं। सामान्य जन उनकी चालाकी के मायाजाल में फँस जाते हैं और उन्हें प्रत्यक्ष भगवान मानकर स्वयं का और उस चालाक भगवान का भी ज्ञानमार्ग बन्द कर मारिच बनते हैं। मारिच इसी कारण बहुत मायावी और आकर्षक बताया गया है। जिस पर एक पतिव्रती सीता भी मोहित होकर उसकी प्राप्ति के लिए राम-लक्ष्मण जैसे सुविचारी साधकों

को भी परेशान करती है। धन, दौलत, आकर्षण इत्यादि की माया से परे रहना बहुत कठिन है, इसीलिए भगवान गीता में कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥अध्याय ७ श्लोक १४॥

इस प्रकार साधक मुमुक्षु संसार की माया का त्याग करता है परन्तु अपनी ही सिद्धिरूप माया में फँस जाता है और आत्मज्ञान से मारिच जैसे नफरत करता है और ऐसे मायावी ब्रह्म जैसे लगने वाले ब्राह्मण सिद्ध पुरुष की माया में सीता जैसे वैदेही जनक की पुत्री सीता भी फँस जाती है। मारिच प्रकरण में वाल्मीकिजी अपनी बुद्धि की चरम अवस्था प्रदर्शित करते हैं जो कि बुद्धिमान व्यक्ति समझ सकता है, परन्तु इसमें इतिहास खोजने वाले साधारण बुद्धि के लोग इस परम सत्य से मारिच जैसे वंचित रहते हैं।

राम यह जानते थे कि मारिच यह साधक की मायावी अवस्था है जो कि साधकं का अधःपतन कर सकती है। राम सीता को बहुत समझाते हैं परन्तु सीतावृत्ति इस प्रकार मोहित हुई थी कि उसका विवेक उस समय काम नहीं करता था, और अपनी कायावृत्ति की माया में राम साधक भी फँस जाते हैं। गीता कहती है—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥अध्याय २, श्लोक ६०॥

प्रबुद्ध मन के साधक राम भी सीतारूप इन्द्रियवृत्ति के आधीन होकर उस मारिच रूप माया के पीछे दौड़ते हैं। यह विपत्ति का लक्षण है और इसीलिए बाद में ब्रह्मवृत्ति माने जाने वाला रावण आकर सीता का हरण करता है। परन्तु राम साधक उसमें भी एक कुशलता का व्यवहार करना चाहता है, वह उस मायावी मारिच अवस्था को ही मार डालता है। परन्तु आखिर माया ही है वह! वह मायावी राक्षस मारिच इस प्रकार चिल्लाता है कि सीता को राम की आवाज जैसी आवाज सुनाई देती है। सीता मानती है कि मायावी मारिच के बजाय परमप्रिय आत्मरूप राम ही मारे गये हैं। अब सीतावृत्ति से रहा नहीं जाता। वह अपनी रक्षा करने वाले विवेकरूप लक्ष्मण को राम को बचाने के लिए भेजती है। बस, जो होने वाला था सो हो जाता है—

'विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

अब विवेकभ्रष्ट सीता का अपहरण दशमुख ब्रह्मरूप लगनेवाले रावण द्वारा हो जाता है। बहुत सुन्दर ढंग से यह कथा रामायणकार लिखते हैं। धन्य हैं वे जो इस कथा को समझें!

मारिच कथा :

मारिच कथा का आवश्यक विज्ञान समझने के पश्चात अब पाठक रामायणकार के अपने अद्वितीय ढंग से लिखी कथा का योगविज्ञान समझ जायेंगे। कथा इस प्रकार है। खरदूषण का मारा जाना और भगिनी शूर्पणखा का नाक-कान छेदन-कर्म देखकर रावण राम को दण्ड देने को सोचता है। उस महान कार्य के लिए रावण मारिच को बुलाता है। यह वह मारिच है जिसकी माता ताटका को राम उसके राज्य में जाकर मारते हैं। राम को सवक सिखाने के लिए रावण एक षड्यन्त्र रचता है जिसके लिए उसे मारिच की आवश्यकता थी। षड्यन्त्र इस प्रकार था। प्रथम मारिच एक सुन्दर सुवर्ण मृग का रूप लेकर पञ्चवटी के राम आश्रम में जाय। सीता के सामने वह सुन्दर ढंग से नाचे, घूमे और सीता का मन ललचाये। सीता मोहित होकर उस काञ्चन मृग को पकड़ने के लिए राम को वतायेगी। प्रसन्न मन के राम अपनी इन्द्रियवृत्ति सीता का प्यार कौतुक करने के लिए मारिच के पीछे दौड़कर उसे वाणों से मारेंगे। फिर मारिच को अपनी माया द्वारा एक ऐसी आवाज निकालनी कि सीता को ऐसा लगे कि राम स्वयं खतरे में हैं। तब वह राम की मायावी आवाज सुनकर सीता विवेकरूप लक्ष्मण को राम को देखने भेजेगी। इस अवसर पर रावणरूप ब्रह्मवृत्ति मायावश सीता को किसी रूप से हरणकर लंका याने मायानगरी में ले जायेंगे। इस प्रकार का वह षड्यंत्र था।

परंतु इस षडयंत्र को सफल करने के लिए प्रथम मारिच का अस्तित्व नष्ट होना आवश्यक था। कौन अपना अस्तित्व नष्ट करेगा? मारिच इस बात के लिए तैयार न था। परंतु रावण कोई सामान्य व्यक्ति नहीं था। उसने मारिच से कहा कि मारिच यदि इस प्रकार इस षड्यंत्र में शामिल नहीं होता है तो रावण स्वयं मारिच को मार डालेगा। मारिच ने सोचा कि रावण जैसे दुष्ट व्यक्ति के हाथों से मर कर नरक में जाने के बजाय राम जैसे पुण्यशील पुरुष द्वारा मरने से वह सीधे स्वर्ग में जायेगा। मारिच ने यह नहीं सोचा कि इस प्रकार राम द्वारा मारा जाने से वह स्वर्ग में जा सकता है परंतु उस षड्यन्त्र द्वारा सीता को जो लंका में भगाया जायेगा वह कृत्य अति निन्दनीय होगा। परंतु अपने स्वार्थ के सामने कौन किसका सोचता है? यह कौन-सा अध्यात्म है कि जिसमें स्वयं स्वर्ग में जाये परंतु अपने कृत्य द्वारा अन्य व्यक्ति पर अन्याय हो? परंतु अपने स्वर्गवास के लिए मारिच सीता-हरण के षड्यन्त्र में शामिल हुआ। वह सीता के सामने नाचने लगा। सीता इस प्रकार का सुवर्ण मृग देखकर लुभा गई। उसे उस मृग के खाल की चोली बनानी थी। वह

राम से बोली, 'नाथ इस सुवर्ण मृग को पकड़कर उसकी खाल की मुझे चोली बना दीजिए।'

राम को मालूम था कि वह काञ्चन मृग याने चञ्चल लक्ष्मी है। लक्ष्मी चञ्चल रहती है इसलिए रामायणकार ने चञ्चल सुवर्ण मृग इस कथा में लाया है। सर्व प्राणियों में मृग अति चञ्चल रहता है। और वह चञ्चल मृग सोने का था याने लक्ष्मी चञ्चल रहती है यह इस कथा द्वारा रामायणकार सुझाना चाहते हैं। राम यह सब जानते थे परंतु मोह और कर्म की गति न्यारी रहती है। 'करम की गति न्यारी, बुद्धि क्या करे विचारी।' सीता को नाराज करना राम नहीं चाहते थे। अपना धनुष-बाण लेकर राम उस सुवर्ण मृग के पीछे दौड़े। मृग आगे भाग रहा था और राम उसके पीछे। चञ्चल लक्ष्मी के पीछे एक त्यागी साधक भाग रहा था। आखिर एक मोड़ पर राम ने उस सुवर्ण मृग को बाण मारकर नीचे गिराया। आश्चर्य यह कि वह मृग बोलने लगा, 'हे सीता, हे लक्ष्मण मैं मर रहा हूँ, दौड़ो।'

राम की वह वाणी सुनकर सीता देवर लक्ष्मण से कहती है, 'हे देवरजी स्वामी संकट में दीखते हैं, आप जाइये और उन्हें बचाइये।' परंतु लक्ष्मण जाने के लिए तैयार नहीं थे कारण राम किसी के द्वारा नहीं मारे जा सकते हैं, यह लक्ष्मण जानते थे। लक्ष्मण नहीं जा रहे हैं यह देखकर स्त्रि-सुलभ स्वभाव द्वारा सीता लक्ष्मण से कड़े शब्दों का प्रयोग करती है —

सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्।
यत्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपरस्य से ॥३।४५।५॥
इच्छासि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते।
लोभान्ममकृते नूनं नानुगच्छसि राघवम् ॥३।४५।६॥

सीता लक्ष्मण से कहती है, 'हे देवर तुम राघव की सहायता करने क्यों नहीं जाते हो? क्या इस प्रकार राम के परस्पर मारे जाने से मैं तुम्हारी बनूंगी, यह तुम्हारा खयाल है?' यह वाक्य सुनकर लक्ष्मण अवाक् रह जाते हैं और न बोलतें हुए वे जिस मार्ग राम गये उस मार्ग से जाते हैं। लक्ष्मण को देखकर राम संतप्त हो जाते हैं और सीता को अकेले छोड़कर लक्ष्मण कैसे आये, यह शंका प्रदर्शित करते हैं। लक्ष्मण ने सब बताया। दोनों सशंकित थे कि सीता पर कुछ आपत्ति अवश्य आ सकती है। दोनों आश्रम की तरफ दौड़ते हुए जाते हैं और देखते हैं तो सीता आश्रम में नहीं है। सीता के लिए राम आक्रोश और क्रान्दन करते हैं। वे पेड़ों से, झरनों से, टीलों से और फूलों से सीता का पता पूछते हैं। 'न त्वहं तां विना सीतां जावेयं हि कथंचन ॥३।६२।१५॥' 'मैं तब

बिना सीता जीवित नहीं रह सकता' राम कहते हैं। परंतु अब रोने से क्या होगा ? जो होने वाला था वह हो चुका था। अब सीता की खोज करना यह एक ही मार्ग था।

लक्ष्मण भी तरूण था और अपनी पत्नी बिना था परन्तु राम जैसे लक्ष्मण अपनी पत्नी के लिए न रोता था और न बार-बार याद करता था। राम जैसा एक अवतारी पुरुष लक्ष्मण का आदर्श सामने रख नहीं सकता था, यह राम जीवन के लिए अच्छी बात नहीं है। राम पत्नी के लिए रोते हैं और पत्नी बिना लक्ष्मण राम को समझाता है, यह एक दारूण चित्र रामायणकार बड़ी कुशलता से चित्रित करते हैं। लक्ष्मण राम को स्पष्ट शब्दों में फटकारते है—'शोचितुं नार्हसे वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा ।।३।६६।१४।।' 'राम को इस प्रकार पत्नी के लिए किसी बाजारू आदमी जैसे विलाप करना शोभा नहीं देती।' परन्तु राम का रोना-धोना चालू ही रहता है। आखिर राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।

संन्यासी रावण :

अब सीता कुटिया में अकेली थीं। यह अवसर देख कर रावण एक संन्यासी का स्वांग लेकर कुटिया के द्वार पर आया। रावण के द्वारा उस समय के संन्यासो और श्रमण किस प्रकार थे इसका चित्र रामायणकार खींचते हैं। श्रमण और संन्यासी बनकर इस प्रकार औरतों को ले भागना उस समय भी होता होगा इसीलिए रामायणकार इस प्रकार की कथा रामायण में लिखने की हिम्मत कर सके। रावण बौद्ध श्रमण भी था कारण हनुमानजी लंका जाते हैं उस समय हनुमान लंका स्थित रावण का चैत्य प्रासाद याने बुद्ध विहार नष्ट करते हुए रामायणकार दिखाते हैं। आशय यह कि उस समय ब्राह्मण, संन्यासी और श्रमण इस प्रकार के आज जैसे मज़हबी भेद नहीं थे। सारा समाज एक वैदिक संघ था। आज जैसा मतों के अनुसार समाज छिन्न-भिन्न नहीं हुआ था। इसलिए रावण ब्राह्मण भी था, संन्यासी भी था और श्रमण भी था। रावण सीता के द्वार पर आकर पुकारता है, 'माई मुट्ठी मिले'। सीता मुट्ठी लेकर आती हैं और रावण सीता को उठाकर आकाश मार्ग से भाग जाता है। क्या सीता किसी फूल जैसी थी उसे रावण उठाकर भाग सकता है ? और वह भी आकाश मार्ग से कैसे ? फिर उस आकाश मार्ग से उसकी बहन शूर्पणखा स्वयं रावण क्यों न आया ? आकाश मार्ग याने ध्यान मार्ग जो कि आकाशतत्व द्वारा पाया जाता है।

इस कथा द्वारा विद्वान लोग इस समय आज जैसे विमान थे इस प्रकार तर्क लड़ाते हैं। फिर वे विमान आज क्यों नहीं दिखाई देते हैं ?

रामायण काल और बुद्ध काल एक ही था यह हमने देखा है। फिर बुद्ध वाङ्मय में विमानों का उल्लेख क्यों नहीं है ? इसलिए रामायणीन विमान याने ध्यान साधना मार्ग है इस निष्कर्ष पर हमें आना पड़ता है। इसलिए ध्यान मार्ग द्वारा रावण सीता-वृत्ति का हरण करते हैं, इस निष्कर्ष पर आना पड़ता है। वृत्तियों का हरण ध्यान अथवा चिन्तन द्वार ही हो सकता है। चिन्तन अच्छी या बुरी वृत्तियों का भी रह सकता हैं। सीता वृत्ति केवल राम याने आनन्द, फिर वह भले ही किसी मार्ग से हो, मानती थी, प्यार करती थी। इस सीता-वृत्ति को ब्रह्म की ओर ले जाना ब्रह्म रूप ब्राह्मण रावण का कार्य था। सीता-वृत्ति को प्रथम कञ्चन की माया में याने कञ्चन मृग में उलझाये हुए देखकर रावण-वृत्ति अब उसे लंका में ले जाकर अपने आकर्षण में लाना चाहता है। लंका में ले जाकर अब सीता को उसके आकर्षण रूप वायु मण्डल में रखकर जिससे उसे शोक न हो इस प्रकार अशोक वन में रखा जाता है। परन्तु सीता सात्विक आनन्द रूप राम को ही चाहती थी इसलिए ब्रह्म रूप रावण पर वह प्रेम नहीं करती। रावण कैसा था ? रावण भी पूर्ण ब्रह्म रूप नहीं था। उस वृत्ति को अपने दशग्रन्थों के मुख्योद्धत रहने का गर्व था इसलिए रावण को दशमुखी कहा गया है। वह अपना प्रचार बड़े जोरों से कर अपना नाम और रस्ता लोगों पर जबरन लादना चाहता था, इसीलिए उसे रावण कहा गया है। रावण शब्द का विज्ञान है 'रवैतीति रावण:' याने जो चिल्ला चिल्लाकर अपना ढोल पीटता है उसे रावण कहते हैं। अपनी विद्वत्ता, सत्ता, और ऐश्वर्य का उसे बहुत अभिमान था। इसलिए ऐसी रावण-वृत्ति के बजाय तपस्या ध्यान निरत रामरूप आनन्द ही सीता-वृत्ति अधिक पसन्द करती है। सीता राम को प्राणप्रिय मानती है। पत्नी को पति प्राणप्रिय ही रहता है, फिर वह दरिद्री, अनपढ़ अथवा कम सुन्दर क्यों न रहे ? इस प्रकार के पतिव्रत का भी आदर्श सीता द्वारा रख जाता है।

अपनी विद्वता और अध्यात्म का ढोल पीटकर प्रचार कर अपनी कीर्तिरूप और धनरूप सत्ता बढ़ाने वाला व्यक्ति याने रावण है। इस प्रकार की दिखावटी ब्रह्म-वृत्ति वही सच्ची ब्रह्म-वृत्ति है यह दिखाकर सीता-वृत्ति को उसकी राम-वृत्ति से उसका चित्त हटाकर अपनी रावणी-वृत्ति पर

स्थिर करने की चेष्टा रावण करता है। सीता-वृत्ति का विवाह अपनी शिव धनुष साधना द्वारा साधक राम से हुआ था। अब एक पतिव्रता इस नाते से अन्य रावण-वृत्ति को सीता कैसे प्रेम कर सकती है भले ही रावण राम से श्रेष्ठ ब्राह्मण वर्ण का क्यों न हो? इस प्रकार वृत्तियों का प्रपंच रामायणकार राम-सीता और रावण द्वारा बहुत सुन्दर ढंग से रखते हैं। इस वर्णन को केवल इतिहास मानने से ऊपरी वर्णन को समझना उतना कठिन नहीं है, जितना रामायण का यह आध्यात्मिक हृदय समझना कठिन है। इसीलिए काल के प्रवाह में साधारण जनता और उनके साथ कीर्ति लोलुप पण्डित जन भी रामायण को इतिहास मानने लगे और काल के प्रवाह के साथ-साथ रामायण का अध्यात्मिक आशय भी भूल गये। आज तो रामायण को केवल इतिहास मानने में ही धन्यता मानी जाती है।

सीता के अलंकार और लंका :

सीता को आकाश मार्ग से भगाते हुए रावण ले जा रहा था, यह देखकर जटायू नामक महान पक्षी रावण का विरोध करता है। जटायू याने वेदज्ञान, यह हमने पूर्व स्तम्भों में देखा है। पाखंडी वेद-ज्ञान का अहंकार याने रावण और सच्चा वेद-ज्ञान जटायू है। रावण के आकाशमार्ग से गमन करने के लिए जटायू जैसे विशाल पक्षी की आवश्यकता है, इसलिए जटायू को पक्षी दिखाकर रावण जटायू-युद्ध आकाश में दिखाया है। रावण-जटायू का भीषण युद्ध होता है और इस वृत्ति द्वन्द्व में सच्चा वेदज्ञान याने जटायू मारा जाता है। प्रथम जटायू के पंख काटे जाते हैं। पंख याने वेद-ऋचाओं में निहित ज्ञान। इस प्रकार पंख विहीन वेद ज्ञान रूप जटायू मृत्यु की राह देखते हुए पड़ा रहता है। राम और लक्ष्मण उस वेदज्ञान रूप जटायू तक पहुँचते हैं और जटायू की विकल अवस्था देखकर बहुत दुःखी होते हैं। जटायू राम-लक्ष्मण को सत्य बताते हैं कि रावण रूप ब्रह्मज्ञान का सूखा अहंकार सीता-वृत्ति को लेकर लंका भाग जाता है। जटायू याने सच्चे वेदरूप ब्रह्मज्ञान ने इस रावण रूप सूखे ब्रह्मज्ञान के अहंकार को विरोध किया था। परंतु उस वृत्ति-युद्ध में जटायू याने सच्चा ब्रह्मज्ञान मारा जारा जाता है और सीता को लेकर रावण-वृत्ति जीत कर ले जाने वाले रावण के साथ सीता को जाना पड़ता है परंतु जाते समय सीता अपने अलंकार मार्ग में छोड़ती है जिन्हें देखकर राम-लक्ष्मण सीता की खोज कर सकते हैं।

लंका, लंकार, अलंकार :

कौन-से अलंकार थे सीता के ? यह अलंकार सीता को अनुसूया ने दिया था। अनुसूया याने निरहंकार-वृत्ति जो कि साधक के लिए आवश्यक है। सीता के पास यह अलंकार थे। अलंकार शब्द तीन उपशब्दों से बना है 'अ', 'लं' और 'कार'। 'अ' याने नहीं, 'लं' याने माया और कार याने अवस्था। इसलिए अलंकार याने मायारहित-वृत्ति है जो कि अनुसूया सीता को प्रदान करती है। 'लं' यासे माया और 'लंका' याने अवस्था। इसलिए लंका को सुवर्णमय वताया गया है। सुवर्ण की माया संसार में श्रेष्ठ मानी जाती है। लंका इस प्रकार स्वर्णमय है। इस लंकार से याने माया से ऊपर जो अवस्था है उसे अलंकार कहा जाना चाहिए परंतु माया-केन्द्र गहनों को ही हम लोग अलंकार कहते हैं। माया में फंसने के लिए मायाविरहित अलंकार का त्याग करना आवश्यक है। विना अलंकार का त्याग किये लंकार रूप लंका कैसे प्राप्त होगी ? रावण की लंका इस प्रकार की माया पूर्ण अवस्था है न कि कोई देश विशेष ! यह लंका सागर से परे थी। कौन-सा सागर ? संसार सागर ! कुछ लोग इस संसार का त्याग कर अध्यात्म की बातें करते हैं परंतु अन्तःकरण से वे माया का त्याग नहीं करते हैं। वे समझते हैं कि उन्होंने संसार सागर को पार किया है परंतु उनके मन में रावण जैसी कामिनी, काँचन और कीर्ति की अभिलाषा कायम रहती है इसलिए रावण की लंका सागर के परे दिखाई है। इसी माया रूप लंका पर भगवान राम चढ़ाई करते हैं। इसी मायारूप लंका में सीता अपने काञ्चन लोभ के कारण जा फँसती है, जिसे छुडाने के लिए राम को जाना पड़ता है और जिसकी खोज करने के लिए ब्रह्म-आचरण करने वाला ब्रह्मचारी हनुमान जाता है। यही रावण की लंका है।

अशोक वन :

सीता का हरण करने के पश्चात् रावण सीता को अशोक वन में रखता है। कारण सरल है। सीता काञ्चन मृग पर याने चञ्चल लक्ष्मी पर मोहित हुई थी। अब रावण सीता को संपूर्ण काञ्चन नगरी लंका में ही ले जाता है। अब सीता को बहुत आनन्द होना चाहिए कारण कि वह काञ्चन में ही स्थित थी। अब सीता को शोक करने का कोई कारण नहीं था, इसलिए रावण सीता को शोकरहित अशोक वन में रखता है। परन्तु सीता के संस्कार राम से पूर्णतया जुटे थे इसलिए बिना राम सीता को सदा शोक रहता है। अशोक वन में रहकर सीता राम के लिए शोक करती है। राम और रावण का यह

वृत्ति-युद्ध है न कि प्रत्यक्ष युद्ध ! रामायण का यह वृत्ति-युद्ध वासुदेवानन्द सरस्वती और महात्मा गांधी जानते थे परन्तु धूर्त पण्डितों ने उन महापुरुषों के मतों को विस्मरण और अनुल्लेख के गर्त में दबाकर समाज को एक महान सत्य से वंचित किया है। प्रस्तुत ग्रंथ उस सत्य का पुनः उद्घाटन है जिसे जानना आध्यात्मिक आवश्यकता है।

राम का सीता शोक :

उधर सीता अशोक वन में बैठकर राम के लिए शोक करती है और राम दण्डकारण्य में रहकर सीता के लिए शोक करते हैं। एक पत्नी के लिए साधारण पुरुष भी इतना शोक नहीं करेगा जितना कि राम सीता के लिए शोक करता है। उस समय का भारतीय समाज यह जानता था कि राम का सीता के लिए शोक यह ऐतिहासिक शोक नहीं है अन्यथा राम की देखा-देखी अन्य भारतीय भी राम जैसे अपनी पत्नी के लिए रोते और शोक करते। उसी द्रौपदी के पाँच पति यह आध्यात्मिक रूपक है, यह उस समय का भारतीय समाज जानता था अन्यथा द्रौपदी जैसी भारतीय समाज की नारियाँ द्रौपदी जैसे पाँच-पाँच पति से विवाह कर समाज के नीति-नियमों को अधिक जटिल करतीं। राम का सीता-शोक साधक की सात्विक-वृत्तियों के लिए शोक है जो कि साधक साधनाकाल में कभी-कभी नहीं पाता है। पुरानी अनुभूतियाँ नहीं पाने पर साधारण साधक हड़बड़ाता है यही राम का सीता-शोक है। वासुदेवानन्द सरस्वती कहते हैं—

राजसः स्वानुभूतिं तां सीतां यत्नाज्जहार ह।
रामः परात्मापि ततः स्वानुभूतिं वियोगतः॥३॥

राम इस प्रकार सीतारूप स्वानुभूतियों के लिए विलाप करते हैं जो कि उस समय के भारतीय जानते थे। रामायण का अधिकांश भाग इसी प्रकार सीता शोक से व्याप्त है जिसे छोड़कर हम रामायण का अन्य रहस्य देखें।

जटायू की मृत्यु :

सीता को रावण किस मार्ग से ले गया था यह रहस्य जटायू राम को बताता है और फिर अपना कर्तव्य कर जटायू देहत्याग करता है। मानव जैसे इस जटायू का अन्त्यसंस्कार मानव जैसा बताया है। आखिर रावण जटायू-युद्ध में जटायू याने वेद-ज्ञान मर जाता है और रावणरूप अहंकार सीता को लेकर माया-केन्द्र लंका में चला जाता है। मरने के पूर्व जटायू राम, लक्ष्मण को पम्पा सरोवर पर जाकर हनुमान और सुग्रीव से मित्रता करने के

लिए बताते हैं, जिस द्वारा राम सीता की खोज कर सकेगा। जटायू की अन्त्यक्रिया करते समय राम ने जटायू को पिंडदान किया, ऐसा वर्णन किया है। इसका आशय यह है कि उस समय के भारतीय समाज में पिंडदान की प्रथा चालू थी। जिस प्रथा पर भगवान गौतम बुद्ध अपने अनुचरों को अधिक ध्यान देने के लिए नहीं कहते हैं। जाबाली भी राम को इसी प्रकार पिंडदान पर अधिक जोर न देने के लिए कहता है। इसका आशय यह है कि उस समय के समाज में पिंडदान के पक्ष और विपक्ष में मत-प्रचार था।

अयोमुखी वध :

जटायू का श्राद्ध कर्म करने के पश्चात राम-लक्ष्मण क्रौंचारण्य में गये। उस आरण्य में एक गुफा में एक अयोमुखी नामक राक्षसी रहती थी। वह अचानक आकर विवेकरूप लक्ष्मण को अपनी बाहुपाश में जकड़ लिया और उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखा। यह आपत्ति देखकर राम-लक्ष्मण ने बहुत चेष्टा की और किसी प्रकार लक्ष्मण अयोमुखी राक्षसी के चंगुल से छूट पाये। फिर राम के कहने पर लक्ष्मण ने उस गन्दी राक्षसी के नाक,कान और स्तन काटे तथा उसे विकलांग कर वही पर मरने के लिए छोड़ दिया। रामायण और राम का यह करना यदि ऐतिहासिक माना जाय तो क्या अपने हर शत्रु को और विशेषत: स्त्रियों के लगातार नाक, कान और स्तन भी काटकर उनपर पाशवी अत्याचार करना राम के लिए शोभनीय है? क्या आज यदि कोई इस प्रकार बर्ताव करेगा तो उसे हम आदर्श मानेंगे? इसलिए रामचरित्र के बजाय ऐतिहासिक घटनाओं की आध्यात्मिक घटना का रुपकात्मक वर्णन है, यह बात माननी पड़ेगी अन्यथा ऐसे पाशवी अत्याचार करने वाले राम को संसार का कोई भी मूर्ख मानव भी आदर्श नहीं मानेगा। अयोमूखी याने विवेकहीन प्रचलित प्रथाएँ जो कि साधक के विवेक को ग्रास करना चाहती है जिनसे साधक अपना छुटकारा करे और अपनी लक्ष्मणरूप विवेक को उससे बचाये। अयोमुखी को इस प्रकार विद्रूप कर राम-लक्ष्मण वन में आगे बढ़ते हैं।

कबन्ध वध :

अयोमुखी को लेकर सब राक्षस अब लक्ष्मणरूप विवेक को अपना लक्ष्य बनाते हुए दिखाई देते हैं। थोड़ा सामने जाने के पश्चात और एक भयानक राक्षस मिलता है जिसे मुंड याने सिर नहीं था। उसे रामायणकार कबन्ध कहते हैं। कबन्ध याने शिराविहीन शरीर! क्या प्रकृति में शिर बिना शरीर

रह सकता है ? हाँ, अध्यात्म में रहता है। सिर याने बुद्धि का अर्थात् विवेक का उपकरण। शिरविहीन कवन्ध याने बुद्धिहीन, विवेकहीन साधक जो कि कवन्ध राक्षस जैसा ही है। ऐसा विवेकहीन कवन्ध सीधे लक्ष्मण को उठाकर अपने पेट में डालना चाहता है। रामसाधक ने किसी प्रकार अपने विवेकरूप लक्ष्मण को कवन्ध द्वारा निगल जान से वचाया और अपने कवन्धरूप बुद्धिहीन अवस्था को शूल से मार डाला। साधक श्रेष्ठ हनुमान को इसीलिए 'बुद्धिमतां वरिष्ठं' कहा गया है। भगवान गौतम बुद्ध भी बुद्धि पर अधिक जोर देने के लिए अपने मत सम्प्रदाय को बुद्ध कहते हैं। परम्परागत मूर्ख कल्पनारूप अयोमुखी और विवेकहीन कवन्ध को मारकर साधक अपना लक्ष्मणरूप विवेक सदा वचाकर रखें, यह कथा वताती है। कवन्ध मारा जाता है परन्तु मरने के पूर्व वह राम-लक्ष्मण को पम्पा सरोवर और जिसपर सुग्रीव और हनुमान ठहरे हैं उस ऋष्यमूक पर्वत के वारे में सम्पूर्ण जानकारी देता है। इसके अलावा कवन्ध राम को सीता-शोध के लिए सुग्रीव की सहायता लेने के लिए कहता है। राम के शत्रु भी राम को सुयोग्य सलाह देते हैं, यह रामायण की विशेषता है। हमारी बुरी वृत्तियाँ जो हमें शत्रु समान लगती हैं उसे नष्ट करने पर वही वृत्तियाँ साधक की मित्र वनती हैं, यह इन कथाओं का रहस्य है।

ऋष्यमूक पर्वत और पम्पासरोवर

शबरी भेंट : बौद्धमत का गौरव :

इसके वाद राम-लक्ष्मण मतंग वन में जाते हैं जहाँ रामभक्त शबरी रहती थी। राम आ रहे हैं, यह जानकर यह वृद्ध शबरी राम के लिए वेर लाती है। युगयुग से यह शबरी राम की राह देख रही थी। वह भाग्यशाली दिन उसके लिए आया था। मतंग वन के अच्छे वेर उसने भगवान राम की सेवा के लिए इकट्ठे किये थे। भगवान राम भी वड़े भक्त-वत्सल थे। शबरी के वेर राम ने बड़े प्रेम से खाये। अपने जंगली वेर भगवान राम वड़े प्रेम से खा रहे हैं, यह देखकर वृद्ध शबरी धन्य हो जाती है और वह राम-सेवा द्वारा निर्वाणपद प्राप्त करती है। कथा छोटी-सी है परन्तु उसमें रामायणकार बौद्धमत का आदर कर बौद्धमत में जो भी वेर जैसा अच्छा हिस्सा है वह रामसाधक द्वारा ग्रहण करने का विशाल वैदिक मत दिखाते हैं। शबरी-कथा का रामायणीन विज्ञान देखें।

'श' याने कल्याणकारक और 'वरी' याने वरेण्य वृत्ति। यह दो उपशब्द मिलाकर शबरी नाम बनाया गया है। शबरी याने कल्याणकारक वृत्तियों का ग्रहण करने की बुद्धि। शबरी के बेर याने शबरी मत को जो भी अच्छा हो वह राम-साधक ग्रहण करते हैं। बेर दिखने में छोटा परन्तु उसका खाद्य हिस्सा उस फल के ऊपरी छिलके में रहता है। बेर खाकर उसके अन्दर की गुठली का त्याग करना चाहिए क्योंकि उसको खाना कठिन है। बेर का पानी वाला हिस्सा उसका ऊपर का छिलका है जो कि अबाल वृद्ध खाकर तृप्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसके विरुद्ध श्रीफल याने नारियल का कठिन याने त्याज्य हिस्सा ऊपर है और वह कठिन कवच फोड़ने के बाद फिर उसके अन्दर का खाद्यभाग हम खा सकते हैं। बेर खाना नारियल से सुलभ है। बेर का ऊपरी हिस्सा खाकर अन्दर की गुठली फेंकनी चाहिए। यही बेर हनुमानादि बानरों का प्रमुख खाद्य है जो कि राम की पूर्ण सहायता करते हैं। बेर याने बौद्धमत है। यह कैसे, उसे हम देखें।

वरम् याने श्रेष्ठ, ग्रहण करने योग्य जिससे बेर शब्द निकला है। शबरी भी उत्तम वरी याने बेर खाने वाली थी। यह शबरी मतंग वन में रहती थी। मत+अंग दो उपशब्द इकट्ठे कर मतंग शब्द बना है। यह कौन-सा मत है जो कि शबरी का अंग है? यह मत बौद्ध मत है। बौद्ध मत का अंग याने मतंग वन है जहाँ कि शबरी रहती है। शबरी राम से मिलती है उस समय उसका भेश किसी श्रमणी जैसे था, ऐसा रामायण में स्पष्ट लिखा है। इसी प्रकार हनुमान और सुग्रीव के भेश भी बौद्ध भिक्षु जैसे थे, यह भी विचाररूप बेरों का वैदिक परम्परा के भगवान राम ने बड़े प्रेम से स्वीकार किया। वैदिक परम्परा की उदार वृत्ति रामायणकार अपनी कथा को बहुत सुन्दर ढंग से बताते हैं। बौद्ध शबरी के बारे में रामायणकार कितना आदर रखते हैं, यह देखें।

तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मं संस्थिताम्।
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः ॥३।७४।७॥
कच्चित्ते नियतः कोपः आहारश्च तपोधने।
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम् ॥३।७४।८॥
कच्चित्ते गुरू शुश्रूषा सफला चारूभाषिणी ॥३।७४।९॥
रामेन तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसंमता।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्युपस्थिता ॥३।७४।१०॥
अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया।
अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपुजिताः ॥३।७४।११॥

मया तु विविधं वन्यं संचितं पुरुषर्षभ ।
तवार्थे पुरुष व्याघ्र पम्पायास्तीर संभवम् ॥३।७४।१७॥
एवमुक्तः स धर्मात्मा शबर्या शबरीमिदम् ।
राघवः प्राह विज्ञाने तां नित्यमबहिष्कृताम् ॥३।७४।१८॥

रामायणकार शबरी को श्रमणी धर्मसंस्थिताम् और तापसी कहते हैं। जिसने अपना क्रोध और आहार का नियमन कर मन को शान्त किया है, जो चारुभाषण करने वाली है, ऐसे बौद्ध तापसी श्रमणी ने राम के लिए वन के फल लाये थे। भगवान राम ने बौद्ध श्रमणी शबरी के तत्वरूप फलों का बड़े प्रेम से स्वीकार किया। इस प्रकार उस समय वैदिक मत-प्रणाला और बौद्ध मत प्रणाली में कितनी सुहृदयता थी, यह दिखाई पड़ता है। बौद्ध मत के अच्छे तत्व शबरी के बेर जैसे वैदिक परम्परापूत राम ने बड़े प्रेम से स्वीकारे थे। आज भी उसी प्रकार बौद्ध मत सिद्धान्त और वैदिक परम्परा में पूर्व जैसा सामञ्जस्य रखने से आज के बहुत से प्रश्न सुलझ सकते हैं। पन्थ मतान्तरों में जो आज कटुता है वह उतनी नहीं रहेगी। रामायणकार का बौद्धमत आदर सबको बहुत कुछ सिखाता है।

जाबाली का राम को उपदेश इसी प्रकार बौद्धमत का परम्परागत वैदिक कर्मियों को उपदेश मानना चाहिए। यह जाबाली राम के पिता दशरथ की सभा का आश्रित दिखाया है। इसका आशय यह है कि बौद्धमत को उस समय के राजा आश्रय देते थे। वैदिक परम्परा का यह उदार स्वरूप आगे चलकर नहीं चला। इस अनुदार परम्परा में तत्पश्चात के बौद्ध मत-सम्प्रदाय का भी बहुत हिस्सा है जो कि आज भारत में नवबौद्धों द्वारा देखा जाता है। स्वयं गौतम बुद्ध उसी उत्तर वैदिक परम्परा के प्रहरी थे इसलिए गौतम बुद्ध के समय तक बौद्धिक मत वैदिक परम्परा की सनातन याने नित्य नूतन परम्परा मानी जाती थी। बुद्ध के पश्चात मतों का अभिनिवेश एवं अनुदार वृत्ति उत्पन्न हुई। स्वयं गौतम बुद्ध वैदिक याने बुद्धिप्रधान ज्ञानमार्ग के पक्षपाती थे इसलिए उन्होंने अपने मत का नामकरण बौद्ध किया। कर्मकाण्ड पर अधिक जोर न देकर सामाजिक मूल्य और सामाजिक प्रेम पर अधिक जोर देने के लिए भगवान बुद्ध कहते थे। यही प्रेम-परम्परा तत्पश्चात काल में ईसा ने चलाई परन्तु आज ईसा की प्रेम-परम्परा प्रेम के बजाय द्वेष की परम्परा बन गयी है। नव बौद्धों को अपनी पूर्व प्रेम-परम्परा कायम रखनी चाहिए अन्यथा द्वेष बुद्धि द्वारा वे विनाश के गर्त में चले जायेंगे।



किष्किन्धाकाण्ड

सप्तम अध्याय

ऋष्यमूक पर्वत एवं पम्पासरोवर के परिसर में :

मतंग वन के बेर खाकर भगवान राम अब बौद्ध मतों में से उत्तमोत्तम विचारों से सख्य करते हुए दिखाई देंगे। आगे चलते-चलते पम्पासरोवर के परिसर में उनकी हनुमान और सुग्रीव से भेंट होती है और उनके द्वारा लंका-विजय कर राम सीता को छुड़ाते हैं। हनुमान और सुग्रीव भिक्षु वेश में राम से मिलते हैं। भिक्षु वेश बौद्ध मत का वेश माना जाता है। आज बौद्ध धर्म जिस स्वतंत्र और आक्रामक पैंतरे में दिखाई देता है वैसा उस समय नहीं था ऐसा सब वानरों के द्वारा दिखाई देता है। सब वानर भिक्षु वेश में दिखाये गये हैं जिनके बल पर राम लंका पर विजय पाते हैं। इसलिए रामायण काल तक बौद्ध मत वैदिक परम्परा का अथवा हिन्दू धर्म का एक अविभाज्य घटक था, ऐसा दिखाई देता है। ऋष्यमूक पर्वत के पास जाने के बाद राम से सुग्रीव दूत हनुमान मिलता है और बाद में स्वयं सुग्रीव राम से मिलने आता है। उसका वर्णन किष्किधा काण्ड, सर्ग ३ श्लोक १ से ३३ में है।

वचो विज्ञाय हनुमान्सुग्रीवस्य महात्मनः।
पर्वता दृष्य मूकत्तु पुप्लुवे यत्र राघवौ ॥ ४ । ३ । १ ॥

कपिरूपं परित्यज्य हनुमान्मारुतनात्मजः।
भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धि तथा कपिः ॥ ४ । ३ । २ ॥

संपूज्य विधिवद्वीरो हनुमान्वानरोत्तमः।
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्य पराक्रमो ॥ ४ । ३ । ४ ॥

भिक्षु रूप प्रतिच्छन्नं सुग्रीव प्रिय कारणात्।
ऋष्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामचारिणम् ॥ ४ । ३ । २४ ॥

एवमुक्त्वा तु हनुमांस्यौ वीरौ रामलक्ष्मणौ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलः पुनर्नोवाच किंचनं ॥ ४ । ३ । २५ ॥

संस्कार क्रम सम्पन्नामद्रुताम्विलाम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम् ॥ ४ । ३ । ३३ ॥

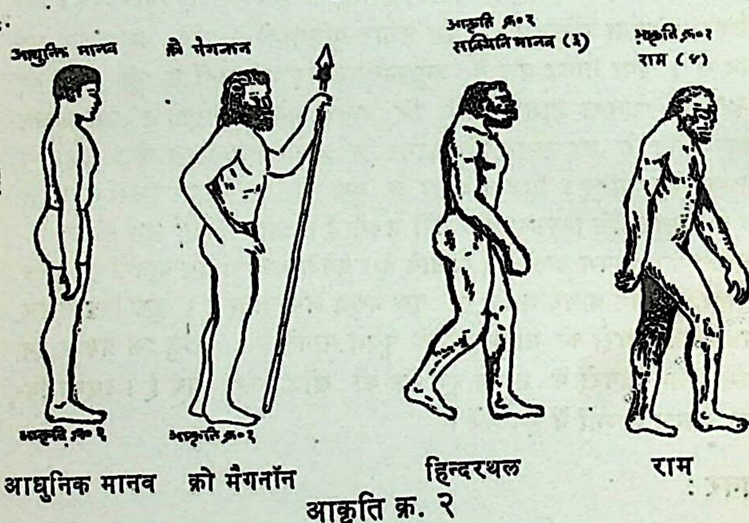
ऊपर निर्दिष्ट श्लोकों में दो वार हनुमान और सुग्रीव को भिक्षुरूप में दिखाया है। यह भिक्षु अथवा भिक्खु सम्प्रदाय बौद्ध मतावलंबी है। परन्तु उस समय के यह वानर भिक्खु आज के बौद्ध जैसे केवल पाली में रुचि नहीं रखते थे, वे अच्छी प्रकार से शुद्ध संस्कृत भाषा बोलते थे। राम-लक्ष्मण हनुमान के शुद्ध संस्कृत भाषण पर प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करते हैं। 'उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदय हारिणीम' याने हनुमान हृदयहारिणी और कल्याणकारी उच्चार करते थे। यही भिक्खु वेश का हनुमान अति बुद्धिमान वरन् बुद्धिमानों में श्रेष्ठ था। रामरक्षा कहती है—'मनोजवं मारुततुल्य वेगं। जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्॥' इस प्रकार बुद्धिमानों में श्रेष्ठ यह बानर हनुमान थे। क्या मानव वंश से अनुत्क्रान्त वानर बुद्धिमानों में भी श्रेष्ठ रह सकता है? इसका आशय यह है कि वानर याने हम मानते हैं उस प्रकार वानर योनि के यह रामायणीन वानर न होकर साधनारत श्रेष्ठ बुद्धिमान साधक होने चाहिए। सिवाय वानर के मुख की इस प्रकार रचना रहती है कि वे मानव जैसे बिल्कुल बोल नहीं सकते हैं। हनुमान तो शुद्ध संस्कृत उच्चारण कर भाषण करते हुए दिखाये हैं। इसके अलावा इन वानरों को पुच्छ बताया है जिसे बानर जाति का एक प्रमुख अंग माना है। कुछ विद्वान इन रामयणीन बानरों को मानव वंश के पूर्वज मानते हैं। परन्तु इस प्रकार इन रामायणीन बानरों में मानव पूर्व वंश की खोज करना व्यर्थ है। इसका विचार आगत स्तम्भों में हम करें।

बानर :

रामायण में वताई गई वानर सेना को देखकर कुछ विद्वान उनमें मानवपूर्व वानरवंश अथवा प्राथमिक नरबानर खोजना चाहते हैं। रामायणीन बानरों को पुच्छ दिखाई है और उन्हें संस्कृत मानव जैसे अच्छी संस्कृत भाषा बोलते हुए और विशेषतः किसी ब्राह्मण जैसे त्रिकाल स्नान संध्या वन्दन करते दिखाया है। क्या पुच्छ अवस्था के वानर सुसंस्कृत संस्कृत भाषा बोल सकते हैं और द्विज जैसे त्रिकाल संध्या वन्दन कर सकते हैं? क्या यह पुच्छवाले बानर सुसंस्कृत मानव जैसे सब सामाजिक और आध्यात्मिक व्यवहार कर सकते हैं? परन्तु इस कल्पना को रामायण में तनिक भी स्थान नहीं है। रामायण के बानर याने साधक की उच्च वायुतत्व की अवस्था है इसलिए साधक अतिशय बलवान, बुद्धिमान और नम्र चाहिए, जिस आदर्श को लेकर रामायणकार ने महाबली हनुमान का चित्रण किया है वह बलवान है, बुद्धिमान है और नम्र है। यह ध्यान में रखा जाय कि रामायणकाल आज से

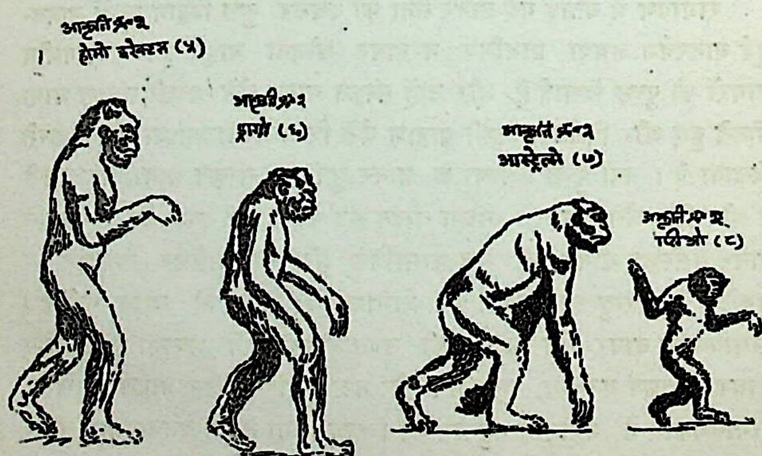
२६००-२७०० साल पूर्व का है। इतने अल्प समयं में मानव पूर्व नर बानर जाति का अस्तित्व रहना असम्भव है। मानवपूर्व नरबानर जाति के निर्माण के लिए लाखों नहीं वरन् करोड़ों साल लगते हैं जिसका जीवविज्ञान देखना उचित होगा। मानवपूर्व नर बानर जाति की ऐसी कई शाखाएँ हैं जिन्हें बिलकुल पुच्छ नहीं है और जो बोलना तो छोड़िए परन्तु कुछ शब्द उच्चारण भी नहीं कर सकती है। मानवपूर्व नर बानर जातियों में से कुछ जातियों का विचार करें।

आकृति क्र. १



आधुनिक मानव क्रो मैगनॉन हिन्दरथल राम

आकृति क्र. २



होमो इरेक्टस ड्रायो आस्ट्रलो पिलओ

आकृति क्रमांक १ एवं आकृति क्रमांक २ में दिखाये वानर अथवा नर-वानरों के चित्र देखिये। मानवों के पास आनेवाली वानर की एक प्लिओ नामक जाति है। इस जाति को भी पुच्छ नहीं है। यह वानर पेड़ों से नीचे उतरकर अपने पांवों के सहारे अपने हाथों द्वारा शरीर का तोल रखकर किसी प्रकार जमीन पर चलता था। यह बानर जाति ७-८ करोड़ साल पूर्व अस्तित्व में थी जिसकी हड्डियों द्वारा उसका अस्तित्व जाना जाता है। आज इस जाति के बानर अस्तित्व में नहीं हैं। एक समय यह जाति इस धरातल पर समृद्ध थी जो प्रकृति के संघर्ष में आज नष्ट हो गई है। केवल उनके अस्थिपाषाण (Jossils) द्वारा उनका पता चलता है। इस प्लिओ वानर जाति की उत्क्रान्ति होकर उस प्लिओ द्वारा एक नयी उत्क्रान्त जाति उत्पन्न हुई थी जिसका नाम वैज्ञानिकों ने आस्ट्रेलो रखा है। यह आस्ट्रेलो प्लिओ से अधिक वड़ा था और उसके हाथ प्लिओ के हाथों से अधिक लम्बे थे जो जमीन से लगते थे। यह आस्ट्रेलो अपने सब व्यवहार जमीन पर ही करता था। आस्ट्रेलो कुछ शब्द उच्चारण करता था जो हूप जैसा था। प्लिओ तो वानर जैसा केवल हूप-हूप करता था। प्लिओ और आस्ट्रेलो को पुच्छ विल-कुल नहीं थी। फिर सपुच्छ रामायणीन वानर उस प्रकार मानव जैसा बोल सकते हैं और व्यवहार कर सकते हैं ?

आस्ट्रेलो का भेजा प्लिओ से थोड़ा अधिक बड़ा और उत्क्रान्त था। आस्ट्रेलो अपने शत्रुओं को मार भगाने के लिए पेड़ों की डालियों का उपयोग करता था। आस्ट्रेलो से उत्क्रान्त नर बानर जाति याने ड्रायो है जो कुछ करोड़ साल पहले इस धरातल पर अपना आस्तित्व रखा करते थे। यह ड्रायो जाति आस्ट्रेलो से अधिक सीधा चलता था और अपना अन्न प्राप्त करने के लिए अथवा शत्रु से लड़ने के लिए पत्थर और डालियों का उपयोग करता था। ड्रायो को भी पूंछ नहीं थी और अपने विचार प्रकट करने के लिए वह चकल्ल जैसे दीर्घ आवाज को उच्चारण करता था। प्लिओ, आ-स्ट्रेलो और ड्रायो पूर्ण शाकाहारी थे याने पेड़ों की पत्ती और फल-फूल वे खाते थे। प्लिओ से लेकर सब मानव वानर जातियाँ पूंछ विहीन हैं इसलिए रामायण कालीन बानर जाति इन मानव सन्निध वानर जातियों से भी बहुत अनुत्क्रान्त और नीच मानी जानी चाहिए। समय पर ड्रायो अपने शत्रुओं पर गुर्राता था और शत्रुओं से मुकाबला करने के लिए वह पत्थर और डा-लियों का उपयोग अधिक कुशलता से करता था। ड्रायो अधिक समूहशील था और ड्रायो में पति-पत्नी की कल्पना अधिक विकसित हुई थी। आस्ट्रेलो से

ड्रायो अधिक बलवान और बड़ा था । गुर्राता और विशिष्ठ ढंग से दीर्घ आवाज कर ड्रायो अपने भाव प्रकट करता था। आज ड्रायो अपने अस्थिपाषाण द्वारा ही पाया जाता है। ड्रायो आज प्रत्यक्ष नहीं है।

ड्रायो से बढ़कर अधिक उत्क्रान्त अर्द्धमानव जाति याने होमो इरेक्टस मानी जाती है जो आज अस्तित्व में नहीं है। इनके अस्थि पाषाणों द्वारा ही यह अर्द्धमानव जाति पायी जाती है। यह जाति ड्रायो से अधिक सीधी चलती थी। इसकी टाँगों में अधिक उत्क्रान्त होकर यह जाति लगभग मानव जैसे सीधा चलती थी परन्तु इसका शिर थोड़ा आगे झुका हुआ था और चेहरा मानव से बढ़कर बानर के ढंग पर अधिक था। ड्रायो से इसका भेजा अधिक बड़ा और उत्क्रान्त था । होमो इरेक्टस में पति-पत्नी का संस्कार अधिक उन्नत था और वह लड़ाई में पत्थरों से बने हुए औजारों का उपयोग करना सीखा था। यह शाकाहारी अवश्य था परन्तु समय पर वह अपने आप भुना हुआ मांस भी खा लेता था। कुछ शिकार भी कर लेता था। आदि मानव की बुद्धि इस प्रकार वस्तु-अभाव के कारण मांसाहार करने लगी थी। होमो-इरेक्टस अपने भाव व्यक्त करने के लिए कुछ शब्दोच्चार भी कर लेता था। और अर्द्धमानव जाति के हिसाब से होमो इरेक्टस अधिक समाज-प्रिय था। इसे पूंछ नहीं थी । इसके नितंब अधिक पुष्ट थे । इसीलिए वह ड्रायो से अधिक सीधा चलता था।

राम यह होमो इरेक्टस से अधिक उत्क्रान्त अर्द्धमानव था। यह काफी सीधा चलता था परन्तु गर्दन थोड़ी आगे झुकी हुई थी। इसके चेहरे पर अधिक मानव-भाव थे। यह लगभग मानव जैसे पुष्ट बाहु और टाँगों का था। यह कुछ-कुछ बोलकर अपने भाव व्यक्त करता था! यह लकड़ी को पत्थर आदि बांधकर उसका उपयोग गदा जैसे करना सीखा था। राम प्राथमिक अवस्था की खेती करना जानता था। यह पत्तों से और कुछ लकड़ियों द्वारा अपनी कुटिया भी बना ले सकता था। इसकी आँखों में बुद्धिमता की झलक थी। इसका सीना अधिक पुष्ट था और इसकी मादा के स्तन भी अधिक पुष्ट थे। एक भारतीय वैज्ञानिक ने मानव सदृश्य इस जाति का उसके कापाल द्वारा शोध किया। उस भारतीय वैज्ञानिक को राम का कापाल हिमालय के परिसर में मिला और भारतीय वैज्ञानिक ने इस अर्द्धमानव जाति का नाम राम रखा। परन्तु रामायण जैसे बानरों के सदृश्य उसे पूंछ नहीं थी। लगभग १-२ करोड़ साल पूर्व यह राम नामक अर्द्धमानव जाति इस धरातल पर विराजमान थी। आज यह राम जाति

अस्तित्व में नहीं है, है केवल उसकी पाषाण हड्डियाँ जिसके द्वारा वह जाना जाता है। फिर रामायणीन वानरों का क्या स्थान है? जो अढाई सहस्त्र साल पूर्व रामायण द्वारा भगवान राम की सहायता करते थे?

राम के पश्चात अधिक उत्क्रान्त अर्द्धमानव जाति हिन्दरथल थी। यह जाति लगभग मानव जैसे ही थी। इसके नितम्ब अधिक पुष्ट थे इसलिए यह राम से अधिक दौड़ सकता था और सीधा चलता था। इसका मुख वानर की मर्यादा लांघकर मानव जैसी शकल का था। यह किसी प्रकार अपना मकान बना लेता था और उसमें आश्रय लेता था। इसके सर पर अधिक लम्बे बाल थे। इसकी मादा अधिक लम्बे बाल वाली और पुष्ट स्तनों की थी। इन सबों के कुल्हे राम जाति से अधिक पुष्ट थे जिस कारण इसे हिन्दरथल कहा जाता है। मृत व्यक्ति के ऊपर कुछ संस्कार कर उसे एक गोलाकार पत्थर रचना में रखकर मृतक के प्रति अपने भाव प्रकट करना, यह जानता था। इसके संपूर्ण व्यवहार अब भाषण द्वारा होते थे। यह घर बना कर रहता था। आज के कुछ जंगली मानव जातियों में अधिक मात्रा में हिन्दरथल मानव पाया जाता है। शिकार कर मांस खाना और कुछ फल अनाज खाकर वह अपना निर्वाह चलाता था। हिन्दरथल मानव को थोड़ी-सी दाढ़ी और मूँछें भी बढ़ गई थीं: परन्तु मादा को मूँछ-दाढ़ी नहीं थी। मादा घर सम्हाल कर आपत्यों की देखभाल करती थी। पति-पत्नी के सम्बन्ध अधिक उन्नत और दृढ़ थे। विवाह-व्यवस्था द्वारा नर-नारी दाम्पत्य जीवन चलाते थे।

हिन्दरथल के पश्चात उत्क्रान्त मानव जाति आती है मेगनान जो कि आज का असंस्कृत मानव है। प्राचीन जमाने में यही मेगनान जाति आपस में लड़कर युद्ध कर अपना साम्राज्य स्थापित करने की चेष्टा करती थी। मिस्र, भारत, यूनान आदि प्राचीन देश इसी जाति के निवासस्थान थे। धर्म की भावना इसमें उदित हुई थी जिस कारण उनमें सदा लड़ाइयाँ चलती थीं। खेती, व्यापार, नौकायन, धातुशास्त्र, वस्तुशास्त्र, औषधिशास्त्र, समाजशास्त्र, ग्रहगोलशास्त्र आदि मानवीय विज्ञान में यह जाति पूर्वापेक्षा अधिक उन्नत थी। ज्योतिषशास्त्र और धर्मशास्त्र का इन्हें अधिक ज्ञान था। परन्तु सदा युद्ध कर आपस में मारकाट करने में इन्हें अधिक रुचि थी। मेगनान जाति में भाषाशास्त्र भी काफी मात्रा में बढ़ गया था। भाला, तलवार, धनुषबाण आदि शस्त्रों का वे युद्ध के समय उपयोग करते थे। यह जाति अब शाकाहार से अधिक मांसाहारी बनी थी। यह जाति आज के मानवों द्वारा उपस्थित

है जो आज का अर्वाचीन मानव कहलाता है। आज का मानव अपने मेगनान भाई को लेकर ७ लाख साल से ऊपर अपना जीवन जी रहा है।

प्लिओ से लेकर विद्यमान मानव तक रामायण के वानर कहीं भी अपना स्थान नहीं ले सकते हैं। इसलिए रामायण के वानर प्रत्यक्ष वानर न होकर अन्य कुछ साधना-अवस्था होनी चाहिए जिसके बारे में योगीराज वासुदेवानन्द सरस्वती अपनी रामायण में कहते हैं—

'तसो बानरसह वृत्तिसैन्येन च हनुमतो।'

वानर याने साधक में स्थित वृत्तियाँ हैं जो कि मोहरूप लंका जलाने के लिए और सात्विक अनुभूतिरूप सीता को छुड़ाने के काम में आती है। वानरों को रामायणकार बौद्ध भिक्षुओं की संज्ञा देते हैं। उस समय कुछ बौद्ध भिक्षु अवश्य ऐसे थे जो वन में रहकर अत्यन्त सादगी का जीवन जीते थे और सदा कन्दफल मूलादि खाकर तपस्या करते थे। समस्त वानर सेना इसी प्रकार कन्दमूलफल-खाकर वन में रहनेवाली दिखाई है। यहीं वानर हैं कि जो सीतारूप सात्विक अनुभूतियों का पुनः रामरूप साधक से मिलन करा देते हैं। बौद्ध मत द्वारा भी उत्तम सात्विक साधनाएँ प्राप्त हो सकती हैं, यह इस कथा द्वारा रामायणकार को सुझाना है। इन्हीं वानर भिक्खुओं के कारण राम अपना स्वानन्द साम्राज्य मिलाकर अयोध्या के सिंहासन पर आरूढ हो सकते हैं। योगेश्वर वासुदेवानन्द सरस्वती कहते हैं—

निहत्य रावणं स्वानुभूतिं सीता प्रगृह्यच।
रामः स्वरूप साम्राज्येऽभिषिक्तोऽरीरमत्तया ॥९॥

बौद्धमत विचार :

शबरी कथा से रामायण में बौद्धमत की आहट लग जाती है। रामायण-काल में आज जैसा बौद्ध मत स्वतन्त्र धर्म नहीं था। वैदिक जीवन का एक अंग था इस नाते उस समय का बौद्ध मत था, इसीलिए रामायणकार श्रमणी शबरी जिस वन में रहती थी उसे मत अंग याने मतंग वन कहते हैं। तदन्तरकाल में बौद्धों ने अपना मत स्वतन्त्र धर्म इस नाते खड़ा किया था। हजारों सालों की प्राचीन वैदिक परम्परा में कालवश कुछ बुराइयाँ आना स्वाभाविक थीं जैसा कि आज सर्व धर्मों, मजहबों में आयी हैं। उन गलत धार्मिक कल्पनाओं को ठीक ढंग पर लाने का महान कार्य भगवान गौतम बुद्ध ने उस समय किया था। ज्ञानमय वैदिक परम्परा के कुछ लोग वेदवचनों का गलत आशय निकाल कर केवल कर्मकाण्डी और स्वर्ग की झूठे कल्पनाओं में मस्त रहकर

यज्ञयाग कर उसमें गरीब जानवरों की हत्या करने में धन्यता मानते थे। धर्म के नाम पर गरीब जानवरों की हत्या होना वैदिक परम्परा के पक्षपाती बुद्ध को पसन्द नहीं था। मृत्यु के पश्चात पाये जानेवाले कल्पनामय स्वर्ग के लिए केवल यज्ञयाग कर उसमें पशुहिंसा करना और गरीब भूखे लोगों के पेट में अन्न न डालकर यज्ञरूप अग्नि में अन्न और घृत की आहुतियाँ देना वैदिक परम्परा की मखौल थी। दीन दुखियों के हिमायती भगवान गौतम बुद्ध यह देख नहीं सकते थे। लिए एक महापुरुष वैदिक परम्परा की गलत धारणाएँ सुधारना चाहता था।

एक समय की बात है। एक गडेरिया कुछ मेमनों को एक यज्ञस्थान पर खदेढ़ते हुए ले जा रहा था। उनमें एक छोटा-सा मेमना था जो कि लंगड़ा होने से चल नहीं सकता था। वह गडेड़िया उस मेमने को लकड़ी से मार मारकर खदेड़ रहा था जिससे वह मूक बच्चा बहुत व्याकुल हो उठा था। उसी मार्ग से गौतम बुद्ध जा रहे थे। उन्होंने उस मेमने की वह हालत देखी और कृपा दृष्टि से उन्होंने उस वत्स को अपनी गोद में उठाकर उन मेमनों के साथ यज्ञस्थान पर गमन किया। यज्ञस्थान पर यज्ञ करनेवाले याज्ञिक इकट्ठे हुए थे जिनसे बुद्ध ने प्रश्न किया कि वेदों में मेमनों को मारने के लिए कहाँ-कहा है? याजकों ने तुरन्त वेदवचन बताया—

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां ब्रह्वीः प्रजाः प्रसविर्त्रीं स्वरूपाः।
अजोह्योको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोमामजोन्यः॥

परन्तु ऊपरनिर्दिष्ट श्लोक में उपयोगित अजा शब्द का आशय मेमना नहीं वरन् श्वास रहित समाधि-अवस्था अथवा भगवान की अजन्मा अवस्था है जिसे समाजधारणा के लिए मारना याने नष्ट करना आवश्यक है यह सत्य बुद्ध ने समझाया। समाज के दुःख और दारिद्रय नष्ट करने के लिए महापुरुषों ने अपने अजन्मा समाधि-अवस्था का भी त्याग कर समाज-सेवा में रत रहना चाहिए, यह गौतम बुद्ध ने उपस्थित लोगों को समझाया। भगवान गौतम बुद्ध का जीवन उसी प्रकार समाजसेवारत और दयामय था इसलिए बुद्ध के वेद-वचनों का आशय उपस्थित लोगों ने माना और सारे सच्चे बौद्ध बने।

भगवान गौतम बुद्ध का कथन सही था जिसका अनुभव आज भी हम लोग ले रहे हैं। वेदवचनों का गलत आशय तो हमलोग निकालते ही हैं परन्तु वेदज्ञान को सरल और रंजक बनानेवाले रामायण और महाभारत का भी आशय उसी प्रकार गलत निकाल कर उन गलत तत्वों के अनुसार अपना जीवन-यापन करना, यही अपना धर्म मानते हैं। निरर्थक कर्मकाण्डों को त्याग कर अपना जीवन ज्ञानमय बनाने के लिए गौतम बुद्ध अपनी निर्मल

बुद्धि का आश्रय लेने के लिए लोगों को कहते थे। गीता को भी यही बुद्धि प्रधान मार्ग अधिक पसन्द है। इसी सद्बुद्धि का मार्ग याने बुद्ध मार्ग गौतम बुद्ध चाहते थे। काल्पनिक स्वर्ग की कल्पना के लिए समाज के लोगों को कष्ट देना उन्हें पसन्द नहीं था इसलिए वे कहते थे, "तुझे स्वर्ग, आत्मा आदि से क्या करना है? तूं प्रथम अपने दुःख दूर कर और तदन्तर समाज के मन को शान्त करने के लिए तूं प्रथम अनासक्त वृत्ति से रह और मन को अपने काबू में रखकर दुःखों को दूर कर।' यह बुद्ध का सरल सीधा तत्वज्ञान था जो कि साधारण जनों को आकर्षित करता था। गौतम बुद्ध ने अपना सारा जीवन इसी आर्य तत्वों के प्रचार में लगाया जिस कारण बुद्धमत के अनुयायी अनेक संख्या में संसार में पैदा हुए। बुद्धमत में कर्मकाण्ड पर जोर नहीं है वरन् व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार एवं मनः संयम पर अधिक जोर है। व्यक्ति के जीवन में उसे दुःख देना और उस पर अन्याय करना, और उसकी मृत्यु होने के पश्चात उसके कथित जीवात्मा की शान्ति के लिए अच्छे पकवान वनाकर उसे पिंडदान द्वारा अथवा ब्राम्हण भोजन द्वारा वह अन्न परलोक में पहुँचाने का व्यर्थ यत्न करना भगवान गौतम बुद्ध को मान्य नहीं था।

भगवान गौतम बुद्ध के इन आर्य तत्वों का उस समय के लोगों ने बहुत प्रेम से स्वीकार किया इसीलिए उस समय वौद्धमत का समाज पर प्रभाव था। परन्तु यह ध्यान में रहना चाहिए कि उस समय का वौद्धमत समाज कुल वैदिक समाज से अपना आस्तित्व विभिन्न नहीं मानता था जो कि आज दिखाई देता है। इसीलिए शबरी और बानरों को श्रमणी, श्रमण और भिक्खु दिखाकर उनके द्वारा अपने हृदय-रूप सीता को पुनः प्राप्त करने की कथाएँ रामायणकार ने अपने ग्रन्थ में वड़ी कुशलता से लिखी है जिस कारण उस समय सारे वैदिक समाज ने फिर भले ही वह समाज परम्परागत वैदिक अथवा बुद्धमत हो भगवान वाल्मीकि रचित रामायण का वड़े प्रेम से स्वीकार किया था। यही कारण है कि उस समय के सारे संसार में रामायण ग्रंथ बहुत लोकप्रिय बना था। रामायणकाल के समय संसार में बौद्धमत का वहुत जोरों से प्रचार था जिस कारण रामायण ग्रंन्थ भी संसार में लोकप्रिय बना। इसके कई ऐतिहासिक प्रमाण प्राचीन इतिहास एवं उत्खनन द्वारा आज प्राप्त हो रहे हैं।

हाल में प्राचीन रोम शहर का उत्खनन हो रहा है। भूमि के अन्तर्गत दीवारों पर उस समय के चित्रित किये गये रामायण के शूत्र मिलते हैं, सुन्दर

शिवलिंग और शालुकाएँ पायी जाती हैं। पुरातन सिसिली में दीवारों पर गाय चरानेवाले भगवान गोपालकृष्ण के चित्र मिले हैं। यह निशान यहीं बताते हैं कि प्राचीन संसार में वैदिक परम्परा के अन्तर्गत ही बुद्धमत था। अपने उदार मत परम्परा के अनुसार उस समय के वैदिक समाज ने गौतम बुद्ध को दसवाँ औतार मानकर बुद्धमत का स्वीकार किया था। परन्तु आज के बौद्धजन सब प्रकार से अपने समाज को भारतीय हिन्दू समाज से एकदम अलग मानकर अपना नया राष्ट्र बनाने के सपनों में मशगुल हैं। यह संकीर्ण और अनुदार वृत्ति किसी बुद्धिप्रधान समाज को आगे नहीं बढा सकती। एक समय इस प्रकार की राष्ट्र-विरोधी और साम्प्रदायिक वृत्ति के कारण भारतीय बौद्ध समाज नष्टप्रायः हो गया था। हमारे बौद्ध बान्धव अब इतिहास की पुनरावृत्ति न करें इसी में बौद्धमत की विजय है। संसार को बुद्धिप्रधान बौद्धमत की एवं संतुलित, संयमी वृत्तिप्रधान जैनमत की बहुत आवश्यकता है। दयामय भगवान गौतमबुद्ध और पूर्ण संयमित जीवन का ऐसे महापुरुषों के जीवनदर्श की आवश्यकता संसार को हमेशा रहेगी। राम और कृष्ण यह आदर्श जीवन है इसलिए राम और कृष्ण का आदर्श भी संसार के सब मानवों का आदर्श रहेगा फिर वह मानव संसार के किसी भी देश, मजहब और राजनैतिक मत का हो। रामायण-महाभारत संसार के आदर्श ग्रन्थ हैं।

मुसलमान राष्ट्र रहकर भी हिन्देशिया देश स्वयं का आदर्श राम मानता है। स्वयं के देश को आदर से रामायण देश मानता है, यह बात संसार के विचारवान लोग ध्यान में रखें। यह कोई आवश्यक नहीं है कि राम को आदर्श मानने के लिए और रामायण को अपना राष्ट्रीय आदर्श ग्रन्थ मानने के लिए व्यक्ति हिन्दू ही हो। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों से ऊपर उठकर रामायण ने एक समय अपना आदर्श संसार में कायम रखा था। आज फिर से उसी बुद्धिप्रधान संतुलित व्यवहार की अपेक्षा रामायणकार करते हैं। आदिकवि वाल्मीकिजी का रामआदर्श फिर से संसार में अपना नित्यनूतन सनातन रूप लेकर उज्वल जीवन जिये, यहीं इच्छा है।

राम-हनुमान भेंट :

रामलक्ष्मण पम्पा सरोवर तक सीता के द्वारा गिराये हुए अलंकार देखते-देखते सीता की खोज करते हुए आये। दूर से एक बलवान वानर आते हुए उन्होंने देखा जिसका नाम हनुमान था। समस्त प्राणीमात्रों में केवल मानव को ही हनु याने ठुड्डी रहती है इसलिए रामायणकार रामभक्त साधक को अपनी भाषा में हनुमान कहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वानर मानव जैसे

साधक थे। उनकी दिखाई गई बानर जाति याने उच्च वायुतत्व के साधकों का समाज है, यह ध्यान में रखना आवश्यक है। वायुतत्व में ऊंचे साधकों को भयानक गति की अनुभूति आती है जिस कारण गति को दिखानेवाली पूंछ रामायणकार बानरों को दिखाते हैं। परन्तु यह बानर और खास कर हनुमान को रामायणकार बलवानों में और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ मानते हैं। जो उच्च साधक आश्चर्यकारक अवस्था में याने 'वा' 'नर' रहते हैं उन्हें रामायणकार बानर कहते हैं। रामायणकार की यह सब कल्पनाएँ पशुभाव वाले माने हुए बानर पूर्ण नहीं कर सकते हैं। और यह बानर बौद्ध भिक्षु के देश में और भिक्षु जैसे वनवास में रहने वाले संयमित जीवन के और कन्दमूलफल खानेवाले तापसी दिखाये हैं। रामायणीन बानर याने वैदिक बुद्धमत के प्रतीक माने जाने चाहिए जिनके सहारे राम भगवान बन रामायण पूर्ण कर सकते हैं। इस कथा द्वारा रामायणकार बुद्ध जीवन को कितना ऊँचा मानते थे, यह ध्यान में रखना आवश्यक है। यही उदार वैदिक परम्परा नवबौद्ध मतवादी चलाये, यह उनके मानवीय विचार परम्परा के लिए उचित है।

पम्पा सरोवर :

सीता के अलंकार खोजते हुए रामलक्ष्मण पम्पा सरोवर पर आकर उपस्थित होते हैं। पम्पा सरोवर के निकट ऋष्यश्रृंग पर्वत था जिसपर किष्किन्धा नगरी के राजा बाली का निष्कासित भाई सुग्रीव रहता था। सुग्रीव का दास और मित्र हनुमान नामक एक बानर था। किष्किन्धा नगरी यह बानरों की नगरी थी जिसमें इस प्रकार भिक्खु तापसी रहा करते थे जिनका वेश बौद्ध भिक्खु जैसा रहा करता था, यह रामायणकार बनाते हैं? रामलक्ष्मण जैसे सुन्दर मानवों को दूर से देखकर अपना स्वामी सुग्रीव के काम वे आ सकते हैं यह मानकर बुद्धिवान बलश्रेष्ठ बानर हनुमान राम-लक्ष्मण के पास आता है और उन्हें कुशल प्रश्न पूछता है। एक बौद्ध भिक्षु की पोशाक पहने हुए एक बानर को आते हुए देखकर प्रथम राम हनुमान के बारे में साशंक थे परन्तु हनुमान का शुद्ध संस्कृत भाषा प्रचुर भाषण सुनकर और हनुमान का सुसंस्कृत व्यवहार देखकर राम लक्ष्मण से कहते हैं—

'नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम्॥ ४। ३। ३३॥

राम कहते हैं, लक्ष्मण यह वानर कितनी स्पष्ट और हृदयहारिणी व्याकरणपूर्ण संस्कृत भाषा बोलता है। देखो!' इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय के भिक्खु इतनी अच्छी संस्कृत भाषा नहीं बोल सकते थे, उनकी व्यवहार भाषा प्राकृत अथवा पाली रहती थी जिस भाषा का पुरस्कार बौद्धों ने अपने सारे वाङ्मय में किया था।

रामायण द्वारा यह भी दीख पड़ता है कि परम्परागत वैदिक समाज को स्वीकारनेवालों को उस समय मानव कहते थे और अवैदिक परम्परा का स्वीकार करनेवालों को वानर अथवा राक्षस कहा करते थे जैसे कि हनुमान सुग्रीव आदि जनों को बानर कहा गया है और बौद्धमतप्रधान वैदिक जीवन को स्वीकार करनेवाले ब्राह्मण रावणादि लोगों को राक्षस कहा गया है। बानर याने आश्चर्यकारक प्रगति करनेवाले तपस्या लीन भिक्षु और राक्षस याने वैदिक बुद्ध मतों को स्वीकार कर स्वयं को ब्राह्मण माननेवाले पढ़त पण्डित वृत्ति के रावणादि पाखड़ी लोग थे। उस समय की समाज-रचना को देखकर रामायणकार बानर और राक्षसों के जीवन पर अपनी कुशल शैली से कथारचना करते हैं। अब पम्पा क्या है, यह देखें।

'प' याने पतन और 'अम्ब' याने जलतत्व अथवा आपतत्व। जिस साधक का आपतत्व तक पतन हुआ है उसकी उस अवस्था को रामायणकार पम्पा सरोवर कहते हैं। सरोवर शब्द जलतत्व अथवा आपतत्व का निदर्शक है। भगवान राम सूर्यवंशी याने तेजसतत्व के माने जाते हैं। राम अपनी साधना-प्रगति छोड़कर केवल सात्विक अनुभूतिरूप सीता को ही सदा चाहते है। याने ऊँचे तेजस तत्व का यह अपने तत्व से पतन था। राम कुछ चाहते थे। चाहना आपतत्व का गुण है इसलिए जिस साधक को मुक्त होना है उसे कुछ चाहना नहीं चाहिए। इच्छा करना पतन का मार्ग है। तेजस तत्व साधक राम का यह पतन था इसलिए रामायणकार भगवान राम की कथा द्वारा पम्पा सरोवर पर भेजते हैं। सुग्रीव का दूत हनुमान भी अपने स्वामी-कार्य के लिए कुछ चाहता था। सुग्रीव अपनी पत्नी और राज्य चाहता था इस बारे में राम उसे अवश्य मदद कर सकेंगे, यह वह जानता था। सीता की खोजकर लंका पर धावा करने के कार्य में सुग्रीव उन्हें मदद कर सकता है, यह राम भी चाहते थे। इस प्रकार इच्छा कर राम तेजस तत्व से नीचे आपतत्व में आते हैं और उच्च वायुतत्व का बानर सुग्रीव चाहता है अपनी उच्च वायुतत्व की अवस्था छोड़कर आपतत्व की अवस्था में आना चाहता था। इसलिए राम और सुग्रीव दूत हनुमान की भेंट आपतत्व दर्शक पम्पा पर रामायणकार अपनी अजोड़ कथाशैली द्वारा करते हैं।

पम्पा सरोवर पर इस प्रकार राम-हनुमान भेंट होती है। हनुमान राम से कहते हैं, 'हे नर रूप धारी तापसी आप उत्तम कुल के दीखते हैं। मैं बानर श्रेष्ठ सुग्रीव का दूत हूँ। मेरे स्वामी सुग्रीव को उनके बड़े भाई बाली ने उनकी पत्नी को अपने पास रखकर उन्हें किष्किन्धा राज्य से बाहर खदेड़ दिया है। उनकी पत्नी और उनके हड़पे गये राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए आप सहायक बन सकते हैं। आप सुग्रीव की सहायता करें। आप के उपकार से छुटकारा पाने के लिए मैं और मेरे स्वामी सुग्रीव आप की क्या सेवा कर सकते हैं, यह कृपया बताइये।' भगवान राम भी अड़चन में थे। उन्हें सीता की खोज करने के लिए ऐसे उपकारी लोगों की आवश्यकता थी ही। वे हनुमान से उनके स्वामी सुग्रीव से भेंट कराने के लिए कहते हैं। बड़ी प्रसन्नता से हनुमान सुग्रीव को पम्पा सरोवर के तट पर लाते हैं। उस समय सुग्रीव अपना भिक्षु वेश त्याग कर एक सुन्दर मानव का रूप लेते हैं और राम से भेंट करते हैं। राम सुग्रीव को उनकी छिनी गयी पत्नी और किष्किन्धा राज्यगद्दी वापस मिला देने का वचन देते हैं परंतु उसके बदले में सुग्रीव सीता का शोध कर उसे पुनः प्राप्त कराने के कार्य में राम की सहायता करें, यह शर्त परस्पर मंजूर हुई।

सुग्रीव बाली कथा :

बाली और सुग्रीव दो भाई थे। वे बानर जाति के बताये गये हैं जिन पर बानर जाति के सामाजिक नियम लागू होते थे। बानरों में यह नियम था कि बड़ा भाई राजगद्दी पर बैठने पर छोटे भाई को उसकी सर्वोपरि सेवा करनी चाहिए। उनके राज्य की राजधानी किष्किन्धा नगरी थी। जो भी किष्किन्धा नगरी का राजा बनेगा उसकी पत्नी तारा ही रहेगी जो कि उस समय बानर राज्य नियमानुसार बाली की पत्नी थी। दोनों भाई एक जैसे दीखते थे और उनका परस्पर बहुत प्रेम था। किष्किन्धा का एक शत्रु था जिसका नाम था दुन्दुभि। वह हर साल किष्किन्धा नगरी पर धावा बोल कर नगरी के लोगों को आतंकित करता था। हर साल जैसे इस समय दुन्दुभि किष्किन्धा पर आक्रमण करने आया था। इस दुन्दुभि शत्रु का सदा के लिए बन्दोबस्त करने का सोच कर बाली दुन्दुभि का पीछा कर उसे खतम करने का सोचता है। इस प्रकार दुन्दुभि का पीछा करते-करते बाली और सुग्रीव एक छोटे-से बिल तक आते हैं। अपनी जान बचाने के लिए इतने-से छोटे बिल में दुन्दुभि जैसा महान बलाढ्य राक्षस घुस पड़ता है।

क्या एक दीर्घकाय राक्षस बिल जैसे अति सूक्ष्म छेद में जाकर वहाँ पर एक साल तक बड़े सुखचैन से रह सकता है? हाँ बड़े सुख में! दुम्दुभि का बिल के अन्दर घुस पड़ना देखकर बाली भी दुम्दुभि का पीछा करते हुए उस बारीक बिल में घुस पड़ा। बिल में जाने के पूर्व बाली ने उसे बाहरी शत्रुओं से पीड़ा न हो इसलिए भाई सुग्रीव को उस बिल-द्वार पर खड़े होकर बाली की रक्षा करने के लिए कहा। सुग्रीव ने बात मान ली। परंतु घटना कुछ विलक्षण हुई। दुम्दुभि का पीछा करते हुए बाली बिल में घुस पड़ा। वह बहुत दिन वापस नहीं आया। छः महीने हो गये परन्तु बाली का कोई ठिकाना नहीं था। एक साल की अवधि पूरी होने लगी। एक दिन सुग्रीव ने देखा कि बिल से बहुत खून बह कर बाहर आ रहा था। वह खून बाली का था अथवा दुम्दुभि का था, यह समझना कठिन था। कारण दोनों में से एक भी बिल के बाहर नहीं आ रहा था। एक साल पूरा हो गया परन्तु बाली के वापस आने का कोई चिन्ह नहीं दिखाई दिया। आखिर थक कर सुग्रीव ने बिल-द्वार पर एक प्रचंड शीला लगाई जिसके रहने से कोई भी बाहरी शत्रु बिल के अन्दर जाकर बाली को न मार सके। इस प्रकार बिल-द्वार पर शीला लगाकर सुग्रीव किष्किन्धा वापस चला आया। बानर जाति के नियमानुसार सुग्रीव बड़े भाई की अनुपस्थिति में किष्किन्धा नगरी के राजा बने और पत्नी तारा से विवाह कर सुख-चैन से रहने लगे। सुग्रीव सब समय तारा में पूर्णतया मगन रहता था।

इस अवसर पर एक दिन दुम्दुभि का वध कर बाली बिल-द्वार पर आकर देखता है तो बिल-द्वार पर बड़ी मुहर लगाई हुई उसने देखा। बाली बड़ा शक्ति-शाली था। उसने किसी प्रकार बिल-द्वार की मुहर हटाई और बिल के बाहर आकर देखता है तो वहाँ पर भाई सुग्रीव नहीं! बाली बिल के अन्दर रहने के कारण उसे बाहरी समय का कोई ज्ञान नहीं था। वह समय की भावना से ऊपर था इसलिए बिल-द्वार के बाहर एक साल हो गया था तो भी बाली को लगता था कि केवल दो-चार घण्टे बीते होंगे और उसकी राह न देखते हुए सुग्रीव तुरन्त वापस लौटे गया होगा। सुग्रीव के वर्तन में बाली कुछ दाल में काला महसूस करने लगा। मन में यह आशंका रखकर बाली किष्किन्धा नगरी में वापिस आकार देखता है तो उसकी आशंका प्रत्यक्ष घटना बन चुकी थी। सुग्रीव अब किष्किन्धा का राजा बनकर बानर जाति के राजा नियमनुसार तारा को अपनी पत्नी बनाकर बड़े सुख-चैन से रहता था। बाली का क्रोध और भी बढ़ गया।

सुग्रीव ने बाली को सत्य परिस्थिति बताई और वाली को विल के बाहर आने के लिए एक साल लग गया यह भी बताना चाहता था। परंतु बाली को सुग्रीव की वात अति झूठ लगी कारण कि बिल में जाकर कुछ क्षण ही हुए हैं ऐसा बाली मानता था। सुग्रीव का वर्तन बेईमानी का है यह देखकर बाली क्रोधित हो उठा और उसने सुग्रीव को राज्यपद से हटाकर वह स्वयं किष्किन्धा का राजा बना। अपनी पत्नी तारा को उसने पुनः अपनी पत्नी जैसा ग्रहण किया और साथ-साथ सुग्रीव की पत्नी रूमा को भी अपनी पत्नी बनाया। यह सब करने के पश्चात् बाली ने सुग्रीव को किष्किन्धा नगरी के बाहर खदेड़ दिया। तब से सुग्रीव पम्पा सरोवर के पास वाले ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था जहाँ कि उसका मित्र हनुमान उसकी पूरी सहायता करता था। बाली बड़ा पराक्रमी और शक्तिशाली वीर था इसलिए उसको पराजित करना सुग्रीव के लिए असंभव था। उसे कोई मदद करे, यह सुग्रीव चाहता था और सीता की खोज कर उसे राम को पुनः प्राप्त करा दे, यह राम चाहते थे। दोनों अपनी हारित पत्नी और साथ-साथ राज्य वापस चाहते थे। राम और सुग्रीव एक दूसरे के लिए पराक्रमी और सहायकारी थे, परन्तु अपने बारे में वे निष्क्रिय जैसे थे।

राम और सुग्रीव में सुलह हुई कि सुग्रीव अपनी बानर सेना द्वारा सीता की खोज कर उसे राम को पुनः मिलाने में मदद करें और उस बदले में राम वाली का वध कर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनायें। बाली का वध कर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाना राम को प्रथम करना था और बाद में सुग्रीव सीता की खोज कर उसे वापिस मिलाने की चेष्टा करें, यह तय हुआ। बाली का वध करने का एक षड्यन्त्र बनाया गया जिसमें सुग्रीव वाली को द्वन्द्व-युद्ध का आह्वान करे। बाली और सुग्रीव का द्वन्द्व चलने पर राम बाली को दूर से अपने वाण द्वारा मारेंगे। वाली की मृत्यु के पश्चात् सुग्रीव राजा बनकर फिर सीता की खोंज करने में राम को सहायीभूत बने। षड्यन्त्र के अनुसार सुग्रीव ने वाली को द्वन्द्व के लिए ललकारा। भीरू सुग्रीव द्वारा द्वन्द्व का आमन्त्रण करते हुए देखकर पराक्रमी बाली थोड़ा आश्चर्य करने लगा। परन्तु पराक्रमी आदमी साहसी भी होते हैं और अपने साहस-कार्य में वे कुछ काला व्यवहार हो तो भी विशेष नहीं सोचते हैं। बाली ने सुग्रीव का द्वन्द्व आमन्त्रण स्वीकारा और वह युद्ध-भूमि पर खड़ा हुआ, कारण अपने पीछे श्रीराम खड़े हैं, यह वह जानता था।

वाली और सुग्रीव विलकुल एक जैसे दीखते थे। द्वन्द्व-युद्ध छिड़ जाने पर वाली कौन और सुग्रीव कौन यह ध्यान में लाना राम जैसे पराये व्यक्ति के लिए कठिन था। इसलिए यह तय हुआ था कि युद्ध के समय सुग्रीव एक माला पहने जिससे राम वाली को पहचान कर उसे वाण से बिंध करें। वाली और सुग्रीव का द्वन्द्व-युद्ध शुरू हुआ। वाली वड़ा पराक्रमी था। सुग्रीव की पराजय हो रही है, यह देखकर भगवान राम जो कि एक पेड़ के पीछे खड़े थे, वाली पर चुपके से एक तीर छोड़ते हैं जिससे वाली आहत होकर भूमि पर गिरता है। वाली अब उसके विरूद्ध किये गये षड्यन्त्र से परिचित होता है और पूछता है, 'पेड़ के पीछे खड़े होकर मुझ व्यस्त व्यक्ति पर किसी कायर जैसे वाण मारने वाले किंपुरुष तुम कौन हो? सामने आ जा। यदि मेरे सामने आकर तुम मुझसे युद्ध करते तो इस सुग्रीव के साथ तुम्हें भी मैं काल के गाल में भेज देता। परन्तु हाय तूने मुझसे गद्दारी की है। हे अनार्य पापी तुम सामने आ जा।'

वाली राम संवाद :

वाली और राम का संवाद रामायणकार किष्किधाकाण्ड के सर्ग १७ में निम्न प्रकार वताते हैं—

त्वं दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम्।
अब्रवीत परुषं वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ॥४।१७।१२॥
त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रथितः प्रियदर्शनः।
कुलिनः सत्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः ॥४।१७।१४॥
पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः।
यदहं युद्धसंरब्धः शरेणोरसि ताडितः ॥४।१७।१५॥
न माअन्येन संरब्धं प्रमतं वेद्धुमर्हसि।
इति मे बुद्धिरूत्पन्ना बभूवादर्शने तव ॥४।१७।१९॥
स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम्।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपामिवानृतम् ॥४।१७।२०॥
विषये वा पुरे वा ते यदा पापं करोम्यहम्।
न च त्वामवजानेऽहं कस्मात् तं हंस्यकिल्विशम् ॥२४॥
वयं वनचरा राम मृगा मूलफलाशिनः।
एषा प्रकृतिरस्माकं पुरुषस्त्वं नरेश्वरः ॥४।१७।२८॥
राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चोरः प्राणिवधेरतः।
नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरय गामिनः ॥३४॥

इस प्रकार राम और लक्ष्मण को अपने सन्मुख देखकर महाबली बाली 'धर्मसंहित वाक्य बोलता है, "हे राघव तुम नराधिपति दशरथ के पुत्र एवं कुलीन चरितव्रत और सत्व तेज सम्पन्न दीखते हो। देखने में अच्छे लगते हो। परन्तु मेरे जैसे तेरे साथ शत्रुत्व न रखने वाले युद्ध पराङ्मुख व्यक्ति का छुपकर वध करने से तुम्हें क्या पुण्य अथवा लाभ मिला ? मैं तो तुझसे युद्ध करने नहीं आया था। मैं अपने वेदविहीत धर्म-मार्ग से चल रहा था परन्तु इस प्रकार की कुटिल बुद्धि बताकर तुम्हें क्या मिला है ? तुम तो स्वयं को धर्मध्वज समझते हो परन्तु इस प्रकार पाप कर्म कर तुम तृण से ढके हुए कूएँ जैसे प्राणघातक दीखते हो। तुमसे मैंने किसी भी देश में, नगरी में अथवा अन्य स्थान पर युद्ध का आवाहन नहीं किया था, परन्तु यह होकर भी अपने मन में किल्मिष रखकर तुमने मेरा वध क्यों किया ? हम बानर जाति के वनचर प्राणी हैं और फलमूल खाकर अपना निर्वाह चलाते हैं। हम प्रकृति के साथ रहने वाले निष्पाप जीव हैं। इसलिए मेरे जैसे प्राकृतिक निष्पाप जीव की हत्या कर हे राजकुलोत्पन्न क्षत्रीय तूने मेरे जैसे ब्रह्म जाने वाले ब्राह्मण की हत्या की है। तू अपने कुल का भी नाश इस कर्म द्वारा कर रहा है। तूने मानव-हत्या तो अवश्य की है परन्तु मुझे तुम एक सामान्य प्राणी यदि मानता है तो भी मेरे जैसे निष्पाप प्राणी की हत्या करना प्राणी मात्र की दयाभाव से भी ठीक नहीं था। परमेश्वर सब जीवों में स्थित है यह वैदिक परम्परा की विचारधारा है इसलिए तेरे जैसे वैदिक धर्म का पालन करने वाले राजकुलोत्पन्न पुरुष को मेरे जैसे वनचर वानर की हत्या करना पाप है। इसलिए हे राघव तू नास्तिक, परजीव पीड़क और नरक में रहने योग्य है।"

राम का छद्मी उत्तर :

उस समय की वैदिक परम्परागत विचारधारानुसार राम बाली को उत्तर देते हैं —

प्रमत्तान प्रमत्तान्वा नरा मांसाशिनो भृशम।
विध्यन्ति विमुखाश्चापि न च दोषोऽते विद्यते ॥४।१७।४१॥
यान्ति राजर्षयश्चात्र मृगयां धर्मकोविदाः।
तस्मात्वं निहतो युद्धे मया बाणेन बानर।
अयुध्यन्प्रति युध्यन्वा यस्मात शाखामृगो ह्यासि ॥४।२७।४२॥

'हम नर जाति के हैं एवं नर जाति में श्रेष्ठ कुलोत्पन्न राजकुल के क्षत्रीय

हैं। अपने आहार के लिए मांसाहार करना हमारा कुल-धर्म है। इसलिए अपने आहार के लिए तेरे ऐसे अमानवीय वानर की हत्या करने में मुझे कोई दोष नहीं है। मृगया करना हम क्षत्रियों का धर्म है इसलिए युद्ध में रहें अथवा अयुद्ध में रहें तेरे जैसे शाखा पर विचरने वाले मृग को अथवा वानर की मृगया करना मेरे लिए कोई पापकर्म नहीं है। मैं अपने धर्म से चल रहा हूँ। मृगया करते समय पेड़ों के पीछे छिपकर आखेट पर वाण मारा जाता है। मैंने मानव-धर्म के अनुसार कर्म किया है।' उस समय के हिसाब से राम का उत्तर प्रतिवादी को निरूत्तर करने वाला था। राम का उत्तर सुनकर वेचारा वानर वाली चूप वैठ गया और पीछे का सब भूलकर उसने सुग्रीव को किष्किधा नगरी का राजा बनने के लिए राम की विनती की और यह नम्र निवेदन किया कि उसके इकलौते पुत्र अंगद का सुग्रीव अपने पुत्र जैसा स्वीकार करे। अंगद, सुग्रीव और वाली पत्नी तारा वाली के अन्त समय पर बहुत रोने लगे। इस प्रकार एक पराक्रमी निष्पाप वानर वाली एक मानव क्षत्रीय के द्वारा मारा गया और वह भी वैदिक परम्परागत धर्म-कल्पना के नाम पर!

विश्वधर्म और बाली का भाषण :

राम का भाषण छद्मी था और उस जमाने की वैदिक परम्परा के विचारों को लेकर था इसलिए अपने परम्परागत वैदिक विचारों को लेकर राम का वाली को मारना धर्म माना जाता था और उसी प्रकार विचार करने वाले सर्व धर्मीजन आज भी राम का उत्तर एकदम धर्म और मानवधर्म को लेकर मानेंगे। मानव मांस खाता है इसलिए उसने अपने आहार के लिए आखेट कर अथवा पशु-पक्षियों की हत्या करना क्या पाप है, अधर्म है? मांसाहारी लोग इस प्रकार अपने मांसासन के लिए पशुहत्या करना पाप नहीं वरन् पुण्यकर्म मानेंगे। राम ने वही किया था इसलिए वाली का कुछ दोष न रहते हुए राम ने वाली का वध करना राम के उत्तर द्वारा निष्पाप एवं आवश्यक कर्म माना जायेगा। बौद्ध सम्प्रदाय के लोग भी मांस खाते हैं इसलिए मांसासन के लिए पशुवध करना उन्हें मंजूर है परन्तु उसी पशु को अपने खाद्य के हिसाब से प्रथम भगवान को समर्पित कर वाद में उसे खाने के कर्म को बौद्ध जन हिंसा और अधर्म मानते हैं। याने यज्ञ में बलि देना बौद्धजन निषिद्ध मानते हैं किन्तु मांसाहार करना बौद्ध सम्प्रदाय में निषिद्ध नहीं है। इस प्रकार एक अजीब अबौद्धिक विचार-परम्परा बौद्ध धर्म में है।

वास्तव में हम जो भी खाते हैं, पीते हैं या सेवन करते हैं, उसे प्रथम भगवान को अर्पण कर बाद में उसको सेवन करने में मानवधर्म ही मानना चाहिए। उसी प्रकार पशुमांस खाने वाले सर्वधर्मी जन प्रथम उस पशु को भगवान को साक्षी रखकर बलि देते हैं, अर्पण करते हैं जैसे कि इतरजन भगवान को भोग चढ़ाकर बाद में उसी भोग का स्वयं सेवन करते हैं। इस प्रकार के भोज्य का प्रथम भगवान को अर्पण न करना ही अधर्म माना जाना चाहिए। आज के अन्य सर्व धर्म के लोग पूर्ण मांसाहारी रहने के कारण उन्हें पशुहिंसा करने में धर्म-कर्म लगता है। इसलिए बक्रईद, इदउलफितर, मुहर्रम, क्रिस्तमस, गुड फ्रायडे आदि त्यौहारों के समय प्रचुर मात्रा में बकरे और गौओं की धर्म के नाम पर निर्दयता से हत्या करने में उन धर्मियों में धार्मिक धन्यता मानी जाती है। निष्पाप पशुओं के गले काटकर अपनी क्षुधा बुझाने में यह कथित धर्मवान मानव-धर्म मानते हैं। उनके धर्म की धन्यता पशुमांस खाने में ही है। इसी कथित मानव-धर्म के विचार को लेकर राम वाली को उत्तर देकर वाली का मुंह बन्द करते हैं और वेचारा वाली कथित धर्म के नाम पर वह अपनी कत्ल धर्म के लिए कुर्बानी मानकर चूप बैठता है और इन कथित धार्मिक मानवों के हिसाब से स्वर्ग में जाता है। इस प्रकार के धर्मों के अनुसार खाद्य-पशुओं की हिंसा और आत्माहुति धर्म का आवश्यक लक्षण मानना चाहिए। वेचारे पशु-पक्षी और जानवर लाखों सालों से इस प्रकार मानव-धर्म के लिए करोड़ों की संख्या में प्रतिदिन मारे जा रहे हैं, मर रहे हैं और अमर बन स्वर्ग में जा रहे हैं। और उनकी लाश खाने वाले मानव या नर उनका मांस खाकर धार्मिक बन रहे हैं। सर्व सामान्य धर्म कल्पना को लेकर राम का यह साधारण परन्तु प्रतिपक्षियों को निरूत्तर करने वाला उत्तर है जिसको आज के हिन्दू भी सुयोग्य मानते हैं और इस प्रकार एक निष्पाप वाली रूप तपसी का गला काटने वाले राम को परम पुरुष औतार मानते हैं। क्या सच्ची वैदिक परम्परा को यह भौतिक विचार मान्य है ?

कथित मानव धर्म और सच्चा विश्वधर्म :

कथित मानवधर्मी यह मानते हैं कि पूरे संसार में केवल मानव ही सर्वोच्च और भगवान को प्रिय प्राणी है इसलिए सारा संसार, फिर वह सजीव या निर्जीव रहे, मानव के भोग्य और सेव्य है। इसलिए अन्य पशुओं की हत्या कर अपना उदर-भरण करना मानव धर्म में पुण्य कर्म है और इस प्रकार मानव का खाद्य बनना उन जीवों के लिए धर्म-कार्य है। मानव-

धर्म के नियम और तत्व इस प्रकार के स्वार्थी मानव प्रेषितों ने बनाये हैं इसलिए आज के लगभग सर्व धर्म जैसे कि ईसाई, मुस्लिम, बौद्ध, यहूदी, सिख आदि पशुहिंसा को धर्म और पुण्यकर्म मानते हैं। ऐसे कथित धर्मों को वैदिक काल में यज्ञ में होने वाली पशुहिंसा पर कड़ी आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है। वैदिक परम्परा में यज्ञ द्वारा भगवान को आहुतियाँ देने की भावना तो भी थी। अन्य धर्मों में वह भी भावना नहीं है। बौद्धजन अपना मांस खाद्य भगवान को अर्पण न करते हुए किसी आपकाजी जैसे मांससेवन करते हैं। बौद्ध जनों को भगवान अथवा आत्मा मंजूर नहीं है परन्तु क्या पर जीवों को पीड़ा देना उन्हें मंजूर है ? फिर सरेआम पशुहत्या करने में वे मानव-धर्म क्यों मानते हैं ?

इस प्रकार के मतलबी मानव धर्म के विचारों ने ऊपर उठने वाले केवल दो मत परम्पराएँ हैं, एक है, वैदिक परम्परा प्राप्त ब्राह्मण धर्म परम्परा और दूसरी है, जैनमत परम्परा ! इन श्रेष्ठ परम्पराओं में पशुमांस खाना भी अधर्म और निषिद्ध माना है। पशु-पक्षी और जानवरों को भी जीव है, आत्मा है, उनमें भी भगवान है, यह सत्य-विचार यह परम्परा मानती है। उन जीवों की हत्या कर उनकी लाशें खाने में यह श्रेष्ठ परम्परा सच्चे मानव-धर्म की दृष्टि से और विश्वधर्म की दृष्टि से अधर्म और पाप मानती है। अन्य जीवों की बुद्धि मानव की बुद्धि जैसी उत्क्रान्त और प्रगल्भ नहीं रहती है इसलिए उत्क्रान्त प्रगल्भ बुद्धि के मानव को अपने अस्तित्व के साथ सारे विश्व का विचार करना चाहिए यह वैदिक जैन परम्परा मानती है। वैदिक परम्परा में गौ को अपने परिवार का एक प्राणी मानकर उसकी हत्या अधर्म माना है परन्तु जैन और ब्राह्मण परम्परा में किसी भी जीव की हत्या करना अधर्म माना है। वास्तव में मानव की आँतें, दाँत और शरीर-रचना मांसाहार के योग्य नहीं हैं, कारण इन मांसाहारी योनियों से मानव बहुत उत्क्रान्त प्राणी है इसलिए मांसाहार मानव के त्याज्य अतएव अधर्म है। परन्तु सब मानव-धर्म मांसाहार में ही धर्म मान बैठे हैं यही उनका अधर्म है, अनुत्क्रान्त अवस्था है, अतएव अमानवीय संस्कार है। ब्राह्मण एवं जैन परम्परा इसलिए श्रेष्ठ है जिसका साधक बाली अपने मौलिक विचार द्वारा राम को प्रश्न पूछता है। परन्तु छद्मी राम उनके कथित मानव धर्म के अनुसार बाली को निरुत्तर कर अपना पाप पुण्यमय बताते हैं। राम का यह धर्म वैदिक परम्परा को मान्य नहीं है।

वास्तव में न बाली कथित बानर है, न राम कथित मानव हैं। रामायण एक अतुलनीय उपमा धन्य आध्यात्मिक ग्रन्थ है। राम, बाली, सुग्रीव और हनुमान साधना-क्षेत्र के विचार हैं जिसे साधक सारा सार बुद्धि से ग्रहण कर उस प्रकार अपना जीवन-यापन करें। क्या बानर बोलता है ? और यदि बोलता है तो वह वध पशु कैसे माना जाय ? राम एक मर्यादा पुरुषोत्तम दिखाया है जो कि उस समय की मर्यादाओं को लेकर विचार करने वाला साधक है। बाली द्वारा रामायणकार हमें राम-विचारों से भी ऊपर उठकर सर्व प्राणीमात्रों पर दया करने के लिए बताते हैं जो कि भगवान श्रीकृष्ण, भगवान गौतम बुद्ध और भगवान महावीर बताते हैं। बाल्मीकि रूप बाली के प्रश्नों का उत्तर सीधे तरीके से देना राम के लिए मुश्किल है इसलिए जमाने के विचारों की आड़ लेकर राम ब्राह्मण बाली को निरुत्तर कर उसकी हत्या धर्म में शामिल कर स्वयं को ऊँचा साधक मानते हैं। बाली के मुख से सारा पशु जीव संसार मानव वर्ग से प्रश्न पूछता है जिसका उत्तर राम के छद्मी भाषण द्वारा मानव आज तक देते आया है और स्वयं को पूर्ण मानव धर्मी और विश्वधर्मी मानते आया है। उसका उत्तर देने के लिए हमें सुग्रीव, हनुमान और बाली एवं बाली पत्नी तारा क्या है, यह देखना पड़ेगा।

सुग्रीव :

'सु' याने उत्तम और 'ग्रीवा' याने कण्ठ। जिसका कण्ठ याने आवाज और बोलना मधुर है उसे रामायणकार सुग्रीव कहते हैं। वायुतत्व की ऊँची साधना सिद्ध होने से साधक का कण्ठ मधुर बन जाता है। इसी कारण राम को ईक्ष्वाकु कहा गया है। जिसकी वाणी ईक्षु याने ऊख जैसी मधुर रहती है उसे रामायणकार ईक्ष्वाकु कहते हैं। ईक्ष्वाकु राम और सुग्रीव वानर इसीलिए समगुणी होने से एक दूसरे के मित्र बनते हैं। इसके अलावा राम साधक अवस्था सीता का परिहरण रावण ने किया था और सुग्रीव-अवस्था रूप पत्नी का हरण उसके बड़े भाई बाली ने किया था। उसी प्रकार के ईक्ष्वाकु राम और बानर सुग्रीव अठारहवीं ईसा शताब्दी में हुए थे। उनका नाम था पवनाहारी बाबा जो कि स्वामी विवेकानन्द के समय बनारस में रहते थे। स्वामी विवेकानन्द वैसे रामकृष्ण परमहंसजी को अपना परमगुरु मानते थे परन्तु बनारस के बिलकुल आहार न करने वाले पवनाहारी बाबा की तरफ उनका मन अधिक झुकता था। अपनी वायु याने पवन तपस्या

के कारण उनकी वाणी बहुत मधुर लगती थी और इसीलिए उनकी तरफ स्वामी विवेकानन्द अधिक आकर्षित थे। 'वा' याने आश्चर्यकारक और 'नर' याने प्रगति करने वाला श्रेष्ठ साधक याने बानर है और इसीलिए रामायण-कार सुग्रीव, बाली और हनुमानादि बौद्ध भिक्खुओं को बानर कहते हैं। अब बानर कहने से उन्हें पूंछ दिखाना क्रम प्राप्त है। वास्तव में किसी साधक को पूंछ नहीं रह सकती है। रामायणीन बानर वाल्मीकि कल्पना-शैली है न कि प्रत्यक्ष इतिहास। इस बानर उपाधि में वैदिक परम्परा के ऋषि, जैन परम्परा के मुनि और बौद्ध परम्परा के भिक्खु बताये गये हैं। उच्च साधकों का निवास उस समय वनों में ही था। इसलिए सारे वानर वनचर दिखाये गये हैं और उनका आहार भी वानर जैसा निरामिष याने फलमूलों का बताया है।

वायुतत्व की कठिन साधना करने वाले सब श्रेष्ठ साधक वानर बताये गये हैं। इन वानरों में से जिनका कण्ठ मधुर है उन्हें रामायणकार सुग्रीव कहते हैं।

हनुमान :

सारे प्राणीमात्रों में केवल मानव को ही हनु याने ठुड्डी रहती है। सुन्दर हनु वाले वायुतत्व के साधकों को रामायणकार हनुमान कहते हैं। वायुतत्व साधक का शरीर बलदण्ड रहता है, वह बुद्धिमान रहता है और वह भक्ति प्रधान स्वभाव वाला रहता है इसीलिए रामायणकार हनुमान को बलवान, बुद्धिवान और राम का परम भक्त बताते हैं। प्रथम हनुमान सुग्रीव का भक्त रहता है और बाद में वह रामभक्त बनता है। आशय यह कि साधकावस्था अब सुग्रीव अवस्था से राम-अवस्था तक पहुँची है। हनुमान की माता अञ्जनी मानी गई है। 'अन्' याने स्पन्दन और 'जनी' याने जन्म लेना। जिस साधक का साधना स्पन्दन अति तीव्र है उसकी माता याने शक्ति-अवस्था को रामायणकार अञ्जनी कहते हैं। हनुमान वायुसुत याने वायुतत्व का साधक है। जन्म लेते ही हनुमान सूर्य को निगलने जाते हैं, ऐसी कथा है। सूर्य याने तेजस तत्व है जो साधक तेजस तत्व को पार करेगा याने निगलेगा वही उससे श्रेष्ठ वायुतत्व में जा सकता है। इसीलिए वायुतत्व का जन्मा हनुमान उसके नील तेजस तत्व का परिचायक सूर्य को निगलने आकाश में उड़ता हुआ बताया गया है। यह सब साधना के कठिन अनुभवों का रूपकात्मक वर्णन है न कि प्रत्यक्ष ऐतिहासिक घटना!

तेजस तत्व का परिचायक बीज 'र' माना गया हैं जिससे 'राम' नाम बनाया गया है। परन्तु इस तेजस तत्वरूप राम की वायु तत्व द्वारा आकाश तत्व में जाना है इसीलिए राम का वाहन वायुतत्वरूप हनुमान बताया है। आकाशतत्व का परिचायक वर्ण नीलश्याम है इसीलिए राम का वर्ण नीलश्याम बताया है जो वर्ण किसी भी मानव का रहना असम्भव है। सीता याने पर-तत्व साधना की सात्विक अनुभूति है इसीलिए वायुतत्व रूप वायुसुत हनुमान द्वारा सीता की खोज दिखाई है। यह अब बानर ब्राह्मण वर्ण के दिखाये हैं कारण वे कठोर साधना कर ब्रह्म जानने वाले ब्राह्मण बने थे। इस प्रकार वाली भी ब्राह्मण था जिसकी हत्या राम ने की थी। हनुमान को पूर्णतया ब्रह्मचारी बताया गया है। ब्रह्मचारी शब्द की परिभाषा है, 'ब्रह्म आचरति इति ब्रह्मचारि' याने जो ब्रह्म का आचरण करता है उसे ही ब्रह्मचारी कहा जाता है। परन्तु इसी ब्रह्मचारी हनुमान को अयोध्या में जाने के बाद भरत ने एक लाख गायें, सौ उत्तम गाँव तथा उत्तम आचार-विचार वाली सोलह कन्याएँ पत्नीरूप में समर्पित की थी। जिसे हनुमान ने स्वीकार किया था। फिर हनुमान का ब्रह्मचर्य और उसकी सोलह पत्नियों का क्या आशय होना चाहिए ? हनुमान की सोलह सुन्दर आचार-विचार वाली पत्नियाँ याने षोडष गुण युक्त कलाएँ हैं जो कि साधक के लिए पत्नी जैसी है। इस प्रकार पूर्ण ब्रह्मचारी रहकर भी हनुमान सोलह स्त्रियों के पति भी हैं—

'गवां शतसहस्त्रं च ग्रामाणां च शतं परम्।
सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्यास्तु षोडष ॥ ६।१२५।४४ ॥

वायु तत्व का श्रेष्ठ साधक ब्रह्मचारी, षोडषकला युक्त सोलह कन्याओं का पति, बुद्धिमान, त्रिकालज्ञ, सर्वगामी, बलवान परंतु भक्त जैसा लीन रहता है। राम-भक्त हनुमान ठीक वैसे ही बताये गये हैं।

बाली :

साधना-क्षेत्र में राम-अवस्था से भी बहुत ऊँची बाली-अवस्था माननी पड़ेगी जिसे सहने की ताकत मर्यादा पुरुष राम में न थी और इसीलिए साधना में अति उच्च उस बाली-अवस्था को राम अधर्म से मारते हैं कारण धर्म रीति से और सीधी तौर से बाली-अवस्था का अस्वीकार करना मर्यादा पुरुष राम को कठिन था। इसीलिए बाली राम से कहता है कि इस प्रकार अवैध मार्ग से उसे मारने के बजाय राम यदि बाली के सम्मुख युद्ध के लिए खड़े हो जाते तो बाली राम को क्षण भर में मार डालता। बाली शब्द

निर्माण में रामायणकार अपनी प्रगाढ बुद्धिमत्ता और योगसाधना का जटिल एवं गहन अनुभव पाठकों के सन्मुख पेश करते हैं। दुर्भाग्य यह है कि उनकी वह प्रगाढ बुद्धि और योगसाधना की उच्च अनुभूति कथा में निहित रहने से आज तक की सारी रामायण का उन्हें समझ नहीं थी। योगेश्वर ज्ञानेश्वर महाराज की असीम कृपा से वह रहस्य अब हम क्रमागत देखें और राम जैसा अवैधरूप से वाली-अवस्था को न मारें।

संस्कृत भाषा में अल्प यह शब्द पर्याप्त अथवा परिपूर्ण इस महान आशय से उपयोग में लाया जाता है। इस 'अल' शब्द को अधिक 'ल' कार लगकर अल्ला शब्द बना है जिसका आशय माता है। अम्म-अम्मा, अक्का-अक्क और अल्ल-अल्ला: यह तीनों शब्द संस्कृत में माता आशय के हैं। अल्ल अथवा माता स्त्रिलिंगी शब्द है जिसका सीधा स्वरूप मुस्लिम सम्प्रदाय में अल्लाह इस नाते गया है। और आश्चर्य इस बात का है कि मुस्लिम जन अल्लाह अवस्था को स्त्रीरूप मानते हैं। मुसलमानों का अल्लाह वैदिक अल्लारूप माता की देन है। इसी अल से वाली शब्द बना है। 'वा' याने आश्चर्य-कारक और 'अली' याने सखी अथवा अवस्था एवं बाली का आशय है साधक की अति श्रेष्ठ आश्चर्यकारक अवस्था जो कि परिपूर्ण है। यह परमपूर्ण निर्विकल्प अवस्था मर्यादा पुरुष राम से नहीं सही जाती है इसलिए उस परमोच्च निर्विकल्प ब्रह्म अवस्था को त्याग कर याने मार कर राम अपने सदृश्य सुग्रीव-अवस्था को अपना मित्र बनाकर किष्किधा राज्य का राजा बनाता है। वाली महान बलवान और त्रिकाल स्नान संध्या-वन्दन करनेवाला था। वह ऋषि-मुनि जैसा वनचर था और उसकी राजधानी किष्किन्धा नगरी थी। ऐसे वानप्रस्थ ऋषिमुनि रूप वानरों का मुखिया बाली था जो कि किष्किन्धा नगरी का राजा था।

किष्किन्धा :

किष्किन्धा नाम रखने में वाल्मीकिजी ने अपनी चरम योगावस्था और प्रखर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। किष्किन्धा शब्द तीन उपशब्दों से बना है, 'कि:' 'किम्' और 'धा'। कि: याने किससे किस द्वारा, किम् याने क्या अथवा कौन, एवं धा: याने धारण किया है। निर्विकल्प समाधि में एक ऐसी अवस्था आती है जो निरालम्ब, निर्गुण और शून्य रहती है। वह अवस्था किसी का आलम्ब नहीं है, किसी ने किसी को धारण नहीं किया है; सब शून्य निरालम्ब निष्कम्प-अवस्था रहित अवस्था जिसे कि रामायणकार

किष्किन्धा कहते हैं। यही अवस्था शून्य अवस्था का राजा बाली था। इस किष्किन्धा नगरी का वर्णन ऋग्वेद के नासदीय सूत्र, मण्डल १०,१२१ ऋचाएँ ३–२ में किया है। इस सृष्टि के मूलारम्भ में क्या था इसका वह वर्णन है–

ना सदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासिद्रजो नो व्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राम्या अहन् आसीत् प्रकेतः।
आनीद वातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

(ऋग्वेद मं १०।१२९।३-२)

'विश्व की उत्पत्ति समय के मूलावस्था में असत नहीं था और सद् भी। उन सब अवस्थाओं को जन्म देने वाली द्रव अथवा अभावात्मक अवस्था भी न थी। अवकाश को व्यापने वाला यह व्योम भी नहीं था और न उससे परे कोई अवस्था थी। फिर किसने किसे धारण किया था? यह गहन-गम्भीर अस्तित्व कहाँ था। उस समम मृत्यु याने विनाश नहीं था और न कोई अमर तत्व था। उस समय अस्तित्व का अभाव याने रात्रि नहीं थी और न था अस्तित्व को प्रसारण करने वाला प्रकाश! उस समय एक ही था और वह अपने आप में स्पन्दन पाने वाला अस्तित्व! और इसके अलावा क्या था? जगदारम्भ के समय के मूल अस्तित्व का इतना सुन्दर वर्णन और कही नहीं है।

वे महाभाग नासदीय सुक्तों का आशय भली भाँति समझ जायेंगे जिन्हें जगदारम्भ के उस मूल अवस्था का निर्विकल्प समाधि द्वारा अनुभव है। अन्यथा केवल तर्क-वितर्क करने से कुछ लाभ नहीं होगा। प्रकृति की मूल अवस्था में विज्ञान द्वारा जाने वाला आइनस्टाइन अथवा नारलीकर ही नासदीय सुक्त का आशय समझ सकता है। नासदीय सुक्त में वर्णन की हुई जो मूल स्पन्दनात्मक निराधार और सर्वत्र फैली हुई अवस्था है वही बाली की किष्किन्धा नगरी है। इसीलिए बाली को रामायणकार ब्रह्म जानने वाला ब्राह्मण, कठिन अवस्था प्राप्त वानर और फलमूल खाकर अपना उदर-निर्वाह करने वाला वनचर मानते हैं। बाली महापराक्रमी वानर, त्रिकाल स्नान संध्या करने वाला ब्राह्मण और फलमूल खाकर निर्वाह करने वाला महान भिक्खु तापसी था। बाली की नगरी यह किष्किन्धा थी जो कि शून्य अवस्था की परिचायक है। इस शून्य अवस्था रूप किष्किन्धा का राजा बाली था जिसकी पत्नी तारा थी।

तारा :

पञ्च कन्याओं में बाला-पत्नी तारा का भी नाम है जो कि किसी भी किष्किन्धा नगरी के राजा की पत्नी बनती थी। किष्किन्धा नगरी का जो भी राजा बने उसकी पत्नी बनना तारा के लिए अनिवार्य था। तो क्या ऐसी अपतिव्रता सामाजिक स्त्री आदर्श बन सकती है ? हाँ, शास्त्रकार तो वैसा ही कहते हैं।-अहल्या, द्रौपदी, सीता, तारा, मन्दोदरी तथा। पंचकन्या स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनम् ॥ इस प्रकार आदर्श पञ्चकन्याओं से एक बनने के लिए तारा का आशय अन्य होना चाहिए। रामायणकार के हिसाब से तारा का आशय भिन्न है। तारा याने अपने में स्थित शक्ति का प्रक्षेपण करने वाली अति शक्तिशाली प्रक्षेपित अवस्था वाली एक आत्मरूप अवस्था है। उस आत्मरूप अवस्था की जो एक व्यापक शक्ति है उसे विकीरण करने वाली पक्षेपण प्रक्रिया याने तारा है। तारा याने प्रक्षेपित करना। इसलिए जो-जो साधक वाली नामक परमोच्च आत्मरूप अवस्था में जायेगा उसकी पत्नी तारा याने प्रक्षेपण-प्रक्रिया अपने आप बनेगी। इसी प्रकार इन्द्र की पत्नी शचि सब समय किसी भी इन्द्र की पत्नी बना करती थी। तारा जैसी इन्द्राणी भी साधना की एक उच्च अवस्था है। इस प्रकार की उच्च आदर्शवत् तारा-अवस्था क्या पञ्चकन्याओं में नहीं रहेगी ? तारा यह शक्तिशाली साधक की शक्ति प्रक्षेपण अवस्था है जो कि किसी भी बाली की पत्नी रहती है। अब किष्किन्धा नगरी पर बार-बार आक्रमण करने वाला यह दुम्दुभि राक्षस कौन है, यह देखेंगे।

दुम्दुभि :

दुम्दुभि याने ढोल या नगारा। इस दुम्दुभि का वर्णन सन्त कबीरदासजी अपनी भाषा में करते हैं। कबीरजी कहते हैं—

घुंघट का पट खोल तोको पिया मिलेंगे ॥
शून्य महल में दियना बारिले। आसन से मत डोल।
कहे कबीर आनन्द भयो है। बाजत अनहत ढोल ॥१॥

शून्य-अवस्था में याने समाधि में जाने के पूर्व साधक अन्यान्य अनहत नाद सुनता है। यह अनहत नाद कई प्रकार के सुनाई देते हैं जैसे कि ढोल का नाद, बाँसुरी का नाद, सागर का नाद, घंटानाद, शंखनाद इत्यादि। यह हमने देखा है कि किष्किन्धा याने साधक की परमोच्च शून्य-अवस्था है। इस परमोच्च शून्य-अवस्था में किसी प्रकार का अनहत नाद नहीं सुनाई देगा, कारण शून्य-अवस्था

अनहत अवस्था से उच्च है। और यदि साधक इस प्रकार के अनहत नाद सदा सुनता है तो वह कभी भी शून्य समाधि-अवस्था में कदापि न जा सकेगा। इसलिए जिस बालीरूप साधक को अपनी किष्किन्धा अवस्थारूप राजधानी में रहना है उसे ढोलनाद अथवा दुम्दुभि अनहत नाद को नष्ट करना ही पड़ेगा याने उसे दुम्दुभि का पीछा कर उसे मारना ही पड़ेगा। इसलिए इस अनहत नादरूप दुम्दुभि का पीछा बाली करता है और जिस बिल में वह दुम्दुभि भाग जाता है उस बिल में स्वयं बाली जाकर उसका खात्मा करता है। इस कार्य में बाली का एक साल का समय बीत जाता है परंतु बाली उस समय को एक क्षण मानता है।

बाली का बिल :

बिल याने सूक्ष्म छेद जिसमें केवल चूहा जैसा छोटा-सा प्राणी जा सकता है। फिर दुम्दुभि जैसा एक विशालकाय राक्षस और बाली जैसा बलाढ्य वानर उस बिल में कैसे जा सकता है और जाकर बिना किसी तकलीफ आराम से रह सकता है? उस छोटे-से बिल में उन्हें हवा, अन्न, जल और प्रकाश कैसे मिला होगा? और वह भी एक साल तक? इस बाली का बिल हम साधारणतया मानते हैं, उस प्रकार चूहे का छोटा-सा बिल न होकर कुछ और होना चाहिए। गहन योग साधना में ऊँचे योग साधक को इस बिल का अनुभव आता है। यह बिल याने सुषुम्ना नाड़ी है जो कि इंगला और पिंगला के मध्य में रहती है। साधक अपने चित्त द्वारा इस सुषुम्ना में स्थित होता है तब वह बाहरी समय के ख्याल से ऊपर चला जाता है। सुषुम्ना स्थित योगी अथवा बाली समय भाव से ऊपर चला जाता है। समाधि-अवस्था का साधक इसी सुषुम्ना में अथवा बिल में मगन रहता है जिस कारण उसे बाहरी समय के भाव का बिलकुल पता नहीं चलता है। बाहरी जड़ दुनिया के कई घण्टे, महीने और साल भी बीत जायेंगे परन्तु सुषुम्ना स्थित समाधि मग्न साधक को देहभाव पर आने के बाद ऐसा लगता है कि वह समाधि-अवस्था में कुछ क्षण ही था। मेरुदण्ड में स्थित अति सूक्ष्म सुषुम्ना विवर याने बाली का बिल है।

दुम्दुभी अनाहत नाद इसी सुषुम्ना बिल में जाकर शान्त हो जाता है और उस शान्तता का पीछा करने वाला बाली भी समाधि लगाने के कारण उसी सुषुम्ना रूप बिल में स्वयं को एक साल तक भूल जाता है। परन्तु उस सुषुम्ना बिल के बाहर खड़े रहने वाले सुग्रीव को जगत-व्यवहार के भाव के

कारण समाधि स्थित वाली का एक क्षण एक साल जैसे लगता है। इसीलिए समाधि अवस्था में न रहने वाले दुनियादार लोग योगी की घण्टों तक समाधि अवस्था देखकर तरस जाते हैं और उसका त्याग कर अपने व्यवहार में लग जाते हैं। यही सुग्रीव का विल-त्याग कर किष्किन्धा वापस जाना है। परन्तु यह सवाल खड़ा हो सकता है कि इस प्रकार की दुनियादारी में फँसा हुआ सुग्रीव वाली की अति उच्च-अवस्था जो किष्किन्धा नगरी है, उसमें जाकर उसका स्वामी कैसे बनता है और वाली-अवस्था की पत्नी तारा से कैसे विवाह बद्ध हो सकता है? कारण स्पष्ट है। कुछ लोग वाहरी ढंग से वाली जैसे पूर्ण पुरुष दिखाने की चेष्टा करते हैं। झूठ-मूठ की समाधि अवस्था वनाते हैं और स्वयं मान लेते हैं कि वे वाली जैसे महान योगी हैं। उनकी मीठी वाणी के कारण लोग भी उन्हें वाली जैसे परम योगी मान लेते हैं। परन्तु वाली अवस्था सुग्रीव जैसे मृदु भाषी अवसरवादी लोगों को कैसे प्राप्त हो सकती है? वे उस समय झूठ मूठ का प्रचार कर अपनी अतीन्द्रिय शक्ति का ढोल पीटकर स्वनाम धन्य वनना चाहते हैं। परन्तु अतीन्द्रिय वाली-अवस्था सुग्रीव की यह केवल प्रचारी-अवस्था कैसे मान सकती है? सच्ची वाली-अवस्था फिर से अपनी किष्किन्धा रूप समाधि-अवस्था का पुनः स्वीकार कर झूठा सुग्रीव को किष्किन्धा से बाहर खदेड़ देता है और अपनी पत्नी तारा को फिर स्वीकार करता है। सच्चे महान योगी और ढोंगी जन ऊपर से एक जैसे दीखते हैं परन्तु उनके अन्दर की वात और तारारूप शक्ति भिन्न रहती है। इसीलिए वाली और सुग्रीव ऊपर से विलकुल एक जैसे दीखते थे।

महान योगसाधना के उच्च अनुभव और उन अनुभवों का स्वाँग करने वाले ढोंगी जनों के ढकोसले कितने सुन्दर ढंग से वाल्मीकिजी ने अपनी रामायण में बाली-सुग्रीव कथा द्वारा संसार के सन्मुख रखे हैं?

इस प्रकार किष्किन्धा में जाकर वाली अपनी पत्नी शक्ति-क्षेपक तारा और सुग्रीव-पत्नी रूमा याने आनन्द का स्वीकार कर अपने किष्किन्धा का राज्य सुखपूर्वक चलाता है और स्वयं का ढोंगी सुग्रीव-अवस्था को किष्किन्धा से याने समाधि-अवस्था से बाहर खदेड़ देता है इसमें बाली ने अपने याने तापसी जीवन के अनुसार सुयोग्य और धर्म काम किया था। उसमें केवल जड़ आनन्द में रस लेने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने ढोंगी सुग्रीव अवस्था की बाजू लेकर अधर्म-युद्ध में बाली को मारना ठीक नहीं था। इसीलिए बाली राम को पाखण्डी, अधर्मी और घास से छिपे हुए कुएँ जैसा प्राणघातक मानता है। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से राम का बाली को मारना सुयोग्य

था। राम याने आनन्द। रामायण महाभारत में जो व्यक्ति मारा जाता है वह ब्रह्मलीन याने मुक्त हो जाता है। इतनी उच्च बाली-अवस्था अब आत्मानन्दरूप राम के बाण द्वारा ब्रह्ममय याने मुक्त हो जाता है। समाधि-लीन शून्य बाली-अवस्था अब शून्य बन जाती है। उपनिषद बाली की मृत्यु का समर्थन करते हैं—

'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्षमुच्यते।' आत्मा राम इस प्रकार अपने साधनारूप धनुष पर आत्मरूप बाण लगाकर उसे बालीरूप ब्रह्म पर चलाते हैं। आत्माराम अब बालीरूप ब्रह्म बन जाते हैं। कितनी अर्थपूर्ण और सुन्दर कथा रामायणकार बाली-कथा द्वारा लिखते हैं?

सुग्रीव का राज्याधिकार और तारा सहवास :

इस प्रकार राम अन्याय और अधर्म से बाली को मारकर उसके जैसे दीखने वाले ढोंगी सुग्रीव को किष्किन्धा की राजगद्दी पर बैठाते हैं। फलस्वरूप तारारूप शक्ति प्रक्षेपण-अवस्था ढोंगी सुग्रीव की भार्या बनती है। कारण बानर समाज का याने तपस्वियों का यह कानून था कि जो भी तापसी बाली बनकर किष्किन्धा रूप समाधि-नगरी का राजा बनेगा उसकी पत्नी तारा अपने आप बनेगी। सुग्रीव अब झूठे समाधि-अवस्था रूप किष्किन्धा का राजा बनकर खुलेआम तारा से दिनरात समागम करता था याने झूठे चमत्कारों का प्रचार करता था। सुग्रीव राम का कार्य याने सीता-शोध करना भूल गया था। सीता बिना राम कैसे रह सकते हैं? इसलिए राम पुनः सीता के लिए शोक करते हैं। उनके छोटे भैया भी अपनी तरूण और सुन्दर पत्नी बिना राम के साथ दण्डकारण्य में थे परन्तु राम किसी भी समय लक्ष्मण का संयम और आदर्श अपने सामने नहीं रख सकते हैं कारण राम मर्यादा पुरुष थे और लक्ष्मण विवेक थे। इस प्रकार राम सीता के लिए अति शोकाकुल बन गये तब लक्ष्मण उनसे स्पष्ट रूपेण कहते हैं—

'अलं वीर व्यथां गत्वा नत्वं शोचितु मर्हसी।
शोचतो ह्यव सीदन्ति सर्वार्था विदितं हिते ॥४।२७।३४॥'

'हे वीर पुरुष राम इस प्रकार व्यथित होने से कुछ लाभ नहीं होगा कारण शोक करने वालों के सब मनोरथ नष्ट होकर वह दुर्बल बन जाता है। इसलिए हे राम अपने हित के लिए तुम कार्य को सिद्ध हो जा।' इसी प्रकार का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता में करते हैं। 'त त्वं शोचितु मर्हसी' दोनों में है—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।गीता अध्याय २, श्लोक २७।।

इससे यह स्पष्ट है कि रामायण महाभारत पूर्व का ग्रन्थ है ।

योगाभ्यास की कथारूप अनुभूतियाँ याने रामायण :

सुग्रीव तारा में इतना संभोगरत रहता है कि वह राम को दिया हुआ वचन भी भूल जाता है । इधर सीता के बिना राम कामपीड़ित और बेचैन बनते हैं । राम की अवस्था देखो—'वर्षरात्रे स्थितो राम कामशोकाभिपीड़ितम् ।।' काम-वासना से राम जैसा आदर्श पुरुष पागल बन जाता है । कौन-सी काम वासना थी राम में ? सीतारूप सात्विक अनुभूतियाँ ! साधना करते समय साधारण साधक यह चाहते हैं कि उन्हें इसी प्रकार की अनुभूतियाँ बार-बार आती रहें । परन्तु वही अनुभूतियाँ लगातार आने से साधक की आगे चलकर उन्नति नहीं होती है । इसलिए सच्चे साधक को पुरानी अनुभूतियों का त्यागकर आगे बढ़कर अधिक उच्च अनुभूतियाँ लेनी चाहिए और अन्त में अनुभूति शून्य श्रेष्ठ समाधि-अवस्था में जाना चाहिए । परन्तु राम मर्यादा साधक थे इसलिए वही पुरानी निम्न सीतारूप अनुभूतियाँ न मिलने पर राम साधक सीता का शोक कर मजनू बन जाते हैं । विवेक रूप लक्ष्मन राम के इस निम्न माया से मुक्त होने को कहते हैं—(किष्किन्धा काण्ड, पर्व ३० के १६ और १७ श्लोक देखें)

'किमार्यं कामस्य वशंगतेन किमात्य पौरुष्य पराभवेन ।
अयं ह्रिया संह्रियते समाधिः किमत्र योगेन निर्वर्तितेन ।।४।३०।१५।।'
'क्रियाभियोगं मनसः प्रसादं समाधियोगानुगतं च कालम् ।
सहाय सामर्थ्यं मदीन सत्वः स्वकर्म हेतुं च कुरुष्व तात ।।४।३०।१७।।'

रामायण एक इतिहास नहीं वरन योगाभ्यास द्वारा आने वाली अनुभूतियों का कथारूप वर्णन है । इसका सबूत ऊपरर्निदिष्ट श्लोकों द्वारा किसी भी वितंडवादी को मिल जायेगी । इस प्रसंग द्वारा रामायणकार अपनी कायारूप ढंग से वर्णन करते हैं कि राम सीता के लिए अति दारूण शोक करते हैं जो कि राम जैसे आदर्श पुरुष को शोभा नहीं देता । प्रत्यक्ष उनका छोटा भाई लक्ष्मण भी अपनी पत्नी बिना अकेला था परन्तु उसका आचरण राम से भी अधिक संतुलित और धीरोदत्त दिखाया गया है, कारण लक्ष्मण याने साधक में स्थित विवेक-वृत्ति है । परन्तु राम मर्यादा पुरुष होने से वह अपने क्षोभित चित्त की मर्यादाएँ लांघकर अपना क्षोभित चित्त शांत कर

उसे आत्मरूप की ओर नहीं लगा सकता था। राम का सीता-शोक याने साधक को लगातार न आने वाले सात्विक अनुभूतियों का विरहशोक है, यह हमने देखा है जिसका स्पष्ट उत्तर ऊपरनिर्दिष्ट श्लोकों द्वारा स्वयं रामायणकार राम को योगाभ्यास कर मन को प्रसादपूर्ण और शान्त करने के लिए नहीं बनाते और वंशगत कामवासना को दवाने के लिए नहीं कहते। उसी प्रकार योगाभ्यास में स्थित क्रियायोग करने के लिए राम को नहीं कहते। क्रियायोग द्वारा सीता की प्राप्ति होती है।

परन्तु रामायणकार राम को सीता की प्राप्ति करा देने की बात नहीं बोल रहे हैं, वे बोल रहे हैं क्रियायोग कर सीता का त्याग करने। इसका स्पष्ट आशय है कि राम की सीता याने कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं वरन् साधना में आने वाली अनुभूतियाँ हैं जिनका त्याग उनसे उच्च अनुभूतियों के लिए सच्चे साधक को करना चाहिए। इसलिए भाई लक्ष्मण राम को सीतारूप काम का त्याग कर योगाभ्यास और क्रियायोग कर मन को शान्त करने के लिए कहता है। लक्ष्मण कहते हैं, 'हे राम, वंशपरंपरागत पत्नी की काम-भावना और अपनी पत्नी के बारे में प्राप्त पराजय की भावना छोड़कर तुम अब पौरुष धारण करो। मेरी योग-साधना किस लिए है जब कि तुम योग द्वारा मन को समाधि-अवस्था में लाकर निवृत्त नहीं कर सकते हो? (४।३०।१६) राम तुम क्रिया-योग कर मन को प्रसादपूर्ण और शान्त रखो और समाधियोग द्वारा काल के ऊपर चले जाओ और तुममें स्थित महान सामर्थ्य को जागृत कर दीन भाव को त्याग और अपना कर्तव्य कर्म निष्काम कर्म से कर (४।३०।१७)' लक्ष्मण का यह वचन स्पष्ट बताता है कि रामायण ऐतिहासिक घटनाओं का ब्यौरा नहीं वरना योग-साधना द्वारा प्राप्त अनेकानेक सामर्थ्यों का अविष्कार कर मन को कर्तव्य परायण और शान्त करने का कथा रूप आविष्कार है।

सुग्रीव का कर्तव्य विस्मरण :

सुग्रीव को अब किष्किन्धा का राज्य मिला था और तिस पर तारा जैसी रम्भा उसकी पत्नी बन उसकी भोगेच्छा दिन-रात तृप्त करती है। इस भोग लोलुप अवस्था में सुग्रीव यह भूल जाता है कि सीता की खोज उसे करनी है। इधर सीता के बिना राम अति व्याकुल हो उठते हैं जो कि राम जैसे आदर्श पुरुष के लिए शोभा नहीं देता है। सुग्रीव सीता की खोज न करते हैं, यह देखकर राम कहते हैं—

'प्रिया विहनं दुःखार्तं हृतराज्ये विवासिते।
कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण ॥४।३०।६६॥
अनाथो हृतराज्योऽयं रावणे च धर्षितः।
दीन दूर गृहः कामी मां चैव शरणं गतः ॥४।३०।६७॥'

'मैं अपनी प्रिया के विना दुःख में समय काट रहा हूँ फिर भी सीता की खोज कर सुग्रीव मुझ पर क्यों न कृपा करता है? मेरा राज्य मुझसे छीना गया है और मेरी पत्नी रावण द्वारा छीन ली गई है। मैं दीन बन गया हूँ और मैं अब शरण में आ गया हूँ। इस अवस्था में सुग्रीव को मेरे ऊपर कृपा करनी चाहिए, राम की इस प्रकार की कामाशक्ति और उसके कारण दीनता और अगतिकता का वर्णन रामायणकार जानबूझकर करते हैं और उसका कारण यह कि राम एक मर्यादा पुरुषोत्तम व्यक्ति दिखाया गया है।

राम की यह शोकाकुल अवस्था देखकर लक्ष्मण सुग्रीव को डांटने के लिए सुग्रीव की राजसभा में जाते हैं। उस समय का वर्णन देखिये—
तारया सहितः कामी सक्तः कपिवृषो रहः ॥४।३१।२२॥' तारा के साथ सुग्रीव का वसना में मस्त था। और एक स्थान पर इससे भी उत्तेजक वर्णन है—

'रुमां तु वीरः परिरम्य गाढं वरासनस्थते वर हेमवर्ण।
ददर्श सौमित्रिमदीन सत्वं विशाल मेत्रः स विशाल नेत्रम् ॥४।३३।६६॥'

भरी सभा में सुग्रीव रूमा से गाढ आलिंगन कर विषयभोग लेता है। एक अति कामुक व्यक्ति भी इस प्रकार विभत्स वर्तन नहीं करेगा। इसलिए इस उत्तान वर्णन का आशय कुछ अन्य होना चाहिए। तारा याने शक्ति और रूमा याने भोग है। आगे चलकर राम भी अयोध्या में जाने के पश्चात् भरे दरबार में सीता को मद्य पिलाकर उससे दिन दहाड़े संभोग करते हैं। उसी प्रकार अन्य रूपवती वेश्याओं को मनमाने शराब पिलाकर उनसे दिनदहाड़े दरबार में राम संभोग करते हैं—

'मांसानि च सुमुष्टानि फलानि विविधानी च।
रानस्याभ्यवहारार्थं किंकरास्तूर्णं माहरम् ॥७।४२।१९॥
दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशं गताः।
उपानृत्यन्त काकुस्थं नृत्यगीत विशारदाः ॥७।२२।२१॥
मतोऽभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः।
रमयामास धर्मात्मा नित्यंपरमभूषिताः ॥७।४२।२२॥'

इस प्रकार शराबी वेश्याओं से दिनदहाड़े भरी सभा में काम संभोग करने वाला राम कैसे आदर्श रह सकता है ? इसका यह स्पष्ट आशय है कि वेश्याएँ याने साधना में प्राप्त धुंधली अनुभूतियाँ होनी चाहिए। अन्यथा राम जैसे आदर्श पुरुष इस प्रकार किसी निर्लज्ज जार जैसे कैसा कर्म करेगा ? इसलिए रामायण का ऊपरी आशय नहीं वरन् अन्दरूनी आध्यात्मिक आशय लिये वगैर रामायण का सत्य आशय हम नहीं समझ पायेंगे। अन्यथा राम जैसे विभत्स कर्म करने से समाज में अनीति का वातावरण सर्वत्र छा जायेगा और मानव पशु से भी नीच बनकर अधिक अनुत्क्रान्त बनेगा। क्या वाल्मीकिजी चाहते हैं ? नहीं !

हनुमान का सीता-शोध :

सुग्रीव को लक्ष्मण खूब फटकारते हैं और फिर सुग्रीव होश में आते हैं। वे समस्त वानरों को सीता का शोध करने चारों दिशा में भेजते हैं। वीर हनुमान को वह दक्षिण दिशा में भेजते हैं। राम के पास एक अँगुठी थी जिसे राम हनुमान के पास देकर सीता को वह अँगुठी देने के लिए कहते हैं। हनुमान सीता-शोध के लिए बाहर निकालते हैं। ठीक उसी समय उन्हें सम्पाति से भेंट होती है। सम्पाति कहता है, 'हनुमान रावण सीता को ले गया है। रावण लंका चला गया है जो कि उस स्थान से चार सौ कोस की दूरी पर है। लंका एक द्वीप है जो कि चारों ओर से परकोटों से वेष्ठित है। प्रत्यक्ष विश्वकर्मा ने उसका निर्माण किया है।' सब वानर एक स्थान पर इकट्ठे हुए और उन सबों ने सीता के शोध का कार्य लंका में जाकर हनुमान को करना चाहिये, यह निश्चित किया। हनुमान ने मन से लंका स्मरण किया, लंका याने माया ! कामनी काञ्चन और कीर्ति का ग्राम याने लंका नगरी है। लंका सागर पार थी और सर्व बाजू से सागर वेष्ठित थी। आज के भारत के किनारे से आज की श्रीलंका केवल तीस-बत्तीस मील दूरी पर है। फिर रामायण के अनुसार लंका भारत के किनारे ४०० कोस कैसे दूर रह सकती है ? यह चार सौ कोस याने चतुर्विध पुरुषार्थ है और सागर याने संसार सागर है। इस प्रकार के चतुर्विध पुरुषार्थ को आह्वान करने वाले लंका का हनुमान ने ध्यान में स्मरण किया और वीर हनुमान लंका जाने के लिए सिद्ध हो जाते हैं—

'जगाम लंका मनसा मनस्वी ॥४।६७।५०॥'

उस मनस्वी मानव ने मन से लंका का स्मरण किया।

सुन्दरकाण्ड

हनुमान का लंका के लिए सागरोड्डान :

अष्टम अध्याय

सुरसा राक्षसी :

भगवान राम का स्मरण कर हनुमान संसार सागर के ऊपर से याने न तैरते हुए उड़ान कर लंका में जाने का सोचते हैं। हम सारे लोग संसार सागर को पार करने के लिए तैरते हैं परंतु हममें कई जन उस सागर में डूबकर मर जाते हैं परंतु भक्त हनुमान उस संसार सागर को तैरने की झंझट ही नहीं रखते हैं। वे उस संसार रूप सागर को वायुमार्ग से याने ध्यान मार्ग से लाँघ कर लंका जाना चाहते हैं। रामायणकार कहते ही हैं, 'जगाम लंका मनसा मनस्वी ॥४।६७।५०॥' भक्त मीरा तो न संसार सागर को पार करने के लिए तैरती है और न उस सागर को हनुमान जैसे वायुमार्ग से उड़ान कर लाँघती है। उसके लिए संसार सागर नाम की चीज ही नहीं है कारण उसका संसार सागर सब सूख गया है। मीरा बाई कहती है—

'भवसागर सब सूख गयो हैं। फिकर नहीं मुझे तरनन की ॥'

इस प्रकार वायुमार्ग से हनुमानजी उड़ान कर लंका की ओर जाते हैं। मार्ग में उन्हें एक सुरसा नामक राक्षसी मिली। हनुमान को निगलने के लिए सुरसा अपना मुख हनुमान से अधिक विशाल किया। परन्तु उसके मुख से भी अधिक विशाल हनुमानजी ने अपना शरीर बनाया। इस प्रकार सुरसा ने हनुमानजी को निगलने के लिए अपना मुख और भी अधिक बड़ा किया। इतने में हनुमानजी अपना विशाल शरीर एकदम लघु याने छोटा बनकर उस राक्षसी के मुख से प्रवेश कर उसके कान से बाहर निकल आते हैं। सुरसा राक्षसी अपना मुख शतयोजन बड़ा करती है। क्या एक मानव का मुख शतयोजन बड़ा रह सकता है ? हाँ, रहता है। कारण मानवों का विवेक यदि भ्रष्ट हो जाय तो उसके दुर्गुण भी उसे सुरस याने अच्छे लगते हैं और इसका अधःपतन भी शतमुख से हो जाता है। शास्त्र कहते हैं, 'विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥' इस अच्छी लगने वाली वृत्तिरूप सुरस का इस प्रकार मुख शत योजन अवश्य रहता है और सुरसा-मुख साधक को निगलने के लिए

सदा लालायित रहता है। परन्तु जो साधक अहंकार विरहित बनकर अति छोटा बनता है उसकी मुक्ति उस सुरसा राक्षसी के कानों से अवश्य हो सकती है। इसमें और भी एक जानकारी दी गई है। हठयोग द्वारा साधक अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है जिसमें कि अणिमा याने अणु जैसा छोटा होना और प्राकाय याने शरीर को बहुत विशाल करना यह भी सिद्धियाँ हैं। रामायणकार इन दो सिद्धियों को भी इस कथा द्वारा जानकारी दे देते हैं। रामायण योगानुभवों का वर्णन है।

सिद्धि और साधक :

एक बात यहाँ ध्यान में रखने योग्य है और वह यह कि योग-मार्ग द्वारा सिद्धियाँ अवश्यमेव प्राप्त होती हैं परन्तु उन सिद्धियों का गुलाम साधक न बने, यह उसके आगे चलकर आने वाली प्रगति के लिए अच्छा रहता है अन्यथा सिद्धियों की प्रबल माया में फँसकर साधक का अधिक तीव्रगति से पतन हो सकता है। सिद्धियों का अनुभव प्राप्त करने के बाद साधक उनमें नहीं फँसे अन्यथा संसार की माया से छुटकर साधक सिद्धियों की माया में पूर्णतः फँस जाता है जिससे छुटकारा पाना बहुत कठिन हो जाता है। इस सिद्धि माया का मुख बहुत बड़ा याने शतयोजन रहता है जो कि महान साधकों को निगल जाता है और जो सिद्धि माया मुख साधक को बहुत अच्छा याने सुरस लगता है। इसलिए बुद्धिमान और शक्तिशाली साधक रूप हनुमान के लिए यह आवश्यक है इस सुरसा मायारूप राक्षसी के विनाशकारी मुख से मुक्त होने के लिए वह अति नम्र याने सूक्ष्म बनकर अपनी सारी सिद्धियाँ परमात्मा को समर्पण कर दें। यही हनुमान की लघु काया याने निरहंकारी बनकर सुरसारूप सिद्धिमाया के मुख से सहीसलामत पार पाना है। परन्तु दुर्भाग्यवश बड़े-बड़े साधक को भी यह सुरसा मुखद्वारा निगल जाता है जो स्वयं को भगवान मानते हैं।

छायाग्राही सिंहिका :

आकाश रूप ध्यान मार्ग से संसाररूप सागर को लांघकर पार करते समय हनुमान रूप साधक को और एक राक्षसी का सामना करना पड़ता है और वह है सिंहिका राक्षसी जो कि साधक की छाया द्वारा उसे निगलने की चेष्टा करती है। अब आकाश मार्ग से जाते समय साधक हनुमान के शरीर पर सूर्य की किरणें पड़कर उसकी छाया नीचे फैले हुए सागर पर

पड़ना अनिवार्य है। इस पर से रामायणकार कल्पना-शक्ति को उच्च अवस्था में कितने जा सकते हैं, यह ध्यान में आ सकता है। आज के अति बुद्धिमान उपन्यासकार भी वाल्मीकिजी कि इस प्रखर कल्पना-बुद्धि से कई निम्न स्तर पर रह सकते हैं इतनी यह छाया ग्राही सिंहिका राक्षसी की कल्पना अपनी अजोड़ शैली से रामायणकार वर्णन करते हैं। और यह केवल कल्पना ही नहीं है। इसमें रामायणकार योगमार्ग में प्राप्त एक महान छायासिद्धि का वर्णन करते हैं। ध्यान-साधना करते-करते साधक ऐसे एक मोड़ पर आता है कि वह अपने सामने अपने जड़शरीर जैसे एक छाया रूप पुरुष को देखता है। यह छाया पुरुष याने अपना लिंगशरीर है जो कि जड़ शरीर से बहुत सूक्ष्म और शक्तिमान रहता है। इस छाया पुरुष का वर्णन उपनिषद में अंगष्ठ मात्र पुरुष इस प्रकार किया है। यह अंगुष्ठ मात्र पुरुष बहुत बलवान और त्रिकालदर्शी रहता है जिस कारण कठ उपनिषद उसे 'ईशानः' कहते हैं। कठ उपनिषद उसका वर्णन करते हैं—

'अंगुष्ठ मात्र पुरुषः ज्योतिरिवाधूमकः
ईशानो भूतभवश्य स एवाद्य स उ श्व एतद्वैसत् ॥'
(कठोपनिषद प्रथम वल्ली मन्त्र १२)

यह छायापुरुष चतुर्मात्रात्मक जगत से परे रहने के कारण वह त्रिकालज्ञ और त्रिखंडगामी रहता है जैसे भक्त हनुमान को दिखाया है, 'मनोजवं मारुततुल्यवेगं। जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठं। वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं। श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥' मारूत याने देशकाल से परे अवस्था (above time & space)। 'मा' याने नहीं और 'रूत' याने न फँसने वाला अस्तित्व। इसलिए हनुमान का वेग मारूत जैसे बताया है। यह छायापुरुष कहीं भी जाकर कौन-सी भी चीज उठाकर उसे कहीं भी ले जा सकता है। यह करने में उसे कुछ समय नहीं लगता है कारण वह काल से परे है। इसी छायापुरुष द्वारा कुछ साधक विभूति, घड़ियाँ, मिठाइयाँ आदि निकालकर अपने भक्तों को आश्चर्य चकित कर उनसे भगवान उपाधि पाकर स्वनामधन्य बनना चाहते हैं। यह छायापुरुष अन्य जनों को अदृश्यमान रहता है और वह जिस चीज को छूयेगा वह चीज भी चतुर्मात्रात्मक जगत से ऊपर जाकर अदृश्यमान बनती है। इसलिए जिस स्थान से यह छाया पुरुष जो भी चीज लाता है वह अन्य किसी को नहीं दीखती है। वह चीज अपने आप चतुर्मात्रात्मक जगत में आकर दृश्यमान हो जायेगी जिस समय उस छायापुरुष के स्पर्श से वह चीज मुक्त हो जायेगी। इस प्रकार यह भगवान अपने छाया-

पुरुष का उपयोग एक नीच कार्य करने के लिए करते हैं और अपना अध:पतन अपने हाथों से पाते हैं। यह छायापुरुष-अवस्था अवश्यमेव ऊँची है परन्तु उस अवस्था का उपयोग इस प्रकार करने वाले साधक अवश्यमेव नरक के प्रति यात्रा करते हैं।

इस अध:पतित अवस्थारूप सिंहिका राक्षसी का वेद वर्णन करते हैं—

'य ईं चकार न सो अस्य वेद य इ ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश॥
(ऋग्वेद १।१६४।३२)

आशय यह कि मातृगर्भ के आवरण में बद्ध पड़ा हुआ जीव अज्ञानवश अनेक जन्म धारण करता है। यह अजन्मा होकर भी अज्ञानवश सदा स्खलनशील बनकर बहुप्रजा याने अनेक जन्म धारण करता है और विवश होकर इस घोर कर्म में पड़कर भी वह क्या करता है, यह भी नहीं जानता। वह जो देखता है वह भी उससे छुपा हुआ रहता है जिस कारण वह सदा अज्ञान में रहता है। सर्वज्ञ और उदात्त आत्मा का यह कैसा अध:पतन है, देखो।

अपनी चार देह रहती है। पहला, यह दीखने वाली जड़ देह जो कि अस्थि, मांस, मज्जा, रक्त द्वारा बनती है। इसी देह में सुप्त अवस्था में और एक सूक्ष्म देह रहती है जिसे लिंगदेह कहते हैं। यही वह छायापुरुष है जो कि भूत, भविष्य, वर्तमान से और देशकाल से परे रहता है जिस कारण वह कहीं भी क्षणार्ध में जा सकता है और वहाँ की कोई भी चीज उठाकर इच्छित स्थान पर तत्क्षण ला सकता है। यह अपनी छाया जैसी दीखता है जिसको अधिक निर्मोही बनाकर साधक आत्मरूप-अवस्था का अनुभव ले सकता है। परन्तु इस लिंगशरीर को इस प्रकार बन्धन में रखकर, उस द्वारा सिद्धि जैसे काम करने से साधक अधिक माया में फँसकर उसकी अवनति भी हो सकती है। इस छायापुरुष की माया में अथवा कर्षण में सच्चा साधक नहीं फँसे अन्यथा साधक का अध:पतन निश्चित है। इसलिए हनुमानरूप साधक इस छायारूस सिंहिका के चंगुल में नहीं फँसते हैं। इस लिंगशरीर से उच्च और भी सूक्ष्म कारणदेह है जो कि संकल्प मात्र से कार्य करता है। कारण शरीर से उच्च और सूक्ष्म महाकारण शरीर रहता है जो इस संसार का कारणबीज है। इन उच्च अवस्थाओं में जाने के लिए साधक को अपनी निम्न अवस्थाओं का त्याग करना ही पड़ता है। हनुमान इस प्रकार अपनी हठेली सिंहिका वृत्ति के ऊपर जाकर मोहमाया के चंगुल में नहीं फँसना चाहते हैं।

छायाग्राही साधना :

अपने इस छायापुरुष को सिद्ध कर उस द्वारा अनेक काम करवा लेना, यह एक सिद्धि है। कुछ लोग अन्य मृत व्यक्तियों के प्रेतों कों अपने वश में रखकर उनके द्वारा मिठाई निकालना, घड़ियाँ निकालना और विभूति निकालना इस प्रकार चोरी के कर्म कर निंदनीय जीवन विताते हैं। वह प्रेत-पिशाच जिस चीज को हाथ लगाते हैं वह चीज अदृश्यमान बन जाती है। उस अदृश्य चीज को तत्क्षण वह पिशाप अन्य व्यक्तियों के हाथ में रखते हैं और उस चीज का सम्वन्ध छूट जाने से वह चीज उस व्यक्ति के हाथों में पुनः दृश्यमान बन जाती है। परन्तु कुछ वाम साधक अन्य पिशाचों को अपने वश में करने के बजाय अपने ही छाया पुरुष को वश में कर उस द्वारा इस प्रकार चौर्य कर्म करवा लेते हैं। हनुमानरूप साधक इस प्रकार के प्रवल मायारूप सिंहिका राक्षसी के चंगुल में न फंसकर उससे अपना छुटकारा करवा लेते हैं। सच्चे अध्यात्म पाने वाले साधक को इसी प्रकार वर्ताव करना चाहिए। अपने छायापुरुष का उपयोग इस प्रकार न कर स'धक को यह चाहिए कि वह अपनी छायासिद्धि का उपयोग आत्मज्ञान के लिए करे। हनुमानरूप साधक इसी प्रकार उच्च आध्यात्मिक साधना के लिए अपने सिंहिकारूप माया से छुटकारा पाते हैं और लंका की ओर आगे बढ़ते हैं।

हनुमान का लंका प्रवेश :

इस प्रकार अनेक साधना प्राप्त आपत्तियों से मुकाबला करते हुए हनुमान रूप साधक लंका में प्रवेश करते हैं। उस काञ्चन मयी लंका का विश्वकर्मा ने निर्माण किया था। विश्वकर्मा याने सृष्टि का नियंत्रक परमेश्वर अथवा प्रत्यक्ष प्रकृति माता ही है। मन के कारण इस संसार का अभ्यास होता है अन्यथा यह जगत ही नहीं है। इसीलिए विश्वकर्मा याने मन के द्वारा सुवंर्णमय लंका रूप माया का निर्माण हुआ था। जिसका मन लंका रूप माया में फँसेगा वही सीता जैसे लंका में वन्दी वनकर रहेगा। हनुमान रूप साधक सीता रूप साधक-वृत्ति से उच्च है कारण हनुमान आगे चलकर लंका को जलाते हैं परंतु उसी लंका रूप माया के अशोक वन में सीता अपनी वृत्ति के कारण रावण की बन्दीवान बनती है जिसकी खोज करने के लिए उच्च साधक हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं। हनुमान मनोजयी थे इसलिए वे लंका की माया में नहीं फँस सकते थे। उन्होंने अपने मन पर विजय प्राप्त की थी। वे रामायण में कहते हैं (५।११।४२)—

मनोहि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभा स्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥

'संपूर्ण इन्द्रियों को शुभाशुभ प्रेरणा देना मन का काम है। मेरा मन पूर्णतया स्वस्थ है,' हनुमान कहते हैं। इस प्रकार के मनोजयी हनुमान को माया रूप लंका में स्थित सीता का शोध करना मुश्किल नहीं होता है। लंका की माया में जो फँसेगा वह किसकी खोज कर सकता है?

अदृश्य बनकर हनुमान ने समस्त लंका का कोना-कोना खोज डाला परन्तु उन्हें सीता कहीं मिली नहीं। सीता की खोज करने में और एक दिक्कत थी। सीता को हनुमान ने नहीं देखा था। परन्तु अनभिज्ञ सीता की खोज करना हनुमान ने जारी रखा। हनुमान के पास भगवान राम की एक अंगूठी थी जिसे दिखाकर वह राम-पत्नी सीता की खोज करना चाहते थे। आखिर अशोक वाटिका के मार्ग से हनुमानजी गुजरते हैं। वहाँ उन्हें एक चैत्य प्रासाद मिला। चैत्य प्रासाद याने बौद्धों का विहार है जिसकी माया में सीता फँसी थी। याने साधक राम की सीता-वृत्ति चैत्य प्रासाद के आश्रय से याने बौद्धमत के आश्रय से रहती है। रामायण में उसका उल्लेख स्पष्ट रूप से लिखा है।

'अशोक वानिकायां तुतस्यां वानरपुंगवः।
सददर्शा विदूरस्थं चैत्यप्रासाद मुच्छितम् ॥ ५।१५।१५ ॥

इस प्रकार की बौद्धिक माया में फँसे हुए सीता-वृत्ति का शोध कर बौद्ध माया से उसे मुक्त करना बौद्ध भिक्खु का वेश धारण करने वाले हनुमानजी करते हैं, यह ध्यान में रखना आवश्यक है। राम-रावण युद्ध याने अपनी दो वृत्तियों का झगड़ा है जिनका अन्तर्युद्ध हर उच्च साधक को सहन कर उस पर विजय पाना आवश्यक है। हनुमान यहीं जटिल काम करते हैं।

रावण भेंट :

इस प्रकार चैत्य प्रासाद याने बुद्ध स्तूप के पास अशोक वन में चिन्ता में मग्न बैठी हुई सीता रामदूत हनुमान को देखी। सीता एक मानव जैसे दीखती थी, वह बहुत सुन्दर थी और उसकी चारों ओर राक्षसियों का पहरा था। बस अब हनुमानजी समझ गये कि वह दीन महिला याने राम-पत्नी सीता है। इतने में एक महापुरुष अपनी अनेक स्त्रियों सहित वहाँ आया। हनुमान एक घने पेड़ पर बैठकर यह सब देख रहे थे, परन्तु वे किसी को दिखाई

नहीं देते थे। उस महापुरुष की चाल-चलन से वह रावण होगा, यह बुद्धिमान हनुमान ने जान लिया। पञ्चवटी से याने वैदिक परम्परागत पंच-प्राण और पञ्चशील तत्वों से दूर हटाकर सीता को रावण अब अपने लंका राज्य में ले आया था जहाँ कि चैत्यप्रासाद याने बौद्ध स्तूपों की भरमार थी। ऐसे ही एक चैत्यप्रासाद याने बौद्ध स्तूप के निकट सीता को रखा गया था; याने बौद्धमत के प्रभाव के अन्तर्गत सीता को रखा गया था और उस बौद्ध मत के प्रभाव के कारण उसे किसी प्रकार का शोक न हो इसलिए उसे वृत्ति रूप अशोक वाटिका में रखा गया था जिससे वह स्वयं अशोक बने। परन्तु इस प्रकार बौद्ध अशोक वन सीता के लिए अति दुःखदायक था और बौद्धमत वृत्ति रूप राक्षसियों के वीचं उसे जीना मुश्किल था।

यद्यपि सीता को रावण ने बौद्ध मत रूप अशोक वन में रखा था परंतु सीता को उस प्रकार का जीवन मान्य न था। वह दीन हीन दीखती थी। उसके शरीर पर मलीन वस्त्र थे जो कि राम-भक्त हनुमान देख रहे थे। 'मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम्। संवृत्तां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान कपि: ॥ ५।१७।२६ ॥' ऊपर निर्दिष्ट श्लोक में वस्त्र का आशय वृत्ति लेने से सीता की अवस्था का पूरा बोध हो जायेगा। बौद्धमत के अशोक वाटिका में रहने सें सीता के वृत्ति रूप वस्त्र भी मलीन हो गये थे और वह मत-संदिग्धता के कारण हीन-दीन दीखती थी। अब राम-वृत्ति रूप सीता अपनी बन गयी यह मानकर बौद्ध-मत रूप ब्रह्म जानने वाला ब्राह्मण रावण सीता को मनाने याने अपना बनाने आता है। सीता पर रावण मरता था कारण सीता सुन्दर थी, शालीन थी और मन को सुख शान्तता देने वाली थी। सीता याने परम्परागत वैदिक वृत्ति और मत यह जानना आवश्यक है। सीता को देखकर बौद्ध ब्राह्मण रावण सीता से कहता है -

'मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम्।
आदर्शनांमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥५।२०।२॥
स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वं दैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा ॥५।२०।५॥
एवं चैवमकामां त्वां न च स्पक्ष्यामि मैथिलि।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तनाम् ॥५।२०।६॥
कुसुमित तरुजाल संततानि भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि।
कनकविमलहार भूषिताङ्गी विहर मयासह भीरू काननानि ॥५।२०।३६॥

ऊपरनिर्दिष्ट श्लोकों का आशय निम्नप्रकार है—रावण सीता को देखकर कहता है—"हाथी के सूंड़ के समान सुन्दर जांघोंवाली सीते ! मुझे देख कर तुम अपने स्तन एवं उदर को इस प्रकार छिपाने लगी हो, मानो डर के मारे अपने को अदृश्य कर लेना चाहती हो। हे भीरू ! परायी स्त्रियों के पास जाना अथवा उन्हें बलपूर्वक हर लाना यह राक्षसों का अपना धर्म है, इसमें सन्देह न करो। मिथिलेश नन्दिनी ! ऐसी अवस्था में भी जब तक तुम मुझे न चाहोगी, तब तक मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा फिर भले ही कामदेव मेरे शरीर पर इच्छानुसार अत्याचार करें। भीरू ! तुम सुवर्ण के कांतिमान अलंकारों से अपने सुन्दर शरीर को विभूषित कर मेरे साथ समुद्र तटवर्ती काननों में बिहार करो जिनमें खिले हुए वृक्षों के समुदाय सर्वत्र फैले हुए हैं और उन पर भ्रमर मँडरा रहे हैं।"

ऊपरी श्लोक में रावण स्वयं कहता है वह राक्षस कुल का है जिसमें परायी स्त्रियों के पास जाना अथवा उन्हें बलपूर्वक हर लाना धर्म माना जाता है। फिर हरण किये हुए सीता पर वह अपनी कामेच्छा की पूर्ति करने के लिए बलात्कार क्यों नहीं करता है ? एक राक्षस होकर रावण में इतना संयम कैसे आया जो कि बड़े-बड़े श्रेष्ठ महात्माओं में भी नहीं पाया जाता। कामातुर व्यक्ति को न भय और न लज्जा रहती है। कामातुराणां न भयं न लज्जा:।' फिर एक राक्षसी संस्कृति के रावण में इतना विलक्षण मन:संयम कहाँ से आया ? इससे यह स्पष्ट है कि रावण सीता आदि पात्र ऐतिहासिक नहीं वरन् वृत्ति रूप साकार उपमा दर्शन हैं। वृत्तियाँ एकदम नहीं बदली जातीं। वृत्तियों के संघर्ष में अन्य वृत्तियों पर बलात्कार करने से साधक की वृत्तियाँ नहीं बदल सकती हैं। इसलिए रावण रूप बौद्ध ब्राह्मण वृत्ति परंपरागत वैदिक वृत्ति रूप राम-पत्नी सीता पर बलात्कार नहीं कर सकती है। इसलिए रामायणकार रावण-वृत्ति द्वारा सीता-वृत्ति पर बलात्कार करते हुए नहीं दिखाते हैं।

इस पर सीता रावण को उत्तर देती है (सुन्दर काण्ड, सर्ग २१, श्लोक ४।।)—

न मां प्रार्थयितुं युक्तं सुसिद्धिमिव पापकृत्।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम्।।

'पापाचारी पुरुष सिद्धियों की इच्छा नहीं कर सकता है इसी प्रकार तुम मेरी इच्छा करने के योग्य नहीं हो। पतिव्रता के लिए निन्दनीय कर्म मैं कदापि नहीं कर सकती।' इस उत्तर से रावण अति क्षुब्ध बना और उसने सीता

को अपने मन-परिवर्तन के लिए और दो महीनों का समय दिया जिसमें सीता रावण को अपनाने का निर्णय कर ले। और दो महीनों के अन्दर सीता यदि रावण सन्मुख नहीं बनती है तो रावण उसे अपनी शैय्या पर खींच कर उसपर बलात्कार करेगा। रामायणकार लिखते हैं—

'द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः।
ततः शयनमारोह मम त्वं वर वर्णिनि ॥५।२२।८॥
उर्ध्वंद्वाभ्यां तु मासाभ्यां भर्तारं ममनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थमालभन्ते महानसे ॥५।२२।९॥'

रावण ने सीता को भयानक धमकी दी है 'वरानने मैंने तुम्हारे लिए जो दो मास की अवधि दी है उस अनुसार मुझे और दो मास प्रतीक्षा करनी है। उसके बाद तुमको मेरी शय्या पर आना ही होगा। और याद रखो दो मास के पश्चात यदि तुम मुझे अपना पति बनाना स्वीकार न करोगी तो मेरे भोजन, नास्ता के लिए तुम्हारे शरीर के टुकड़े किये जायेंगे।'

इस पर सीता ने रावण को मुंह तोड़ उत्तर दिया (—सुन्दर काण्ड, ॥५।२२।२२॥)—

शूरेण धनदभ्राता बलैः समुदितेन च।
अपोह्य रामं कस्माच्चिद दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥

रावण तूं स्वयं को बड़ा शूर मानता है। तू कुवेर का भाई है और तेरे पास सेना-बल भी अधिक है। फिर राम को छल से दूर हटाकर तूने मेरी चोरी क्यों की ?''

यह देखकर कि रावण का क्रोध बढ़ गया रावण-पत्नी राक्षस सुन्दरी दोनों के मध्य में आकर कहती है। 'महाराज आप मेरे साथ रतिक्रीड़ा कीजिए। इस कान्तिहीन और दीन मानव-कन्या से आप किसलिए संभोग करना चाहते हैं ? ब्रह्माजी ने इसके भाग्य में आप से संभोग करने का नहीं लिखा है, यह दीखता है। प्राणनाथ जो स्त्री अपने ऊपर आरक्त नहीं है और प्रेम नहीं करती उसको भोग लेने से आनन्द प्राप्त नहीं होता है। अपने पर अनुराग और प्रेम करने वाली स्त्री से संभोग करने से बहुत आनन्द प्राप्त होता है, इसलिए आप पर अनुरक्त मुझसे आप रतिक्रीड़ा कीजिए।' यह कहकर मन्दोदरी रावण को अन्य स्थान पर ले गई। इस प्रकार घनश्याम वर्ण का वह राक्षस रावण हँसते हुए वहाँ से निकल गया। रावण के जाने के पश्चात सीता शोक करने लगी, हे राम, हे लक्ष्मण, हे कौसल्या, हे आर्ये सुमित्रां'। 'हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च। हा श्वश्रुर्मम कौसल्ये

हा सुमित्रेति भामिनी ॥५।२६।११ रावण के जाने के पश्चात सब राक्षसी स्त्रियाँ सीता को भय दिखाकर चाहे सो बोलती थीं। परंतु सीता गंभीर ढंग से उन सबों से निपट लेती थी। इतने में एक त्रिजटा नामक राक्षसी आकर सीता को समझाती है। त्रिजटा याने वेद वाङ्मय। यह त्रिजटा समझदार दीखती थी। वह सीता के पास आकर कहती है—'सीता, राम महातेजस्वी पुरुष हैं। उसे यह राक्षस क्या जीत सकते हैं। राम की विजय निश्चित है। तुम डरो मत, यह मानना पड़ेगा कि त्रिजटा यह वेदज्ञान है। सब राक्षसी के दूर चले जाने के बाद हनुमानजी सीतामाई से वार्ता करने का सोचते हैं।

संस्कृत और प्राकृत पाली :

हनुमानजी बहुत बुद्धिमान थे। वे सोच रहे थे कि यदि सीता से शुद्ध संस्कृत वाणी में बोलते हैं तो उन्हें ब्राह्मण रावण समझकर वह डर के मारे उनसे खुले भाव से न बोलेगी। इसलिए अयोध्या के आस-पास में जो भाषा बोली जाती थी उस प्राकृत पाली में सीता से बोलना हनुमानजी पसन्द करते हैं। हनुमानजी सीता से अयोध्या के आस-पास की पाली प्राकृत भाषा में बोलते हैं। अपने देश की भाषा सुनकर सीता प्रसन्न होती है और हनुमानजी से बोलती है।

'अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥५।३०।१८॥

इससे अनेक सिद्धान्त और प्रमेय निकल सकते हैं। हनुमानजी सीता को भाषा द्वारा भय उत्पन्न न हो इसलिए सतर्क रहते हैं। फिर साधारण समझ के अनुसार हनुमानजी यदि एक पूँछ वाला विशाल काय बानर होकर अपने बानर मुख से कौन-सी भी भाषा बोलते तो सीता और भी डर जाती। परन्तु हनुमानजी प्राकृत पाली भाषा सुनकर वह घरेलु प्रेम से उनसे बात-चीत करती है। इसलिए हनुमान एक अजीब बानर न होकर साधारण मानव जैसा व्यक्ति होना चाहिए। और दूसरा प्रमेय यह कि राम जैसे उच्च कुलोत्पन्न राज पुरुष की पाली की भाषा उस समय संस्कृत न रहकर प्राकृत पाली होनी चाहिए। समाज की यह अवस्था देखकर भगवान गौतम बुद्ध ने अपने मतप्रचार की भाषा पाली रखी थी यह कितना था, उचित यह विचार-वान जन समझ सकते हैं। उस प्राचीन जमाने में भी जन साधारण की भाषा प्राकृत पाली थी जिसका आधार लेने से बौद्ध मत का प्रचार उस समय के सारे संसार में शीघ्र हुआ।

और एक कल्पना उभड़ आती है। हनुमान तो दण्डकारण्य के पम्पा-सरोवर स्थिर दक्षिण के राज्य के रहने वाले थे फिर वे अति उत्तर अयोध्या की जन-भाषा किस प्रकार जानते थे? इससे यह स्पष्ट है कि न हनुमान कोई ऐतिहासिक पुरुष थे और न सीता कोई राम की प्रत्यक्ष ऐतिहासिक पत्नी थी। रामायण के सारे पात्र वाल्मीकिजी की कुशाग्र बुद्धि का निर्माण है। इसलिए रामायण ऐतिहाहिक नहीं वरन आध्यात्मिक अनुभूतियों का सुरस कथारूप संवाद है, इस महान सत्य पर हमें आना पड़ता है। क्या संस्कृत वाणी बोलने वाले जनों को उस समय मानुष याने मानव कहते थे और प्राकृत पाली वोलने वाले अन्य जनों को वानर बौद्ध अथवा राक्षस कहते थे? क्या मानव, राक्षस और बानर योनि रामायणकार की बुद्धि का विलास है अथवा सत्य है? रावण ब्राह्मण था इसलिए उसकी भाषा संस्कृत बताई है। परन्तु एक ब्राह्मण संस्कृत भाषाभिमानी रहकर भी रावण के राज्य में सर्वत्र चैत्यप्रासाद याने वौद्ध रूप दिखाई देते हैं। तो क्या उस समय के बौद्ध मतावलम्बी जन वैदिक परम्परा-प्राप्त संस्कृत भाषा ब्राह्मणत्व का स्वीकार कर सकते थे? इससे भी यह स्पष्ट है कि आज जैसे उस समय बौद्ध समाज वैदिक समाज से इतना विलग नहीं था। ब्राह्मण रहकर भी लोग बौद्ध मतानुयायी रह सकते थे और पाली का व्यवहार न कर संस्कृत का व्यवहार कर सकते थे। डा० बाबासाहेब आम्बेडकर भी मान्य करते हैं कि उस समय भगवान गौतम बुद्ध के बौद्ध अनुचरों में सैकड़ा ७५ लोग बाह्मण याने बुद्धिजीवी थे। फिर आज के नव बौद्धों में ब्राह्मण के खिलाफ इतना जहरीला प्रचार क्यों चल रहा है?

आज के नव बौद्ध किसी जाति या धर्म परम्परा का द्वेष छोड़कर अपने आर्यतत्वों का प्रेम से प्रचार करते हैं तो उनके आर्य तत्वों का फिर से सारे विश्व में प्रचार सहजता से हो सकता है। द्वेष भाव से कोई भी धर्म अथवा तत्व अधिक समय नहीं पनप सकता है। और यदि पनपता है तो उस मजहब के लोग अविचारी और अन्धश्रद्धावान माने जायेंगे जैसे कि कुछ मात्रा में मुस्लिम और ईसाई मजहबों के बारे में देखा जाता है। इस प्रकार रावण वृत्ति का वध करना हरएक आत्मज्ञान और स्वानन्द प्राप्त करने वाले राम का कर्तव्य है इसलिए राम रावण को जान से मारते हैं फिर वह रावण वैदिक परम्परागत ब्राह्मण रहे, संस्कृत का अभिमानी विद्वान रहे, सत्ताधीश रहे अथवा प्रचार कुशल भगवान, महात्मा, संन्यासी अथवा बौद्ध रहे। रावण शब्द की परिभाषा शास्त्रकार बताते हैं, 'रैवति इति रावणः, याने जो

अपना केवल ढोल पीटता है परन्तु आचरण में पाखंडी, अहंकारी और भोगी रहता है।

हनुमान सीता संवाद :

सीता के अयोध्या प्रदेश में बोली जाने वाली प्राकृत पाली भाषा में हनुमान सीता से संवाद करते हैं। परन्तु उसके पूर्व हनुमानजी तो अयोध्या कभी नहीं गये थे, और न उनका अयोध्या परिसर से कभी सम्बन्ध था, फिर हनुमानजी अयोध्या की बोली कैसे बोल लेते हैं ? कैसे भी हो, हनुमानजी ठेठ अयोध्या की भाषा में सीता से बड़ी सुलभता से बोलते हैं। अपनी मातृ-भाषा में हनुमान मानव को बोलते हुए सीता को ऐसा लगा कि उसके घर का कोई आदमी आया हो। सीता बड़े प्रेम से मानव हनुमान से बोलती है। हनुमान सीता को प्रश्न पूछते हैं—

'रावणेन जनस्थानात् बलात् प्रमथिता यदि।
सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥५।३३।१२॥'

'क्या आप ही वह सीता हैं जिसे कि रावण ने बल से जनस्थान से हरण किया ? मैं आपके बारे में जानता हूँ।' सीता ने अपनी यथायोग्य जानकारी हनुमान को दी और बताया कि दो मास के बाद रावण उसका खात्मा करेगा अथवा वह अपनी शील-रक्षा के लिए अपना प्राण त्याग करेगी। सीता का विश्वास संम्पादन करने के लिए हनुमान उसे राम की अंगूठी देते हैं और बहुत शीघ्र राम उसको छुड़ा लेंगे, यह उसे अभिवचन देते हैं। अब यह अंगूठी राम कहाँ से लाते हैं जबकि माता कैकेया उनसे सब वस्त्र और अलंकार हर लेती हैं ? राम की अंगूठी प्रत्यक्ष कोई अलंकार न था परन्तु अध्यात्म मार्ग में प्राप्त अनुभूति थी जो कि रामवृत्तिरूप सीता जान लेती है। हनुमान जी राम के बारे में बताते हैं—

'रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥५।३५।११॥'

रावण चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था में उच्च वर्ण का ब्राह्मण था फिर एक ब्राह्मण को मारने में राम चातुर्वर्ण्य की रक्षा करते हैं या हत्या ? फिर चातुर्वर्ण्य की रक्षा के लिए राम रावण को मारकर सीता का छुटकारा किस प्रकार करते हैं ? ताड़का को मारते समय भी विश्वामित्र राम को इसी प्रकार चातुर्वर्ण्य की रक्षा हेतु ताड़का को मारने के लिए कहते हैं। वास्तविक ताड़का भी ब्राह्मण थी फिर ताडका अथवा रावण जैसे ब्राह्मणों को मारने में राम कौन-

से चातुर्वर्ण्य की रक्षा करते हैं? इसलिए चातुर्वर्ण्य का आज की जाति-व्यवस्था का आशय उस समय नहीं था, यह स्पष्ट है। इसलिए आज जैसी जातिन्द्रिय चातुर्वर्ण्य रामायणकार को मान्य नहीं था, यह इस कथा द्वारा स्पष्ट दिखाई देता है। सीता-प्राप्ति के लिए रामरूप साधक जो तपस्या करता है इस कारण राम का आहार भी किसी वानप्रस्थ व्यक्ति जैसा हो गया था। यहाँ पर रामायणकार राम को सात्विक आहार दिखाते हैं जो कि शास्त्र-दृष्टि से सही है। हनुमान सीता को राम के आहार सम्बन्धी किष्किधा काण्ड सर्ग ३६ में बताते हैं—

न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते।
वन्यं सुविहितं नित्यं भुक्तमन्नाति पंचमम् ॥४१॥
नैव दशान न मशकान् कीटम् न सरीसर्पान।
राघवोऽपनवेद गात्रात् त्वदमनेनान्तरात्मना॥

सीता-प्राप्ति के लिए न राम मांस खाते हैं और न शराव पीते हैं, वे कन्द फल मूल ही खाते हैं। वे न मक्खी के अथवा मच्छर के दंश से व्यथित होते हैं और न अपने शरीर की चिन्ता रखते हैं। यह सब लक्षण किसी व्रतस्थ साधक जैसे हैं जो कि साधना में आवश्यक है। इससे भी यह स्पष्ट है कि सीता के लिए राम का शोक याने साधना में प्राप्त सात्विक अनुभूतियों की अभिलाषा है जिसके लिए साधक को ऊपरनिर्दिष्ट राम जैसे आहार-विहार रखना पड़ता है।

बातों बातों में हनुमानजी सीता को सुझाते हैं कि रावण यदि दो मास के बाद सीता पर बलात्कार करता है तो उससे उत्तम यह है कि सीता उनके कन्धों पर बैठकर राम के पास चलें। परन्तु पर पुरुष का स्पर्श टालने के लिए सीता हनुमान के सुझाव को स्वीकार नहीं कर सकती हैं। वह कहती हैं कि रावण उसे बलात् ले आया था इसलिए उसका शरीर-स्पर्श सीता को सहना पड़ा परन्तु अब सीता अपनी इच्छा से पर पुरुष का स्पर्श न करेगी। वास्तविक सीता हनुमान के कंधों पर चली जातीं तो तत्पश्चात का घोर अनर्थ टाला जाता परन्तु राम का सेवक याने पुत्र जैसे पवित्र हनुमान के शरीर का स्पर्श सीता को पर पुरुष के स्पर्श जैसा लगता है। अध्यात्म शास्त्र की दृष्टि से सीता का कथन ठीक ही था। यहाँ पर पर पुरुष याने पर धर्म अर्थात् परवृत्ति का आशय लेने से सीता का परधर्म के कंधे पर

बैठकर स्वस्थान जाना योग्य नहीं था। गीता इस परमधर्म स्वीकार का स्पष्ट निषेध करती है—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणात् परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

सीता इसीलिए परवृत्तिरूप हनुमान की वृत्तिस्पर्श को स्वीकार नहीं करती। उससे यह बेहतर था कि राम और रावण में वृत्तिसंघर्ष होकर उस संघर्ष में राम रावण-वृत्ति का नाश कर अपनी सीता-वृत्ति का स्वीकार करें। सीता-वृत्ति के लिए वही श्रेयस्कर था इसीलिए सीता हनुमान के कंधों पर जाना नहीं स्वीकारती हैं।

चैत्यप्रासाद का विध्वंस :

सीता का यह विचार सुनकर हनुमान राम के पास वापस जाने का सोचते हैं। वैदिक परम्परा में अपने मत का आग्रह औरों पर करना योग्य नहीं माना जाता है। अन्य परम्परा में अपने मतों का आग्रह और अत्याचार भी सुयोग्य माना जाता है। वैदिक परम्परा उदार मतवादी है और अन्य परम्परा आग्रही और अत्याचारी है। आज भी वह उदार परम्परा हिन्दुओं द्वारा देखी जाती है। हनुमान अन्य आग्रही परम्परा के होते तो वे आगे का भीषण संघर्ष टालने के हेतु सीता को उठाकर राम के पास ले जाते। परन्तु उस प्रकार करना वैदिक परम्परा के भक्त हनुमान पसन्द नहीं करते हैं। परन्तु सीता को छलने वाले अन्य वृत्तिरूप राक्षसियों को पाठ सिखाने के लिए हनुमान राक्षस-राक्षसियों को मारकर लंका को उध्वस्त करना चाहते हैं। उन्होंने कई राक्षसों को पीटा और रावण के चैत्य प्रासाद को याने बौद्ध स्तूप को नष्ट किया। वास्तव में न हनुमान ने राक्षस-राक्षसियों को पीटा और न बौद्ध स्तूप का विध्वंस ही किया। हनुमान का यह करना याने साधक को अपने अन्तर्गत परायी वृत्तियों का हनन करना है। जो साधक हनुमान अपनी सीता-वृत्ति को कंधों पर उठाकर राम स्वामी के पास बलात नहीं ले जाता क्या वह राक्षस-राक्षसियों को मारकर उनके चैत्य प्रासाद या बौद्ध स्तूपों को नष्ट करेगा ? इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रामायण के समय बौद्धों द्वारा वैदिक परम्परा के लोगों पर सीता जैसा अन्याय किया जाता था और वैदिक परम्परा के लोग भी हनुमान जैसे बौद्ध स्तूपों का विध्वंस करते थे जो कि रामायण में उसका निर्देश है।

ततः स किंकरा न्हत्वा हनूमान्ध्यानमास्थितः ॥१॥
वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः ।
तश्मात्प्रसादमद्यैवमिमं विध्वंसयाम्यहम् ॥५।४३।२॥'

इस प्रकार सब रावण-वृत्ति रूप राक्षस किंकरो का और चैत्य प्रासाद का हनुमान विध्वंस करते हैं। इस कथा का ऐतिहासिक आशय लेना भूल है।

इस प्रकार अपनी वैदिक निष्ठा का साधक हनुमान परिचय देते हैं और अपने सामर्थ्य का भी परिचय वे अन्य परंपरा के भक्तों को देते हैं। रावण के पाँच सेनापतियों को हनुमान इस प्रकार मारते हैं। पँचप्राण रूप सेनापति है न कि अन्य कोई व्यक्ति ! हनुमान का यह पराक्रम देखकर रावण घवड़ा गया और उसने अपना पराक्रमी पुत्र इन्द्रजीत को हनुमान को पकड़ने भेजा। इन्द्रजीत ने एकदम ब्रह्मास्त्र चलाया। उस ब्रह्मास्त्र को भी हनुमानजी ठुकरा सकते थे परन्तु अति बलाढ्य ब्रह्मास्त्र का आदर रखने के लिए हनुमानजी स्वयं को ब्रह्मास्त्र द्वारा बद्ध करवा लेते हैं। इस प्रकार हनुमानजी ब्रह्मास्त्र में पकड़े गये और उन्हें वन्दी बनाकर रावण के सन्मुख लाया जाता है। ब्रह्मारूप याने ब्रह्मावस्था, यह हम समझ गये हैं। हनुमान ब्रह्म में बद्ध किये जाते हैं और ब्रह्म राजा रावण के सन्मुख खड़े किये जाते हैं। इन्द्रियों को जो जीत सकता है ऐसा इन्द्रजीत साधक ही ब्रह्मचारी हनुमान रूप साधक को अपने द्वारा प्रस्तुत ब्रह्मास्त्र में वद्ध कर सकता है। हनुमान इस प्रकार इन्द्रजीत द्वारा प्रेषित ब्रह्मास्त्र में स्वयं को बद्ध करवा लेते हैं। केवल इन्द्रिय जय करने से ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है यह मानने वाली साधक-वृत्ति याने इन्द्रजीत है। क्षणभर के लिए हनुमानजी इस वृत्ति रूप ब्रह्मास्त्र द्वारा निर्माण किये गये ब्रह्मास्त्र में फँस जाते हैं।

लंकाविध्वंस और लंकादहन :

इस प्रकार ब्रह्मास्त्र द्वारा बद्ध कर हनुमानजी को रावण के सन्मुख खड़ा किया जाता है। हनुमान ने रावण के पाँच सेनापति और चैत्य प्रासाद क्यों नष्ट किये इस बारे में उनसे कड़ी भाषा में पूछा जाता है जिसका उत्तर हनुमानजी हँसी मजाक द्वारा देते हैं। रावण का क्रोध और भी बढ़ जाता है और हनुमान को मार डालने का आदेश रावण देता है। परंतु राजदूत को

नहीं मारना चाहिए यह आर्य-नीति विभीषण ने रावण को बताई जिसे रावण ने मान ली। परंतु उस बानर को कुछ तो भी दण्ड देना आवश्यक है यह बताकर रावण हनुमानजी की पूंछ में कपड़े बाँधकर उसे जलाने का आदेश देता है जिससे कि वह क्रमागत पूरा जल जाय। रावण का यह इरादा देखकर हनुमान रावण से स्पष्ट कहता है—

'यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
काल रात्रीति तां विद्धि सर्व लङ्काविनाशिनीम् ॥५।५१।३४॥'

'हे रावण, सीता को बलात् भगाकर ले आने के कारण सीता तुम्हारे लिए काल-रात्रि जैसी है जिस कारण सर्व लंका का विनाश अवश्य होगा।' हनुमान का यह उजड्ड उत्तर सुनकर रावण ने उनकी पूंछ को जलाकर उसे मुक्त किया। बस हनुमान को जो चाहिए था सो मिल गया। हनुमान ने सारी लंका के मकानों पर उछल-उछलकर पूरी लंका जलाना शुरू किया। इस प्रकार लंका को जलाकर हनुमानजी दक्षिण सागर पर जाकर अपनी पूंछ बुझाते हैं और लंकादहन कर राम की ओर प्रक्षेपण करते हैं।

यहाँ एक बात ध्यान में रखने योग्य है और वह यह कि अन्यान्य सारे देशों में राजदूत को मारना, काटना, जलाना और नाक, कान तक काटना इस प्रकार के असभ्य वर्णन किये जाते थे, ऐसे समय पर भारत में वैदिक परंपरा के कारण एक राक्षसी-वृत्ति का रावण भी राजदूत बनकर आये हुए हनुमान को नहीं मारता है। इससे भारतवर्ष की उच्च परंपरा ध्यान में आ सकती है। लंका-दहन का वर्णन योगीराज वासुदेवानन्द करते हैं।

सूक्ष्मे देहाख्य लंकांच दग्धोपनिषदस्त्रतः।
कामक्रोधादि रक्षांसि हत्वा बुद्ध सहस्त्रतः ॥८॥

देहबुद्धि का नाश याने लंकादहन है जो कि उपनिषद द्वारा प्राप्त ज्ञानाग्नि द्वारा किया जाता है। हनुमान को वापस आते हुए देखकर सारे बानर बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने हनुमान को शराब पिलाई। इस प्रकार सब बानर शराब पीकर धुत्त रहे। क्या हनुमान जैसे कर्मठ ब्रह्मचारी शराब पीता है ? हाँ, देखिये—

'वेरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतींचमूम्।
सुराणामृतं वीरौ पीतवन्तौ महाबलौ ॥५।५९।४॥'

मानव अपनी बुद्धि का दुरुपयोग कर मांस और मद्य का सेवन कर सकता है परंतु प्राकृतिक स्तर पर और प्रकृति के अधीन रहने वाले बानर जैसे पशु कदापि शराब का सेवन और मांस-भक्षण नहीं कर सकते हैं। परंतु जब रामायण में इन बानरों को शराब पीते हुए दिखाया है तब उसका अवश्य कोई आशय रहना चाहिए और वह आशय है आध्यात्मिक ! यहाँ शराब याने आध्यात्मिक तन्द्रा या धुंध माननी चाहिए अन्यथा बानरों का शराब पीना बेमतलब है। और अब अपनी सात्विक अनुभूति रूप सीता अपने को शीघ्र मिलेगी, यह जानकर राम भी उन वानरों के साथ शराब पीकर धुंध रहते हैं।

शराब का प्रत्यक्ष ऐतिहासिक आशय लेने से अपने आदर्शों पर धब्बा लग जाता है। क्या नैष्ठिक ब्रह्मचारी हनुमान एवं राम जैसे भगवान शराब पीकर धुंध रह सकते हैं ? क्या राम और हनुमान नीच शराबी थे ? फिर शराब का आशय ऐतिहासिक नहीं वरन् आध्यात्मिक लेना ही पड़ेगा और उसी प्रकार राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, हनुमान आदि व्यक्तियों को भी !



युद्धकाण्ड

नवम अध्याय (अ)

राम की हनुमान प्रशंसा :

दुस्तर संसार सागर पार कर लंका जाकर वापस आने के कारण राम हनुमानजी की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं। युद्ध काण्ड सर्ग १ श्लोक १७ देखिये—

कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारय महाम्भसः।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समाहिताः ॥

अर्थात यह दुस्तर सागर संसार रूप सागर है जिसे लांघकर वीर साधक हनुमान वापस आता है। आने के पूर्व उस माया रूप लंका का बहुत-सा हिस्सा हनुमान जैसे श्रेष्ठ संयमी साधक जलाते हैं। लंका का जलाना याने माया को जलाना है। अब सुग्रीव राम को समझाते हैं (६।२।२)।

'किं त्वया तप्यते वीर यथान्यः प्राकृत स्तथा।
मै वंमू स्त्यज संतापं कृतघ्न इव सौहृदम् ॥'

सुग्रीव राम से कहते हैं, 'राम अब सीता रूप सात्विक अनुभूतियों के लिए आप शोक न कीजिये कारण धीर तापसी पुरुषों को किसी बाजारू आदमी जैसे अपनी पत्नी के लिए शोक करना उचित नहीं है।' भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को इसी प्रकार शोक न करने के लिए बताते हैं, 'निराशी निर्ममों भूत्वा युद्धयस्य विगत ज्वरः ॥' (अध्याय ३, श्लोक ३०)। साधना-कर्म करते समय सुग्रीव राम को और भगवान अर्जुन को विगत ज्वर रहने के लिए कहते हैं। साधना फल-प्राप्ति न होने से साधक के मन और बुद्धि का संताप बढ़ जाता है। इसलिए सुग्रीव राम को 'त्यज संतापं' इस प्रकार बताते हैं। सुग्रीव राम को और बताते हैं जिससे यह सागर याने संसार सागर है, यह अधिक स्पष्ट हो जाता है।

यह दुस्तर भवसागर कैसे पार किया जायेगा इस चिन्ता में राम थे जो कि उन्होंने ऊपर के श्लोक में कहा है (देखिये ॥ ६।२।१७ ॥)। उस पर सुग्रीव कहते हैं—

'समुद्रं लंघयित्वा तु महानक्र समाकुलम्।
लंकाकामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम् ॥६।२।५॥'

आशय यह कि बड़े बड़े मकर मच्छों से युक्त ऐसे दुस्तर समुद्र लांघकर हम लंका पर धावा करें और राक्षसों को मारें। सागर में मच्छ अवश्य रहते हैं परंतु मकर नहीं रहते। इससे यह स्पष्ट है कि समुद्र याने भवसागर है और उनमें स्थित मकर मच्छ याने अपने दुर्गुण एवं लंका में रहने वाले रावण याने अपनी बुरी वृत्तियाँ हैं जिन्हें कि हर एक साधक को मारना चाहिए। सुग्रीव के उपरोक्त संभाषण द्वारा रामायणकार हम सबों को यह सुझाते हैं कि हर साधक को अपनी बुराइयाँ और दुर्वृत्तियों को नष्ट कर यह भवसागर पार करना चाहिए।

इतना समझाने पर भी राम अपना सीता-शोक काबू में नहीं ला सकते। वे किसी कामी मजनू जैसे सीता के लिए शोक करते हैं। क्या इस प्रकार का कामी मजनू अखिल मानव समाज का आदर्श व्यक्ति बन सकता है? इस प्रकार का कामी आदर्श एक आदर्श ऋषि वाल्मीकि समाज के सामने हरगिज नहीं खड़ा करेंगे, इसमें लेखक को सन्देह नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि राम का सीता-शोक याने अन्य कुछ साधना-रहस्य होना चाहिए। राम का सीता-शोक याने साधक को तदन्तर काल में न आने वाली सात्विक अनुभूतियों का अभाव है। साधारण साधक बहुत घबड़ा जाता है जब कि वह प्रथम पायी जाने वाली अनुभूतियाँ पूर्ववत नहीं पाता है। साधना में आगे बढ़ने वाले साधक उनकी पूर्व अनुभूतियाँ न आने पर बहुत बेचैन हो जाते हैं, किसी मजनू जैसे! राम का सीता-शोक इस प्रकार एक मर्यादाशील साधक का अपनी पूर्व सात्विक अनुभूतियाँ न आने पर किया जाने वाला शोक अथवा चित्त की बेचैनी है। योगेश्वर वासुदेवानन्द सरस्वती इस पर स्पष्ट कहते हैं—

रामः परात्मापि ततः स्वानुभूति वियोगतः।
प्राप्तो दीनदशां दुःखि शुशोच विरहातुरः॥

युद्धकाण्ड के सर्ग २ और ३ राम के सीता-शोक से संपूर्ण परिपूर्ण है। राम का सीता-शोक किसी सामान्य मजनू की एवं कामी पुरुष की भी मर्यादा लांघकर राम को किसी अति सामान्य कामी, लंपट पुरुष जैसा दिखाता है। रामायणकार का राम का सीता-शोक का निःसंकोच वर्णन देखिए। इस प्रकार का मर्यादाहीन वर्णन अन्य ग्रंथों में रहने से समाज के लोग उसपर क्रोधित हो जाते परन्तु राम का शोक मानकर वे एकदम शान्त होकर राम के साथ सीता का शोक कर स्वयं एक कामी, लंपट, मजनू बन जाते हैं। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि रामायण काल में संस्कृत वाङ्मय में इस प्रकार की कामी वैषयिक रुचि बहुत बढ़ गई होगी, जिसका मुक्त वर्णन रामायण

ग्रन्थ में है। उस समय विभत्स शृंगार रस को संस्कृत साहित्य में बहुत प्रधानता थी, यह रामायण के सीता-शोक वर्णन द्वारा दीख पड़ता है—

'तौ तस्याः सहितौ पीनौ स्तनौ ताल फलोपमौ।
कदा नु खलु सोत्कम्पौ हसन्त्या मां मजिष्यतः ॥६।५।१४॥'

आशय यह कि 'समय आने पर सीता के ताल-फल समान गोल कम्पन करने वाले स्तन मेरे आतुर सीने को स्पर्श कर सीता मुझे प्रगाढ़ आलिंगन देगी।' रामायण जैसे श्रेष्ठ आध्यात्मिक ग्रन्थ में इस प्रकार का कामुक वर्णन और वह भी राम जैसे भगवान माने जाने वाले आदर्श व्यक्ति के मुख में शोभा नहीं देता है। परंतु रामायणकार की भी इस बारे में कुछ न चलती थी कारण समाज की वाङ्मयीन रुचि उसी प्रकार थी जिसका निःसंकोच वर्णन रामायणकार को समय के अनुसार अपने लोकप्रिय ग्रन्थ में करना पड़ा।

शृंगार में अधिक रस लेने वाला समाज अधिक समय पौरुषयुक्त और स्वाधीन जीवन नहीं जी सकता, यह इतिहास बताता है। रोमन लोग इसी प्रकार कामी, शृंगारिक और ऐश आरामी बने थे जिसका नतीजा यह निकला कि शीघ्र रोमन साम्राज्य नष्ट हो गया। भोगी, कामी और शृंगार प्रिय मुगलों की वही हालत भारत में बनी। अध्यात्म-साधना में रमन न होकर रोमन लोग शृंगार, काम, भोग, तृष्णा और अय्यासी में लीन रहे और अपना नाश आमन्त्रित करने लगे थे। रामायण काल का यह भोगी, कामी, शृंगार-प्रधान चित्र रामायण द्वारा दिया गया हैं। और परिणाम भी तुरन्त निकल आया। भारत पर शक, हूण, बर्बर जैसे हीन संस्कृति के लोग आक्रमण करने लगे और तब से मुस्लिम, अंग्रेज जमाने तक भारत आक्रामकों का बलि बना, गुलाम बना। राम का सीता-शोक इतिहास की भीषण घंटा बजाकर हमें बताता है, 'हे भारतवासियों, मेरे जैसे तुम कामी, आतुर, स्त्री लंपट और भोगी न बनों। तुम प्रकाश में रत होते वाले भारत अथवा भारतीय हो। अन्यथा मेरे जैसा गुलामी का वनवास तुम भी भोगोगे।' उस समय का वैदिक बौद्ध मतावलंबी भारतीय समाज कैसा था इसका चित्र राम के सीता-शोक द्वारा मिलता है। हमारे विद्वान राम के सीता-विलाप को अधिक रंगाकर समाज को पौरुषहीन और असंयमी न बनावें, यह आन्तरिक इच्छा है।

रावण का युद्ध विचार :

लंका-दहन कर हनुमान भाग गये, यह सुनकर रावण चिन्ता-क्रान्त हुआ। उसने अपने इष्ट-मित्रों की सलाह ली और राम वानरों का कैसे निःपात

करना चाहिए इस बारे में गंभीर विचार किया। रावण-भ्राता विभीषण सलाह देकर गया जो कि रावण को बिलकुल पसन्द न था। सीता का त्याग करने के लिए विभीषण कहता है—

किं च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा।
आजहार जनस्थानाद्यस्य भार्यां यशस्विनः॥ ६।९।१३॥'

'हे रावण, राम ने तेरा ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि तूने सीता का बलात् जनस्थान से हरन कर लंका में अपने भोग के लिए लाया? तुम समझदार हो तो सीता को मुक्त कर राम से समझौता कर और समस्त लंका का और अपना सर्वस्व का विनाश टाल।' आगे आने वाले भीषण परिणाम की जिसे पूर्व कल्पना थी, ऐसा 'विभीषण' रावण से कहता है जो कि रावण को पसन्द न था। जिद से तप्त अविवेकी व्यक्ति किसी की सुनता नहीं। रावण ने इस प्रस्ताव पर विभीणण की तीव्र निन्दा की और उसे अपने राज्य की परिसीमा छोड़ने को कहा। अब रावण-राज्य में रहना उसके लिए भीषण फल देने वाला था, यह विभीषण ने जाना और निरूपाय होकर यह लंका छोड़कर राम की ओर जाने के लिए आकाश मार्ग से निकला।

आकाश मार्ग याने ध्यान मार्ग है, यह हमने इसके पूर्व जाना है। ध्यान में मग्न होकर साधक विभीषण राम बनने के लिए राम की तरफ आता है। राम और समस्त वानर मण्डली विभीषण का यह आना देख रहे थे। राम को विभीषण के बारे में सन्देह न था। कारण वे विभीषण के आत्माराम थे। आत्मा अपनी सब वृत्तियों को जानती है। परन्तु वानर सेना विभीषण के बारे में साशंक थी। वे आपस में कह रहे थे कि विभीषण राम-सेना में आकर रावण के लिए गुप्तचर का काम करेगा जिसका परिणाण यह निकलेगा कि राम की हार होगी और बुरी रावणवृत्ति जीतेगी। राम ने समस्त वानरों को समझाया और शान्त किया। विभीषण राम-सेना में बेखटके रहने लगे और समय-समय पर राम को युद्ध जीतने के लिए सलाह देते रहे। राम भी विभीषण की सलाह अवश्य मानते थे। समय-समय पर विभीषण ने राम को कठिन संकटों से बचाया और परिणामः रावण को हराया। इसलिए विभीषण को उत्तर भारत में विद्रोही माना जाता है। परन्तु विद्रोही था राक्षसी रावण-वृति के लिए न कि प्रामाणिक समवृत्ति के लिए। उत्तर भारतीय जन विभीषण को इस आध्यात्मिक ढंग से देखें और सच्चे रामपंथी बनें। रामपंथी हम बनें यह उनका आध्यात्मिक नारा रहे।

इन्द्रजीत :

रावण को यह पूरा विश्वास था कि उसे राम और उनकी मर्कट सेना से डरने का क्या कारण है जब कि इन्द्रजीत जैसा पराक्रमी पुत्र एवं कुम्भकर्ण जैसा सामर्थ्यशील भ्राता उसके पीछे खड़ा है। इन्द्रजीत ने इन्द्र को जीता था इसलिए उसे इन्द्रजीत कहा गया था। प्रथम उसका नाम मेघनाथ था। इन्द्र याने अपनी समस्त इन्द्रियों को उसने जीता था इसलिए उसे इन्द्रजीत कहा करते थे। जो भी साधक अपनी इन्द्रियों को जीतता है उसे इन्द्रजीत कहा करते हैं। उसका पूर्वनाम मेघनाथ था। साधना करने पर साधक की एक ऐसी अवस्था आती है कि वह सब समय अनाहत नाद सुनता है जिसमें घंटानाद, वासुरी नाद डिम्डिय याने ढोल नगारा नाद, दुम्दुभी नाद, सागर लहरों का नाद और मेघों की गर्जना नाद और जैसे कई प्रकार के नाद सुनता है। मेघों का नाद सुनना साधना की कठिन अवस्था है। ऐसे मेघनाद सुनने वाले साधक को शास्त्र में मेघनाद कहा जाता है। परन्तु यह साधना की यह उत्तम अवस्था साधक यदि बुरी प्रवृत्तियों के लिए करे तो उसे राक्षस कहा जाता है। इसलिए इन्द्रजीत यद्यपि वड़ा शक्तिशाली साधक था तो भी उसे राक्षसराज रावण का राक्षस-पुत्र वताया गया है। यह इन्द्रजीत ब्राह्मण याने ब्रह्मावस्था जानता था जिसका उसे उसकी राक्षसी वृत्ति के कारण वहुत अहंकार था। अहंकार आध्यात्मिक अवस्थाओं का शत्रु है। परन्तु अनेक साधक उन्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ, यह मानकर उस अहंकार में रहते हैं जिस कारण वे इन्द्रजीत जैसे राक्षस कहे जाते हैं। आज के सारे पाखंडी पण्डित, महाराज, भगवान, योगी और कथित सन्त उस प्रकार राक्षसराज रावण के अहंकारी वीर पराक्रमी पुत्र इन्द्रजीत हैं।

कुम्भकर्ण :

कुम्भकर्ण रावण का भाई था। बड़ा सामर्थ्यशील, पराक्रमी परन्तु विवेकी था। एक वार उसे तप करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने घोर तपस्या की। फलस्वरूप ब्रह्माजी ने उसे दर्शन दिया। क्या माँगना यह उसे मालूम न था। ब्रह्माजी ने उसे वरदान मांगने के लिए कहा। उसे माँगना था दुनियादारी से दूर रहने का वनदान परन्तु मांगते समय उसके मुख से शब्द निकले, 'मुझे सब समय नींद दो' हाँ, ठीक ही तो था। भगवान गीता में योगी को इसी प्रकार सोने के लिए कहते हैं—

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।अध्याय २, श्लोक ६७।।
अनजाने कुंभकर्ण ने पूरा समय नींद मांगी और 'तथास्तु' कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये। घर लौटे तो अपनी गलती कुंभकर्ण के ध्यान में आई। गलती दुरूस्त करने के लिए फिर से तपस्या प्रारम्भ हुई। फिर भगवान प्रगट हुए और आश्चर्य प्रकट करने लगे। कुम्भकर्ण ने पुनः वरदान माँगा कि वह पूरा समय जागृत रहे, 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।' परन्तु भगवान ने कहा कि दिया हुआ वरदान वापस नहीं होता इसलिए वरदान में सुलह हुआ कि साल में छह मास कुम्भकर्ण जाग्रत रहेगा और छह मास वह सोया रहेगा। भगवान अन्तर्धान हो गये और इस प्रकार का वरदान लेकर कुम्भकर्ण वापस लौटा। अब वर ऐसा था—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।
।।अ० २, श्लोक ६८।।गीता।।

कुम्भकर्ण बड़ा ज्ञानी था इसीलिए उसका नाम रामायणकार कुम्भ जैसे कर्णोवाला याने कुम्भकर्ण रखते हैं। उस समय छापाखाने और छपाई-कला न होने के कारण छपाई की पुस्तकें न थीं और इसलिए सब ज्ञान कर्ण द्वारा श्रवण करना पड़ता था। कुम्भकर्ण का ज्ञान विशाल था, कुम्भ जैसे विशाल था, इसलिए उसे रामायणकार कुम्भकर्ण कहा करते हैं। वैसे कुम्भकर्ण साधक अच्छे ख्यालात का था परंतु औरों के कहने से वह अपना सत्कर्म छोड़ बुरे कर्म भी कर लेता था। इसलिए ऐसे कुम्भकर्ण साधकों को रामायणकार राक्षसराज रावण का भ्राता दिखाते हैं। कहा जाता है कि कुम्भकर्ण का शरीर इतना विशाल और ऊँचा था कि वह सागर को सहजता से लाँघकर चला जाता था जिस समय गहरे सागर का ऊपरी जल उसकी नाभी तक ही आता था। हाँ, सारे अध्यात्म वीर इस भवसागर को तैरने जाते हैं परन्तु उसमें डूब जाते हैं। परंतु कुम्भकर्ण ऐसा आध्यात्मिक वीर था कि वह गहन संसार सागर उसे डुबा नहीं सकता था। संसार सागर का जल उसकी नाभी तक ही आता था। ऐसा कुम्भ जैसे विशाल, श्रवण ज्ञानी, कर्ण ज्ञानी कुम्भकर्ण था। परंतु हाय, उसका ज्ञान केवल श्रवणों का था इसलिए वह राक्षस कुल का था।

राक्षस राज रावण ने कुम्भकर्ण को अपनी सभा में बुलाया और सब वार्ता सुनाई। राम से युद्ध छिड़ने की बात कहकर कुम्भकर्ण ने उसे पूर्णतया सहाय्य करने के लिए आज्ञा दी। वैसे कुम्भकर्ण बड़ा ज्ञानी था। उसने

भ्राता रावण को खड़ी सुनाई और कहा, 'हे भ्राता, तूने बड़ा पाप किया है। एक पुरुषोत्तम मानव की पत्नी का बलात् हरन कर तूने समाज के सारे अच्छे नियमों का उल्लंघन किया है। सीता तुम पर राजी नहीं है इसलिए तुम्हारे लिए यह अच्छा होगा कि तुम सीता को राम के पास सम्मान से पहुँचाओ और लंका के विनाश का क्षण नष्ट करो।' परंतु सत्‌विचार माने तो वह रावण कैसा ? रावण ने कुम्भकर्ण को याद दिलाई कि वह रावण के अन्न-जल पर पाला गया है। इस प्रकार विभीषण जैसे उसका साथ छोड़कर राम को विजय मिलाने की बात वह न करे। कुम्भकर्ण ज्ञानी अवश्य था परंतु बुरे विचारों का भी उसपर असर होता था। रावण का कथन कुम्भकर्ण मान लेता है और रावण को पूरा साथ देने का वचन देता है। कुम्भकर्ण कहता है—

'वधेन वै दाशरथेः सुखावहं जयं तवाहर्तुमहं यतिष्ये।
हत्वा च रामं सह लक्ष्मणेन खादामि सर्वान्हररियूथ मुख्यान्॥
॥६।७२।३९॥

रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारूणीं कुरूष्व कार्याणि हितानि विज्वरः।
मया तु रामे गमिते यमक्षयं चिराय सीतां वशगा भविष्यति॥६।७२।४०॥'

वह राम लक्ष्मण को मार कर सीता को वशकर रावण को मिला देने का निश्चय करता है। यह सुनकर रावण दुष्टता की समाधि में जाता है और धन्य बनता है।

महापार्श्व की चाटुकारिता :

सत्ताधीश की चारों ओर इस प्रकार के चाटुकार कव्वाल सदा रहकर उसकी प्रशंसा सब समय करने का मौका हमेशा खोजते ही रहते हैं। रावण की वृत्तियों की पार्श्वभूमि अथवा पृष्टभूमि (back ground) अच्छे ढंग से सँवारने वाली अन्य चाटुकार वृत्ति याने पार्श्व है। एक महापार्श्व चाटुकार रावण की स्तुति कर उसे कुकर्म करने के लिए अधिक भड़काता है जिस कारण सत्ताधीश अधिक बेबंध और दुष्ट वन समाज पर अन्याय, अत्याचार करते हैं। महापार्श्व कहता है। रामायण युद्धकाण्ड के सर्ग १३ के श्लोक ३ और ४ देखिये—

ईश्वरस्येश्वरः कोऽस्ति तव शत्रुनिबर्हण।
रमस्य सह वैदेह्या शत्रूनाक्रम्य मूर्धसु॥३॥
बलात् कुक्कुटवृत्तेन प्रवर्तस्य महाबल।
आक्रम्याक्रम्य सीता वै तां भुङ्क्ष्व च रमस्व च॥

महापार्श्व कहता है, 'हे शत्रुओं का निर्वहन करनेवाले राक्षसराज रावण, आप स्वयं परमेश्वर हैं। आप का ईश्वर और कौन रह सकता है? शत्रुओं को नष्ट कर आप स्वयं सीता का उपभोग लें। मुर्गा जिस प्रकार मुर्गी के साथ बलात् संभोग करता है उसी प्रकार अगर सीता न माने तो आप भी उसके साथ बलात् संभोग कीजिए।' रावण यही चाहता था। ईश्वर-अवस्था न मानने पर और स्वयं को केवल बुद्धिवादी मानकर चलने वालों के इसी प्रकार के विचार और आचार रहते हैं। ईश्वर नाम की अवस्था न माननेवाले फिर अहंकार से स्वयं ईश्वर बनते हैं और समाज पर उन्माद से अन्याय और अत्याचार करते हैं। निरीश्वरवाद का यह सरल सुलभ नतीजा है जो कि बौद्धमत के थेरवाद द्वारा उस समय समाज में फैल रहा था।

महापार्श्व के यह विचार याने रामायण काल के समय पाले गये बौद्ध थेरवाद का चित्र है। श्रेष्ठ शब्द का अपभ्रंश थेर शब्द है। यह बौद्ध थेरवादी परमेश्वर नहीं मानते थे। मानवीय प्रकृति और श्रद्धा किसी आधार से रहना चाहती है। ईश्वर न मानने से ऐसे अश्रद्ध मानव फिर पीछे मुड़कर स्वयं को ही भगवान या ईश्वर मानकर अधिक अहंकारी और पाखंडी बनते हैं। बौद्ध थेरवाद का इस प्रकार तत्वज्ञान था जो कि महापार्श्व द्वारा रामायणकार बताते हैं। गीता में इस थेरवाद का बहुत सुन्दर वर्णन किया है—

'असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥गीता अ० १६, श्लोक १४॥
आढयोऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञान विमोहिताः॥
॥गीता अ० १६, श्लोक १५॥'

ईश्वरीय कल्पना और व्यक्तिपूजन :

ईश्वर मानना न मानना स्वतंत्र प्रश्न है परन्तु मानवीय मन बिना किसी आधार के स्वतंत्र ढंग से निराधार रूप से नहीं रह सकता। पति का आधार पत्नी को और पत्नी का आधार पति को रहता है। वृद्धावस्था में बच्चे माँ-बाप के आधार बनते हैं। बिना किसी आधार के रहना इस प्रकार के संस्कार जन्य मानवीय मन के लिए असंभव है। इसी प्रकार मानवीय मन के लिए ईश्वर नामक कोई आधार अध्यात्म-क्षेत्र में आवश्यक है। असाधरण व्यक्ति बिना किसी आधार के स्वतंत्र ढंग से रह सकता है। जैसे कि आद्य शंकराचार्य और गौतम बुद्ध। परन्तु साधारण व्यक्ति उसके आध्यात्मिक

आधार के लिए एक तो ईश्वर नामक अवस्था खोजेगा अन्यथा वह निराधार मन ईश्वर अवस्था सदृश किसी पूजनीय मानव को ही ईश्वर जैसा पूजनीय मानकर अपने मन को शान्त कर सकता है। ईश्वर-अवस्था न मानने वाले बौद्ध जन, गौतम बुद्ध को ईश्वर जैसे भगवान मानकर उसकी साकार पूजन जैसी आरती कर रहे थे। ईश्वरीय अवस्था में एक काल्पनिक आदर्श तो भी है परन्तु मानव कितना भी ऊँचा रहे वह अपूर्ण रह सकता है। इसलिए उसके व्यक्तिपूजन द्वारा उसके दोषों का भी पूजन होकर सारे सम्प्रदाय में अपूर्णता रह जाती है। यह अपूर्णता फिर उस सम्प्रदाय में वृथा अभिनिवेश और ढकोसलेबाजी निर्माण कर सकती है। बौद्ध सम्प्रदाय ईश्वर नहीं मानता था परन्तु गौतम बुद्ध को वह भगवान से भी बढ़कर पूज्य मानता है जिसे प्रतिमापूजन से भी बढ़कर निन्दनीय मानना चाहिए।

प्रतिमा-पूजन में आदर्श विचारों का पूजन है न कि व्यक्तिपूजन। बौद्ध, ईसाई और मुस्लिम सम्प्रदायों का अंध व्यक्तिपूजन मानवीय मन को गुलाम और अबुद्ध बनाता है। राम कृष्ण आदि देवता-पूजन मानवीय उत्तम आचार-विचारों का आदर्श पूजन है न कि ऐतिहासिक व्यक्तिपूजन। आदर्श के पूजन से इस प्रकार का व्यक्तिपूजन निर्बुद्ध एवं निन्दनीय माना जाना चाहिए। बौद्ध, ईसाई और इस्लाम सम्प्रदायों में केवल अंध व्यतिपूजन है, न कि तत्व-पूजन। महापार्श्व द्वारा रामायणकार इस प्रकार के अन्ध व्यक्तिपूजन को चित्रित करते हैं। महापार्श्व वृत्ति अपने नेता को याने रावण को ईश्वर मानकर उसको सीता पर बलात्कार करने का सुझाव देता है, जैसे कि मुर्गा मुर्गी पर सवार होकर बलात मैथुन करता है। राम और कृष्ण की प्रतिमाओं को भग्न करने वाले, अथवा न मानने वाले नवबौद्ध अम्बेडकर और बुद्ध की प्रतिमाएँ बनाकर उनका पूजन करने में धन्यता मानते हैं। यह स्वविरोध है। एक प्रकार से इस प्रतिमा-पूजन के बारे में मुस्लिमों को अच्छा मानना चाहिए कारण वे अन्य धर्मों के देवता अथवा महापुरुषों की प्रतिमाओं को नहीं मानते वैसे ही उनके धर्म-पुरुषों की प्रतिमाओं का भी पूजन नहीं करते हैं। उनका यह आचार निःसहाय सराहनीय है। परन्तु प्रतिमापूजन न मानने वाले मुस्लिम जन मृत व्यक्तियों की कब्रों की पूजा करते हुए देखकर उनका प्रतिमा-पूजन का विरोध किस अविचारी मर्यादा तक चला गया है, यह देखकर उनके धर्मविरोधी आचरण के बारे में अनुकम्पा आती है। वास्तविक सच्चे मुस्लिम को किसी भी प्रतिमा का अथवा मृत व्यक्ति की कब्र का पूजन नहीं करना चाहिए।

क्षत्रियों का विरोध करते-करते परशुराम स्वयं क्षत्रीय-वृत्ति के बन गये थे। उसी प्रकार प्रतिमा-पूजन अथवा मूर्ति-पूजन का विरोध करते-करते मुस्लिम, ईसाई और बौद्ध भी स्वयं प्रतिमा-पूजक बन गये हैं, और वह भी मृत व्यक्तियों की कब्रों के, कैसा यह अज्ञान है यह !!

महापार्श्व रावण को किसी मुर्गे जैसे बलात सीता का भोग लेने को कहता था परन्तु कथानुसार रावण सीता का ऐसा भोग नहीं ले सकता था। कारण रावण को एक अभिशाप था। एक बार आकाश गमन करते-करते, याने ध्यान करते-करते रावण को एक अति सुन्दर पुञ्जिक स्थला नामक अप्सरा दृष्टिगोचर हुई। उस पर रावण ने बलात्कार कर भोग लिया था। रावण का यह नीच कार्य देखकर ब्रह्माजी ने उसे यह शाप दिया कि वह किसी स्त्री पर बलात्कार करेगा तो उसके शरीर के और मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे, यह निःसंशय है—

अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि।
तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ ६।१३।१४ ॥

यहाँ पर रावण याने अविचारी अहंमन्य साधक और पर स्त्री याने साधक की अपनी वृत्ति अथवा धर्म छोड़कर परायी वृत्ति को स्वीकार करना यह माना जाय तो सब चित्र स्पष्ट हो जायेगा। रावण साधक के लिए मन्दोदरी-वृत्ति ही स्वधर्मवत् थी, सीता-वृत्ति रावण के लिए परधर्मी थी। इसलिए सीता-वृत्ति का रावण यदि बलात ग्रहण करता है तो रावण धर्म अथवा वृत्ति में विघटन होकर उसके सौ टुकड़े बन जाते यह इस कथा का वाल्मिकीय आशय है। शास्त्र ठीक ही कहते हैं—'पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना' याने हरएक व्यक्ति की मति, बुद्धि, धारण और धर्म अन्यों से विभिन्न रहता है इसलिए साधक को अपने धर्म के अनुसार साधना करनी चाहिए। पर-वृत्ति अथवा धर्म का सेवन करने से साधक का शतमुख से अधःपतन होता है, 'विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखा।' दशमुख रावण इसी कारण सीता-वृत्ति पर बलात्कार नहीं कर सकता था।

राम की युद्ध तैयारियाँ :

रावण की युद्ध तैयारियाँ देकर सीता-मुक्ति के लिए जो आवश्यक था वह सब करने के लिए राम ने युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ कीं। परन्तु मुख्य प्रश्न था सागर उल्लंघन करने का। यह भवसागर कैसे पार किया जाय ? इसलिए उस भवसागर की सहायता लेने का राम ने सोचा। भवसागर की

सहायता ध्यान मार्ग द्वारा ही साधक ले सकता है इसलिए राम दक्षिण सागर तीर पर कुशासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर तीन दिवस-रात्रि गहन ध्यान समाधि-अवस्था में बैठे परन्तु सागर राम के ध्यान में बिलकुल प्रकट नहीं हुए। वृत्तियाँ जबतक शान्त नहीं होती हैं तबतक भवसागर कैसे पार किया जा सकता है? राम ने तीन अहोरात्र मन शान्त कर ध्यान लगाने की चेष्टा की परन्तु राम का मन शान्त नहीं होता था। झूठे ध्यान द्वारा क्या होने वाला है? रामायणकार कहते हैं—अवलेपः समुद्रस्य न दर्शयति यत्स्वयम् ॥ प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रिय-वादिता। असामर्थ्यफला ह्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः ॥ १५।६।२१।१४, १५ ॥ साधक के सत्वंगुण सम्बंधी गीता बताती है (अध्याय १६, श्लोक १, २, ३)—

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तव अर्णवम् ॥
अहिंसा सन्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दयाभूतेष्व लोलप्त्वं मार्दवं ह्रिचापलम् ॥ २ ॥
तेजः क्षमा धृतिः शोचमद्रोहो नीतिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवमि भिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

आखिर साधक राम का मन सतत प्रयास से शान्त हुआ और तीन दिवस राम को गहरी समाधि-अवस्था प्राप्त हुई। तो भी संसार रूप सागर राम रूप साधक पर संतुष्ट नहीं होता था याने साधक राम संसार रूप सागर नहीं पार कर सकता था। इसलिए सागर को सबक सिखाने के लिए राम ने अपने धनुष पर तिर चढाकर संसार रूप सागर का वध करने का सोचा। कौन-सा धनुष और शर था वह? और कौन-से सागर पर वह चलाया गया? उपनिषद बताते हैं—

'प्रणके धनुः शूरो ह्त्यात्मा ब्रह्मतल्लक्षमुच्यते।' याने प्रणव रूप धनुष पर आत्मा रूप शर चढाकर उसे ब्रह्म रूप लक्ष्य पर विंधना चाहिए। राम ने उसी प्रकार अपने साधना रूप धनुष पर आत्मा रूप शर चढाकर परमात्म स्वरूप लक्ष्य पर उसे विंधना चाहा। अब संसार रूप सागर घबड़ा गया और वह दौड़ते हुए राम के चरणों पर नतमस्तक हुआ। बस एक महत्व पूर्ण काम हुआ था। संसार सागर अब जीता गया था। अब बाकी था इस पर पूल बांध कर बानर-सेना सह उसे लांघने का। यह कौन-सा पूल है और कौन-से बानर उस पूल पर चलकर कौन-से लंका पर धावा करते हैं, यह योगीराज वासुदेवानन्द सरस्वतीजी के शब्दों में देखें—

सेतुं बध्वा सजलधौ साधनाश्मभिरुत्कटैः ।
ततो भवाब्धिमुल्लंघ्य दीप्तज्ञानाग्निना भृशम् ।।६।।
सूक्ष्मेदेहाख्य लंकाच दग्धौपनिषदस्त्वतः ।
कामक्रोधादि रक्षांसि हत्वा बुद्धे सहस्त्वतः ।।७।।

आशय यह कि साधनारूप पत्थरों से पूल बनाकर, संसाररूप सागर को पार करने का राम ने सोचा और अपनी वृत्तिरूप बानरों को इस प्रकार समुद्र सेतु पर से चलाकर मायारूप लंका में जाकर उसमें रहनेवाले काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर इस प्रकार के राक्षसों का संहार करने का रामरूप साधक सोचता है । इस प्रकार साधनारूप पत्थरों से बानररूप वृत्तियों ने संसाररूप सागर पर पूल बाँधकर संसाररूप सागर पार किय। और मायारूप लंका पर धावा कर उसमें रहने वाले काम, क्रोध, मद, मोह, द्वेष, मत्सररूप राक्षसी-वृत्तियों का संहार करना चाहा । राम ने सागर को अपना तीर चलाना चाहा परन्तु संसाररूप सागर दौड़कर राम के चरणों पर पड़ता है और राम से कहता है—'हे राम मुझपर क्रुद्ध न हो । मैं तो तुम्हारी शरण में हूँ परन्तु मुझे भी मेरी मर्यादाएँ हैं । तुम भी तो मर्यादा में रहने वाले मर्यादापुरुषोत्तम हो । मुझ पर तीर न चलाकर तुम मुझपर साधनारूप पत्थरों का पूल बनाओ और मुझ संसाररूप सागर को लांघकर लंका पर धावा करो ।' संसाररूप सागर का कहना साधक राम ने मान लिया और ऊपरनिर्दिष्ट प्रकार से साधक राम ने वृत्तिरूप बानरों की सेना पार कर लंका पर धावा किया । इस महान कर्म के चालक थे हनुमानजी । उन्होंने हर पत्थर पर 'राम' यह अक्षर लिखकर उसे संसाररूप सागर में डालना शुरू किया । और क्या आश्चर्य हर पत्थर इतना हल्का बना कि वह लकड़ी जैसे संसाररूप सागर पर तैरता रहा । इस प्रकार संसाररूप सागर पर रामनाम के तैरते पत्थर डालकर मंत्री हनुमान ने सेतु बनाया जो आज भी सब राम-भक्तों को इस संसार सागर से पार करा देता है । इसीलिए हनुमानजी चिरजीवी माने गये हैं । राम नाम से सब तरते हैं परन्तु वह राम नाम होठों से न जप किया जाय । वह राम नाम साधना और गहरे ध्यान द्वारा जपा जाय । साधक स्वयं राम याने समाधि-प्राप्त आनन्दमय बने । इस प्रकार भगवान राम सागर पर सेतु बँधाकर उसे अपनी बानर सेना सह पार करते हैं ।

अभियन्ता नल द्वारा पूल बांधा जाना :

राम की सेना में एक नल नामक महान अभियन्ता था जो इस प्रकार सागर पर पूल बांधना जानता था। हनुमान रामभक्त अवश्य थे और वह

पत्थर पर राम नाम लिखकर उसे हल्का जरूर करते थे परन्तु उससे पूल का किस प्रकार निर्माण किया जाय, यह शास्त्र वह नहीं जानते थे। वह गहन शास्त्र जानता था नल नामक एक महान बानररूप अभियन्ता ! सबों ने नल से निवेदन किया कि वह अपना बुद्धि चातुर्य लगाकर सागर पर सेतु याने पूल बाँधे। नल ने सबों का कहना मानकर सेतु का निर्माण पाँच अहोरात्र में किया। यह नल विश्वकर्मा का पुत्र था। इस प्रकार संसाररूप सागर पर सेतु बाँधने वाला अभियन्ता नल कौन था, यह जानना साधनाशास्त्र की दृष्टि से बहुत आवश्यक है। अनल याने अग्नि और जो अनल नहीं वह नल है। यह नल याने अग्नितत्व से नीचे वाला आपतत्व है, जिसमें सारी घटनाओं की प्राप्ति होती है। पृथ्वीतत्व की सारी जड़ वस्तुएँ इसी आपतत्व द्वारा संचारित होती हैं। आपतत्व याने ओत-रचना अथवा इलेक्ट्रानिक-अवस्था जगत है। अनेक इलेक्ट्रानों के सापेक्ष संधान द्वारा परमाणु (atom) बनता है जो कि जड़ जगत की वस्तुमात्र का मूल कारण है। इसलिए जिस मूल अवस्था द्वारा यह जड़ जगत का पसारा प्राप्त होता है उसे वैदिक भाषा में आपतत्व कहा गया है। अप याने प्राप्त करना। इसी आपतत्व को रामायण-कार अपनी भाषा में नल कहते हैं।

यही नल भगवान राम को भवसागर पार कराने के लिए उस भवसागर पर पत्थरों द्वारा पूल बाँधता है। कौन-से पत्थर थे वे ? साधनारूप पत्थर थे वे। बगैर साधना के साधक यह भवसागर पार नहीं कर सकता। जड़ जगत की सारी साधनाएँ आपतत्व द्वारा संचारित की जाती हैं इसलिए रामरूप साधक को भवसागर पार कराने के लिए यह नल नामक आपतत्वीय अभियन्ता सागर पर साधनारूप पत्थर डालकर धर्मरूप सेतु बाँधता है। कितना विज्ञान रामायण में ठूस ठूस कर भरा है, इसका पता एक तो प्रखर बुद्धि द्वारा अथवा उत्कृष्ट साधनानुभव द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। परन्तु अज्ञानवश हमारे शास्त्री पण्डित रामायण का ऊपरी आशय लगाकर स्वयं और समाज को एक गहरे अज्ञानमय अन्धकार की खाईं में लौटा देते हैं जहाँ से ऊपर आना बड़ों बड़ों को कठिन हो जाता है। परन्तु रामायण का असली ज्ञान-विज्ञान समझने की हम चेष्टा करें। इस प्रकार विश्व के कर्मा का पुत्र नल था। इस प्रकार का साधना पराक्रम कर संसार सागर पार करने हेतु पूल बांधने वाला महान साधक याने वानर नल है जो कि बहुत पराक्रमी और तेजस्वी बताया गया है।

यह पूल पाँच दिनों में बनाया गया। बिना पंचतत्वों के कोई भी घटना इस जगत में नहीं साकारती इसलिए नल ने केवल पाँच दिनों में यह पूल अथवा सेतु बंधाया जिस पर से सब वृत्तिरूप वानर मायारूप लंका को जीतने सागर को पार करने लगे। बानरों का यह अद्वितीय पराक्रम देखकर भगवान राम को परम संतोष हुआ। परन्तु पूल को राक्षस-वृत्तियाँ भंग न कर सकें इसलिए विभीषण उस पूल के दूसरे छोर पर अपना शूल लेकर खड़े हुए। कौन-सा शूल था वह? सद्वृत्ति रूप शूल जो कि असतवृत्तियों को मार सके। इस सेतु से लंका शत योजन दूर थी। आज की लंका रामेश्वर सेतु से तीस बत्तीस मील दूरी पर है फिर रामायणकार ने लंका से रामेश्वर सेतु का अन्तर शतयोजन याने ६०० मील क्यों लिखा? इसका कारण यह है कि आदमी का अधःपतन जव होने लगता है तो वह शतमुख से होता है। 'विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुख।' इस शतमुख अधःपतन को दूर रखने के लिए रामायणकार लंका को रामेश्वर सेतु से शतयोजन दूर रखते हैं। रामायण द्वारा इतिहास खोजने वालों की इस प्रकार के प्रयास में बड़ी विचित्र अवस्था होती है जिसके कारण वे बड़े विचित्र और असंभव सिद्धान्तों का निर्माण कर नयी धांधली पैदा करते हैं।

सीता पर माया का प्रयोग :

सेतु तैयार कर बानर सह राम लंका पर धावा कह रहे हैं यह सुनकर रावण के मन में अशांति पैदा हुई जिस कारण उसने किसी रूप में सीता को फंसाकर अपना बनाने का विचार किया। उसने अपने कलावानों को बताकर राम के धनुष और बाण तैयार करवाये। इतना ही नहीं वह राम के मुखड़े के समान हूबहू मुखड़ा तैयार करवाया जिसे कि गले से किसी ने काटकर अभी रखा है, ऐसा दीखता था। सीता के सामने यह बनावटी राम का मुख और धनुष बाण रखे गये और बताया गया कि रावण ने राम का युद्ध में वध कर उसका मुख और धनुष बाण लाया है। जिनको सीता के सम्मुख रखा गया। राम का कटा हुआ सिर और धनुषबाण देखकर सीता फूट-फूटकर रोने लगी और राममुख के साथ सती दहन करने की बात सोचने लगी। परन्तु सरमा नामक राक्षसी ने उसे सत्य कहानी बतायी जिस कारण सीता ने अपना शोक समाप्त किया। सीता पर रावण की तिलिस्माती नहीं चली।

लंका पर धावा :

लंका पर प्रत्यक्ष धावा करने के पूर्व भगवान राम सुवल नामक पर्वत की चोटी पर चढ़कर लंका का निरीक्षण करते हैं। यह कौन-सा सुवल पर्वत था और उस सुवल पर्वत की चोटी पर राम क्यों चढ़ जाते हैं? उपनिषद कहते हैं, 'नायमात्मा वलहीनेन लभ्यः' याने शारीरिक एवं मानसिक बल रूप 'सुबल' पर्वत की चरम चोटी पर आरूढ होकर भगवान राम अपनी मायारूप लंका का निरीक्षण कर उस पर किस प्रकार धावा करना चाहिए इसका विचार करते हैं। इस प्रकार उत्तम आध्यात्मिक वल की चोटी पर याने सुवल पर्वत की चोटी पर आरूढ होकर राम वानर सह नानारूप लंका पर धावा करते हैं। रावण-पुत्र इन्द्रजीत ने राम-सेना से मुकावला किया और अदृश्य रूप से राम-सेना पर वाण की वर्षा की। यह कौन-सा मंत्र था और किस प्रकार इन्द्रजीत अदृश्य होकर राम-सेना पर शरवर्षा करता था? मन्त्र याने कोई शब्द-रचना नहीं जिसके कारण कुछ वांछनीय घटनाएँ घटित होती हों। केवल शब्दों में शक्ति नहीं है, शक्ति है उन शब्दों का उच्चार करने वाले मन में। इसलिए मन्त्र की परिभाषा शास्त्रकार करते हैं, 'मननात् त्रायते इति मन्त्रः' जिससे मन की, शक्ति की रक्षा होती है, वह मन्त्र है।

मन मजवूत है तो व्यक्ति सव कुछ पा सकता है। गीता स्पष्ट वताती है 'मन एवं मनुष्याणां कारणं वन्ध मोक्षयोः।' मन के कारण ही मानव बन्धन अथवा मोक्ष में जाता है। इस पर से यह दीख पड़ता है कि रामायण काल में आज जैसे ही मन्त्र के वारे में मूर्ख कल्पनाएँ थीं। इस प्रकार मन्त्र-सिद्धि, ढकोसलेवाजी तिलिस्माती और महाराजगिरी के कारण समाज नष्ट-भ्रष्ट हो गया है जिसकी किसी धर्म-परायण अथवा सामाजिक स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले व्यक्ति को पर्वाह नहीं है। विशेष कर हिन्दू समाज इस प्रकार की मूर्ख कल्पनाओं के कारण अति दुर्वल और आत्म-विस्मृत वन गया है। यदि इस प्रकार वलवान मान्त्रिक हमारे देश में थे और हैं तो यह देश गत सात सौं साल से क्यों पराधीन वना है? क्या इन सिद्ध मान्त्रियों के मन्त्र दुष्ट आक्रमणकारियों के लिए अकार्यक्षम थे? क्यों न इन मान्त्रियों ने दुष्ट आक्रमणकारियों को अपने मन्त्र-वल से नष्ट कर भारत की स्वाधीनता अटूट रखी? अव भी हमारा समाज इन मूर्ख कल्पनाओं से बचे और सच्चा शारीरिक एवं मानसिक वल प्राप्त कर केवल अपना देश ही नहीं वरन् सारे संसार की मानसिक गुलामी नष्ट कर सारा संसार ज्ञानमय बनायें।

इन्द्रजीत का अदृश्य होकर शरवर्षा करना :

इन्द्रजीत कौन, यह हमने देखा है। इन्द्रजीत याने इन्द्रियों को दमन कर उस द्वारा आत्म-ज्ञान पाने की इच्छा करने वाला आध्यात्मिक साधक। कुछ लोग केवल इन्द्रिय-दमन करने से आत्म-ज्ञान हो गया, ऐसा मानते हैं और स्वनिर्मित अज्ञान की खाई में सदा के लिए पड़े रहते हैं। इन्द्रिय-दमन से मन पर संयम आ सकता है परन्तु उस संयमित मन का उपयोग ध्यान समाधि के लिए कर आत्म-ज्ञान की प्राप्ति की ओर बढना चाहिए। यह न कर जो केवल इन्द्रिय-निग्रह याने इन्द्रियों को ताड़ना कर हमने सब कुछ पाया है, ऐसा मानते हैं वह पूर्णतया अज्ञानांधकार में हैं, ऐसा मानना चाहिए। ऐसे अज्ञानी जनों को उपनिषद 'अन्ध' कहते हैं। कई वार इस प्रकार का अज्ञान रहकर भी हम लोगों को अपना अज्ञान नहीं दिखाई देता और उसी अज्ञान अन्धकार में रहकर हम यह मानते हैं कि हम उस अवस्था में जो भी कुछ कर्म करते हैं वह सब ब्रह्म की ओर याने ज्ञान की ओर ले जाता है। इसलिए रामायणकार अपनी भाषा में कहते हैं कि इन्द्रजीत अदृश्य रहकर राम-सेना पर शरवर्षा करता था जैसा कि कोई अज्ञानी साधक अपने दोषों को अपनी आँखों से अदृश्य रख कर उस अज्ञान-मय अवस्था के कर्मरूप वाणों को ब्रह्म की ओर वर्षा करता है।

साधक राम ने अपने अन्तर्गत रहने वाले इस इन्द्रजीत की यह तिलिस्माती जानी और जिस स्थान से उन पर शर-वर्षा आती थी उसी स्थान पर अपनी शरवर्षा की जिस कारण राम-वाण की वर्षा का भय पाकर उस स्थान से इन्द्रजीत भाग गया। परन्तु इन्द्रजीत बड़ा जिद्दी था और आखिर वह राक्षसी-वृत्ति रूप कुल का था इसलिए इन्द्रजीत ने राम-लक्ष्मण को नष्ट अथवा वद्ध करने के लिए और एक तिलिस्माती अस्त्र का प्रयोग किया। अस्त्र का नाम था नागपाश।

नागपाश :

राम-लक्ष्मण और इन्द्रजीत में अब घमासान युद्ध शुरू हुआ। अपना पुराना अदृश्य होकर लड़ने का ढंग राम-लक्ष्मण जान गये, यह देखकर इन्द्रजीत ने राम-लक्ष्मण पर एक विकराल अस्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र का नाम था नागपाश। नागपाश के प्रयोग से राम-लक्ष्मण वद्ध होकर पड़े रहते हैं। राम-लक्ष्मण की उस विकल अवस्था में गरुड़ दौड़कर आते हैं और नागपाश से राम-लक्ष्मण का छुटकारा करते हैं। यह कौन-सा

नागपाश था जिसका कि इन्द्रजीत ने राम-लक्ष्मण पर प्रयोग किया था ? नाग याने सर्प अथवा कुण्डलिनी और नागपाश याने कुण्डलिनी जागृति की दु:सह अवस्था। कुण्डलिनी जागृत होने से साधक के शरीर में विलक्षण दाह उत्पन्न होता है जो सहने में बहुत कष्टकर है। कुण्डलिनी के इस दारुण अवस्था का वर्णन रामायणकार नागपाश के रूप में करते हैं। कुण्डल याने सर्प अथवा नाग है और कुण्डलिनी जागृति की अवस्था याने नागपाश है। कुण्डलिनी जागृति के समय साधक के पूरे शरीर का दारुण दाह होता है जिसकी बराबरी नागदंश का विष कर सकता है इसलिए कुण्डलिनी-जागृति का वर्णन रामायणकार नागपाश इस शब्द प्रयोग द्वारा करते हैं।

कुण्ड़लिनी-जागृति के बाद साधक का तन और मन शुद्ध और बलवान हो उठता है जिस द्वारा साधक उच्च ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस कुण्डलिनी-अवस्था से ऊपर जाने के लिए साधक को उससे उच्च वायुतत्व अवस्था में जाना पड़ता है जिसका सांकेतिक चिह्न गरुड है! वैसे नाग अथवा सर्प को गरूड निगल जाता है उसी प्रकार नागपाश अथवा कुण्डलिनी-जागृति की अवस्था तब ही शान्त हो सकती है जब कि साधक वायुतत्व-अवस्था में चला जाता है। इसीलिए रामायणकार कथा रूप में नागों को निगल कर गरूड ने राम-लक्ष्मण को उस पाश से बचाया, ऐसा दिखाया है। राम की सहायता के लिए गरूड दिखाने का और एक कारण बताया जाता है और वह यह कि गरूड भगवान विष्णु का वाहन माना गया है और भगवान राम भगवान विष्णु के औतार माने गये हैं। अपने प्रथम जन्म के वाहन याने साधना गति द्वारा इह जन्म में राम सहाय पाते हैं। साधना का इतिहास केवल एक जन्म का नहीं वरन् गत कई जन्मों की कर्म-गति को लेकर बनाता है।



नवम अध्याय (ब)

धूम्राक्ष एवं अकम्पन :

वायुतत्व में जाने वाले साधक को एक विचित्र अनुभूति होती है। वह अपने चारों ओर घना धुंवा अथवा कुहासा जैसा वातावरण देखता है। उससे परे आकाशतत्व है जिसमें जाने के लिए साधक को वायुतत्व की अनुभूतियों को पार करना पड़ता है। याने उच्च आकाशतत्व में गमन करने वाले साधक को उससे नीच तत्व याने वायुतत्व की धूम्र अनुभूतियों को मारकर पार करना पड़ता है। स्वयं महाबली हनुमान वायुतत्व के हैं इसलिए सच्चा आकाशतत्वीय राम सेवक बनने के लिए वे धूम्राक्ष नामक राक्षस का वध करते हैं। उसके बाद अकम्पन नामक एक राक्षस आक्रमण करता है और उसका भी वध महाबली हनुमान ने किया। अकम्पन याने निस्तब्ध शान्त कम्पन विरहित शून्य-अवस्था। यह अवस्था सब तत्वों से ऊपर रहने के कारण वह साधारण साधक के लिए बेमतलब लगती है। साधारण साधक कुछ अनुभव चाहता है। बगैर अनुभूतियों के उसे अच्छा नहीं लगता। हनुमानजी भगवान राम के सेवक हैं जो कि मर्यादा पुरुषोत्तम माने गये हैं इसलिए अपनी मर्यादा में रहने के लिए रामभक्त हनुमान अकम्पन नामक राक्षस-अवस्था का वध करते हैं।

बानर नील ने प्रहस्त को मारा। अनील याने वायुतत्व और नील याने तेजसतत्व है। प्रहस्त याने तत्व-साधना द्वारा प्राप्त अनुभव है। नील को अनील बनने के लिए वह नील याने तेजसतत्व प्रदत्त अनुभव याने प्रहस्त को मारना पड़ता है। इस प्रकार नील बानर प्रहस्त राक्षस को मारता है। तदन्तर स्वयं रावण युद्ध करने आता है। राम-लक्ष्मण ने उसपर अपने ब्रह्मरूप शर द्वारा सतत वर्षा कर उसे जर्जर किया और अपनी असहाय हालत देखकर रावण-युद्धभूमि से भागने लगा। रावण की यह दुर्दशा देखकर राम अहंकार में आ गये और एक पलायनवादी शत्रु को राम ने युद्धभूमि से भागने दिया। वास्तविक राम को अपने शत्रु रावण को समर-भूमि पर समाप्त करना चाहिए था परन्तु एक नपुंसक अकर्मण्यता के समाधान के कारण राम ने रावण को युद्ध-भूमि से बिना मारे भागने दिया। रावण पुनः शक्ति संपादन कर राम पर हमला करता है।

नपुंसक अकर्मण्यता :

भारतीय राजनीति में इस प्रकार नपुंसक अहंकार और अकर्मण्यता का इतिहास बार-बार दोहराया जाता है। राम की यह नपुंसक अकर्मण्यता तदन्तर काल में पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गोरी के समय बताई थी। मुहम्मद गोरी सोलह वार भारत पर आक्रमण कर आया था जिसे कि पृथ्वीराज चौहान ने कड़ा जवाब दिया था। परन्तु सीधे राजनीति का पालन पृथ्वीराज ने नहीं किया। दुवारा आक्रमण कर आने वाले मुहम्मद गोरी को परास्त कर पृथ्वीराज ने उसको मारा नहीं। उसपर नपुंसक दयाभाव दिखाकर पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को भारत पर बार-बार आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। सत्रहवीं बार वही मुहम्मद गोरी भारत पर हमला करता है और फलस्वरूप पृथ्वीराज को कैद करता है। मुहम्मद गोरी ठीक राजनीति जानता था। उसने पृथ्वीराज को जान से मार डाला। वही न्याय यदि पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गोरी के साथ करता तो आज भारत में इतने करोड़ों मुसलमान नहीं दीखते और पाकिस्तान भी संसार के मानचित्र में न दीखता। परन्तु भारतीय नपुंसक दयाभाव और अकर्मण्यता का फल आज हम सब भोग रहे हैं और इस नपुंसक नीति की शुरुआत भगवान राम द्वारा रावण को छोड़ने से हुई है। राम को युद्धभूमि में रावण को अवश्य मारना था।

कुंभकर्ण वध :

रावण की यह हालत देखकर उसका भाई कुंभकर्ण उसकी मदद के लिए दौड़ आया। उसने राम-सेना पर बड़ा जोर-शोर से हमला किया और कई सहस्त्र बानरों को कच्चा खाया और अपने पैरों तले रौंदकर कुचल डाला। सर्वत्र घबड़ाहट पैदा हुई। बानर भयभीत होकर भागने लगे। अब राम और लक्ष्मण को आगे आना पड़ा। उन्हें अपनी पूरी ताकत लगानी पड़ी। आखिर राम के एक बाण से विद्ध होकर कुंभकर्णरूप पहाड़ नीचे गिरा और धराशायी बना। नीचे गिरते गिरते उसके भव्य शरीर के तले सहस्त्रों बानरों का खातमा हुआ। धराशायी कुंभकर्ण की नाक और कान सब बानरों ने काट दिये। अपने शत्रुओं की नाक, कान काटने का यह रामायणीन तरीका यह दिखाता है कि उस समय शत्रुओं की नाक, कान और स्तन भी काटना विजेताओं का खेल था। क्या इस प्रकार के क्रूर मानवताहीन कर्मों की हम सराहना कर सकते हैं? मुगलों ने अपने शत्रुओं से और मददगारों से भी इसी प्रकार का नीच व्यवहार किया था इसकी साक्ष इतिहास देता है। मुगलकालीन भारतीय इतिहास के

पन्ने इसी प्रकार के नृशंस नीच कर्मों द्वारा रंगे हैं जिसकी छाया रामायण में पायी जाती है।

कुंभकर्ण याने केवल श्रवण कर हमने पूर्ण ज्ञान पाया, यह मानने की साधक की वृत्ति है। इस वृत्ति को मारना राम साधक के लिए आवश्यक कर्म है और ऐसी कुंभकर्ण-वृत्ति की नाक, कान काटकर वदसूरत याने आकर्षण विहीन करना भी साधक राम का आद्य कर्तव्य था। रामायणकार उस समय की रीति के अनुसार लिखते हैं कि राम-लक्ष्मण ने कुंभकर्ण को मार गिराया और साधना-वृत्ति वानरों ने उसकी नाक, कान काटकर उसे वदसूरत किया जिस द्वारा वह कुंभकर्ण-वृत्ति फिर से किसी को मोहित न करे। अपने पराक्रमी भाई का इस प्रकार करुणाजनक अन्त देखकर रावण और भी आग ववूला वन गया और उसने अपने पुत्र इन्द्रजीत को पुनः युद्ध-क्षेत्र में वुलाया। रावण-पुत्र इन्द्रजीत अव युद्ध-क्षेत्र में आता है

इन्द्रजीत वध :

जिसने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ब्रह्म को पाया है इस प्रकार की अज्ञानवश वृत्ति को रामायणकार इन्द्रजीत कहते हैं। यह वृथा देहाभिमान वृत्ति अव राम से युद्ध करने आती है। यह इन्द्रजीत युद्ध करते समय अदृश्य बनकर शरवर्षा करता था। साधक कई वार अपनी इस प्रकार की अज्ञानवश वृत्ति को नहीं जानता है। याने साधक की निगाह में इन्द्रजीत-वृत्ति अदृश्य, अगोचर रहती है और इन्द्रजीत-वृत्ति अज्ञानवश वनकर ब्रह्मास्त्र चलाती थी याने हमने ब्रह्म जाना है इस प्रकार की कल्पना में रहती है। इन्द्रजीत अदृश्य होकर शरवर्षा करता था और वह कई अस्त्र जानता था जिस कारण प्रामाणिक साधक विद्ध होकर नष्ट हो जाता था। इस प्रकार की झूठ वृत्ति स्वयं वे ब्रह्म जाना यह मानकर आत्म-संतुष्ट रहती है इसलिए रामायणकार इन्द्रजीत रावण आदि सवों को ब्राह्मण वताते हैं। ब्रह्मज्ञान न तो इन्द्रिय दमन से प्राप्त होता है और न इन्द्रिय लालन से। ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो सकता है इन्द्रियों को पूर्ण ताकतवर वनाकर उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त करने से। इसलिए इस प्रकार के इन्द्रिय दमन-वृत्ति को नष्ट करने के लिए राम इन्द्रजीत के साथ युद्ध करते हैं। गीता भी इस प्रकार की इन्द्रिय दमन-वृत्ति पर आलोचना करती है (अध्याय १७, श्लोक ६, गीता)–

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममम चेतसः।
मा चैवान्तः शरीहस्थं तान्विद्ध्यासुर निश्चयान् ॥अ० १७। श्लोक ६ गीता॥

'जो मुझ शरीरस्थ आत्मा को अपनी इन्द्रियों को ताड़न कर सताते हैं वे सब निश्चित रूप से असुर हैं, यह जानो।' राम से यह असुर वृत्ति युद्ध करने आती है जिसका अन्त राम द्वारा होता है।

इन्द्रजीत युद्ध-भूमि पर आता है और अदृश्य रहकर राम-सेना पर शरवर्षा करता है जिस कारण बानर घबड़ा जाते हैं। सहस्त्रावधि बानर मारे जाते हैं। राम-सेना में आतंक पैदा होता है। अदृश्य इन्द्रजीत पर किस प्रकार शरवर्षा की जाय। यदि वह दृश्यमान होता तो राम-लक्ष्मण उसे सीधा मारते, परन्तु हममें जो दुर्गुण दृश्यमान नहीं हैं उन्हें कैसे मारा जाय? अदृश्य इन्द्रजीत की शरवर्षा हो रही थी और राम-सेना कुछ कर न पाती थी। तो भी साधक राम और विवेक बुद्धि लक्ष्मण इन्द्रजीत से लड़ रहे थे। इन्द्रजीत ने यह ठीक से सोचा कि जब तक विवेक बुद्धि लक्ष्मण को न मारा जाय तबतक राम को जीतना कठिन है इसलिए इन्द्रजीत-वृत्ति अपनी अमोघ शक्ति लक्ष्मण पर छोड़ती है। कई बार साधक विवेकहीन बनकर स्वयं को भूल जाता है और अज्ञान, अन्धकार में पड़ा रहता है। इन्द्रजीत की शक्ति विवेकरूप लक्ष्मण को लगी और राम भ्राता विवेक लक्ष्मण संमोहित होकर भूमि पर गिर पड़ा। इन्द्रजीत का कार्य पूरा हुआ, ऐसा दीख पड़ता था। भगवान राम घबड़ाकर लक्ष्मण भैया के लिए शोक करने लगे। बानर सुखेन ने हनुमान को एक वनस्पति लाने के लिए कहा जिसमें विवेक लक्ष्मण फिर से जिन्दा हो सकें। वह वनस्पति थी मन्दार पर्वत पर। परन्तु उस कूट वनस्पति को हनुमान नहीं जानते थे। वे पूर्ण मन्दार पर्वत उठाकर लाते हैं। जिसपर से वनस्पति खोजकर बानर वैद्य लक्ष्मण को देते हैं। राम साधक का विवेक भ्राता लक्ष्मण पुनः जीवित होते हैं और नयी ताकत से इन्द्रजीत को युद्ध-भूमि में मारने की व्यूह-रचना करते हैं।

सच्चे साधक की विवेक-बुद्धि एक बार विचलित हो सकती है परन्तु बार-बार जिसकी विवेक-बुद्धि विचलित हो, वह सच्चा साधक कैसे? अब राम साधक का विवेक भ्राता जी उठता है और इन्द्रजीत-वृत्ति को किस प्रकार परास्त करना, इसका विचार करता है।

लक्ष्मण की व्यथा: एक चिन्तनीय तत्वज्ञान :

जड़ी-बूटी खिलाने के कारण लक्ष्मण उठ खड़े हुए और इन्द्रजीत कहाँ है, इसकी पूछताछ करने लगे। अब अपने को लक्ष्मण जिन्दा नहीं हो सकेगा यह सोचकर इन्द्रजीत रणस्थान से भाग जाता है और अपनी शक्ति और

बढ़ाने की बात सोचता है। उपाध्यांय ने उसे एक यज्ञ करने को कहा जिससे वह संसार में अजेय बन जाय। परन्तु यज्ञ करते समय यजमान ने यज्ञ-स्थान को छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहिए, यह उस यज्ञ के लिए आवश्यक शर्त थी। इसलिए किसी को पता न लगे इस प्रकार एक गुप्त स्थान पर इन्द्रजीत ने अपना यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञ की चारों ओर कड़ा पहरा था जिससे कि कोई अन्दर न जा सके। विभीषण को उस यज्ञ-स्थान का पूरा पता था। इन्द्रजीत यदि यज्ञ पूरा करता है तो इन्द्रजीत किसी को भी भारी था। उसको परास्त करना या मारना इस संसार के किसी भी पुरुष के लिए असंभव था। इन्द्रजीत के यज्ञ में विघ्न उपस्थित कर उसे असफल करने में राम-पक्ष का भला था। इसलिए उस यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने के लिए और यदि संभव हो तो इन्द्रजीत को ही समाप्त करने की सलाह विभीषण लक्ष्मण को देते हैं। राम लक्ष्मण को अनुज्ञा देते हैं।

परंतु यह होने के पूर्व इन्द्रजीत एक माया रचकर राम को छकाना चाहता है। उसने एक मायावी सीता का हूबहू शरीर तैयार कर उसे राम-लक्ष्मण के सामने अंगछेदन कर मार डाला। सीता का यह भीषण वध देखकर राम वेहोश हो गये। बड़े प्रयास से राम को होश में लाया गया। परंतु सीता का वध अपनी आँखों के सन्मुख देखकर राम वहुत दुःखी थे। राम पर इस प्रकार आपत्तियों की बौछार देखकर लक्ष्मण के हृदय में पीड़ा उत्पन्न होती है। आपदग्रस्त व्यक्ति जिस प्रकार की भाषा बोलता है उस प्रकार की भाषा लक्ष्मण बोलते हैं। आज के पापी भीरू जन भी इसी प्रकार की भाषा बोलते हैं। अब लक्ष्मण इस प्रकार के आपद्ग्रस्त और कंटकमय जीवन से मुक्त हो चुका था। उसने देखा था कि जो पाप से डरते हैं और इसलिए किसी दुःख न देकर अपना जीवन किसी प्रकार चलाते हैं उन पर ही तमाम आपत्तियाँ आती हैं और समाज में मान-मान्यता पाने वाले जन भी उनपर अन्याय करते हैं, उन्हें कष्ट देते हैं। जो इन सब बातों पर विचार नहीं करते ऐसे कठोर मन के लोग पाप और अन्याय कर भी समाज में बड़े ठाठ से रहकर समाज से सम्मान पाते हैं। राम और उनपर सतत् अन्याय और दुःख की परम्परा देखकर लक्ष्मण एक चिन्तनीय तत्वज्ञान कह पड़ते हैं जो कि आज का पापीभीरू व्यक्ति भी बोलता है—लक्ष्मण राम से निम्न प्रकार तत्वज्ञान बताते हैं (६।८३।८३)—

तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः।
उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थं संयुतम् ॥६।८३।८३॥

लक्ष्मण निम्न प्रकार झिझक कर बोलते हैं—

शुभे वर्त्मनि तिष्ठन्तं त्वामार्थं विजितेन्द्रियम् ।
अनर्थेभ्यो न शक्नोति त्रातुं धर्मो निरर्थकः ॥६।८३।१४॥

उसपर सदा आपत्तियाँ आती हैं जो कि धर्म का आचरण करने के लिए सदा शुभ कर्म करता है और जितेन्द्रिय रहता है। इससे धर्म निरर्थक है, ऐसा लगने लगता है। राम तुम्हारी यही अवस्था हुई है। तुम्हें कष्ट से बचाने के लिए धर्म भी काम न आया। कष्ट ही तुम्हारा धर्म बना है।

भूतानां स्थावराणां च जङ्गमानांच दर्शनम् ।
यथास्ति न तथा धर्मस्तेन नास्तीति मे मतिः ॥६।८३।१५॥

दिगर प्राणीमात्र और जड़ वस्तुओं को कोई धर्म नहीं रहता और इस प्रकार उनसे किसी भी प्रकार से धर्माचरण न होकर भी उन पर कोई आपत्ति नहीं आती है। वे उनकी पद्धति के अनुसार सुख में रहते हैं।

यथैव स्थावरं व्यक्तं जङ्गमं च तथाविधम ।
नायमर्थ स्तथा युक्त स्त्वद्विधो न विपश्चते ॥६।८३।१६॥

स्थावर जंगम के लिए कोई धर्म नहीं और इसलिए आपत्ति नहीं है। उसी प्रकार धर्माचरण कर स्वयं पर आपत्तियाँ लाना वेकार है, यह मेरा मत है।

यद्यधर्मो भवेभ्दूतो रावणो नरकं व्रजेत ।
भवांश्च धर्मसंयुक्तो नैव व्यसन माप्नुयात् ॥९।८३।१७॥

यदि धर्म का राज रहता तो रावण सीधे नरक में जाता और आप जैसे धर्म-परायण पापभीरू व्यक्ति पर इस प्रकार की आपत्तियाँ न आतीं।

यस्मादर्था विवर्धन्ते येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ।
क्लिश्यन्ते धर्मशीलाश्च तस्मा देतौ निरर्थकौ ॥६।८३।२१॥

उसे सिवाय क्लेश और आपत्ति के कुछ नहीं मिलता जो अपनी सारी जिन्दगी धर्म को बढ़ाने हेतु और धर्म को प्रतिष्ठा मिलाने हेतु व्यतीत करता है। इसलिए हे राम मुझे इस प्रकार के धर्म-जागरण के और धर्म-रक्षा के प्रयास करने में कुछ रस नहीं लगता। यह सब व्यर्थ है।

वध्यन्ते पाप कर्माणो यद्यधर्मेण राघव ।
वधकर्महतोऽधर्मः सहतः कं बधिष्यति ॥६।८३।२२॥

पापी यदि पापाचरण से मारा जाता है और पुण्यकर्म से पुण्यवान तर जाता है तो फिर किसने किसको मारा, किसने किसको तारा ? यह सब भंगुर और व्यर्थ है।

ऊपर निर्दिष्ट विचार वौद्धमत के अनात्मवाद और 'सर्वं क्षणिकं' इस प्रकार के तत्वज्ञान के निकट लगते हैं। आगे चलकर लक्ष्मण जो तर्क करते हैं वह इसी अनात्मवाद को पकड़ कर है। इससे यह स्पष्ट है कि रामायणकाल में समाज के विचारवान लोग भी लक्ष्मण जैसे धर्माचरण एवं पापभीरुता के वारे में आकृष्ठ नहीं थे, यह दीख पड़ता है। इस प्रकार के अनात्मवाद, भंगुरवाद और अधर्मवाद को प्रत्युत्तर देकर भारतीय समाज को पुनः वैदिक आत्मवाद, सनातनत्व और धर्माचरण पर लाने का महत्कार्य रामायण और महाभारत में किया है। श्रीमद्भगवद् गीता ने भी यही धर्मजागरण का महत्कार्य किया। परिणाम यह हुआ कि वौद्ध अनात्मवाद और भंगुर थेरवाद को भारत से नष्ट होना पड़ा। रामायण का यह महान क्रांति-कार्य रामायण-भक्त ध्यान में रखकर उस प्रकार अपने जीवन का ध्येय वनायें। केवल रामायण पर वेकार प्रवचन देकर धन इकट्ठा करने से यह महान कार्य न होगा। जिस दिन रामायण-भक्त यह समझेंगे वह सुदिन माना जाना चाहिए। लक्ष्मण फिर से अपना युक्तिवाद चलाते हैं —

अदृष्ट प्रतिकारेण अव्यक्ते नासता सता।
कथं शक्यं परं प्राप्तुं धर्मेणारिविकर्शन ॥६।८३।२४॥

धर्माचरण की आवश्यकता ही क्या है यदि यह सव अदृष्ट और अव्यक्त द्वारा होता है। जो होना है सो होगा, इसलिए छटपटाने की क्या आवश्यकता है।

लक्ष्मण कहते हैं कि हे राम आप राज्य का स्वीकार करते तो अच्छा होता। राज का अस्वीकार करने में आपने धर्म का उच्छेद किया।

मम चेदं मतं तात धर्मोऽयामिति राघव।
धर्ममूलं त्वया छिन्नं राज्यमुत्सृजता तदा ॥६।८३।३१॥

जिसके पास धन और सत्ता है उसके पास सव कुछ है लक्ष्मण कहते हैं—

'अर्थेभ्योऽथ प्रवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगा ॥६।८३।३२॥
अर्थेत हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्पचेतसः।
विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥६।८३।३३॥
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥६।८३।३५॥
यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः श च बुद्धिमान्।
यस्यार्थाः स महावाहुर्यस्यार्थाः स गुणाधिकः ॥६।८३।३५॥'

रामायण काल के कई शतक बाद हुए राजा भर्तृहरी अपने वैराग्य शतक में इसी प्रकार का भावार्थ रखते हैं, 'सर्वे गुणाः काञ्चनम् आश्रयन्ति।' पैसा ही परमेश्वर है। बहुत धन मिलना चाहिए, किसी प्रकार से मिलाना चाहिए। धन के पीछे सब समाज दौड़ता है। धन द्वारा सम्मान और समाज में प्रतिष्ठा मिलती है। धन द्वारा सब सुख प्राप्त होता है। धन द्वारा मन जीतकर व्यक्ति राष्ट्र का चालक बनता है। इसलिए धनार्जन ही धर्म है, इस प्रकार के विचार समाज में सर्व समय रहे हैं। आज भी यह विचार मान्यता पाते हैं और यदि समाज इस प्रकार रहेगा तो मान्यता पायेंगे। इस प्रकार के विचार बड़े-बड़े विचारवानों को भी परास्त करते हैं फिर मामूली आदमी की बात ही क्या ? लक्ष्मण इसी प्रकार राम को समझाते हैं—

त्वयि प्रव्रजिते वीर गुरोश्च वचने स्थिते।
राक्षस पहृता भार्या प्राणैः प्रियतरा नव ।।६।८३।४१।।

हे पापभीरू राम, आपने गुरुजनों का वचन मानने में धर्मशीलता माना और उसका फल यह निकला कि आपकी प्राण-प्रिया पत्नी राक्षस लेकर भाग गये। इसलिए राम, इस प्रकार के धर्माचरण में कोई अर्थ नहीं है।

इतने में वहाँ पर विभीषण आते हैं और वे लक्ष्मण को उनके कर्तव्य की याद दिलाते हैं। उधर इन्द्रजीत एक महान यज्ञ कर रहा था जिसके सफल होने से रामपक्ष का सर्वनाश था। इसलिए इन्द्रजीत के यज्ञ को अधूरा रख कर बन सके तो इन्द्रजीत का वध करना था। बेचारा लक्ष्मण ! अपने सारे दुःख और झिझक भूलकर वह इन्द्रजीत को पराजित करने जाता है। जिन्हें समाज में स्थान नहीं, जिनका सुख दुःख कोई मानता नहीं, उन्हें अपना दुःख और अपमान पीकर अपने ही को समझाना पड़ता है। उनके आँसुओं को कौन पोछेगा ? वे स्वयं अपने आँसुओं को पीकर मन को सम्हालते हैं और आगे बढ़ते हैं। गरीबी हटाओ कहने वाले धूर्त राजकारणी, दांभिक, सन्त महाराज, भगवान और प्रवचनकार उनके काम नहीं आते। वे अपने आप को समझाते हैं, सम्हालते हैं और मन को बलवान कर आपत्तियों पर सवार होकर अपना जीवन-मार्ग अपने हाथों निपटाते हैं। वही उनका भगवान है जो कि सदा उनके साथ रहता है। सामान्य व्यक्ति इस प्रकार के वातावरण को देख हड़बड़ाता है, घबड़ा जाता है और आपत्तियों में लिपट जाता है। परन्तु धीर पुरुष क्षणभंगुर जड़ लाभ का मोह दूर कर अपना धर्म-चरित्र और शील सम्हाल कर सत्य-मार्ग का आश्रय करता है। ऐसे धीर पुरुष अनन्त दुःख

और आपत्ति सह कर भी अपना आदर्श नहीं छोड़ते है। ऐसे ही लक्ष्मण और राम समाज के सदाकाल आदर्श बन सकते हैं जो कि रामायण के आदर्श पुरुष हैं।

इन्द्रजीत वध :

इस तरह इन्द्रजीत यज्ञ के लिए बैठा था। विभीषण को वह यज्ञ-स्थान मालूम था जिस स्थान पर लक्ष्मण को लेकर विभीषण गये। इन्द्रजीत यज्ञ में मग्न था। इन्द्रजीत को लक्ष्मण ने ललकारा परन्तु इन्द्रजीत अपना स्थान छोड़ने को तैयार नहीं था। उस समय की धार्मिक रीतिनुसार यज्ञ करने वाले व्यक्ति को मारना अधर्म था। ललकार कर इन्द्रजीत नहीं आता था इसलिए लक्ष्मण के लिए इन्द्रजीत को गाली देना अनिवार्य था। गाली प्रदान सुनकर इन्द्रजीत उठ खड़ा हुआ कि लक्ष्मण ने उसे अपने शूल का शिकार बनाया। इन्द्रजीत की मृत्यु के कारण रामपक्ष आनन्दित हुआ तो रावण बहुत दुःखी हुआ। घटना एक परन्तु विभिन्न भावनानुसार उसका परिणाम विभिन्न होता है। इन्द्रजीत का वध देखकर रावण के मस्तिष्क में एक दुष्ट विचार आया कि सीता को साफ किया जाय। परन्तु उस प्रकार वर्ताव करने से उसके वैचारिक पृष्ठभूमिरूप 'सुपार्श्व' नामक मन्त्री ने मना किया और रावण ने सीता को मार डालने का विचार छोड़ दिया। सुपार्श्वरूप विवेक ने सीता को बचाया और राम-रावण युद्ध के क्षितिज पर अब स्वयं रावण को लाया।

रावण अवतार समाप्ति : राम-रावण युद्ध :

रावण अब अकेला पड़ गया था। भाई कुंभकर्ण, कई सरदार और अब शूरवीर पुत्र मारा गया था। उसको अब किसी का सहारा न था। अब वह स्वयं राम-लक्ष्मण से युद्ध करने आता है। घमासान युद्ध हुआ राम रावण में जिसका वर्णन शास्त्रकार अपनी भाषा में करते हैं—'रामरावण योर्युद्धं राम रावणयोरपि।' राम-रावण युद्ध का दूसरा जोड़ नहीं। वह भूतकाल में नहीं हुआ और न उस अनुसार कोई भविष्यकाल में होगा। रावण रथ पर सवार होकर लड़ता था। युद्ध बराबरी से हो इसलिए इन्द्र ने अपना स्वर्गीय रथ और सारथी मातली राम को युद्ध के लिए दिया। कौन-सा इन्द्रीय रथ था यह और कौन-सा सारथी मातली था यह? अब सुबुद्ध पाठक यह समझ सकते हैं। इन्द्र का रथ याने शरीर और सारथी मातली याने साधक की परिपक्व बुद्धि है। उपनिषद बताते हैं—

'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रह मेव च ।'

इस प्रकार का रथ और सारथी भगवान राम को मिला और नये जोश से राम-रावण युद्ध शुरू हुआ । वृत्तियों का महान युद्ध !

रावण नाना प्रकार के शस्त्र-अस्त्र राम पर चलाता था । असत् प्रवृत्तियों की मार सत प्रवृत्तियों पर होती थी और उसी अनुसार राम सत्वृत्ति रावण रूप असत् प्रवृत्ति पर अपने शस्त्र-अस्त्र चलाती थी । सतत के संघर्ष के कारण विवेकरूप लक्ष्मण को मूर्च्छा आई और भाई लक्ष्मण नीचे गिर पड़ा । परन्तु राम साधक हड़बड़ाये नहीं । तुरन्त वैद्य सुखेन को बुलाकर लक्ष्मण को औषधि सुंघा गई और लक्ष्मण उठ खड़े हुए । साधक का विवेक फिर जागृत हुआ और फिर भ्राता लक्ष्मण के साथ राम रावण पर प्रहार करते हैं । राम ने रावण के बीस हाथ काटे आधारमय पांव काटे और आखिर दस शिर भी काटे परन्तु हृदय जैसे का तैसे था इसलिए रावण पुनः अपने बीसों हाथ पांव और दसशिर पाकर राम से नये जोर से लड़ने आता था । अब क्या किया जाय ? इस प्रकार रावण कभी भी मारा नहीं जायेगा । आखिर रावण के हृदय पर ब्रह्मरूप तीर चलाया गया और रावण का हृदय-परिवर्तन हुआ । अब क्या बाकी था ? हृदय-परिवर्तन ही मनुष्य जीवन में प्रमुख है । हृदय-परिवर्तन के कारण अब वह रावण रहा नहीं । वह राम बन गया । कहा जाता है कि रावण के हृदय से एक विशाल ज्योति निकलकर राम के हृदय में प्रविष्ट हुई और रावण-जीवन समाप्त हुआ ।

विभीषण इतना धीर पुरुष परन्तु रावण के मृत शरीर को देखकर वह फूट-फूटकर रोने लगा । रावण-पत्नी मन्दोदरी का विलाप तो न पूछिये । सब उर्वरित राक्षसियाँ रावण-मृत्यु पर रोने लगीं—सीना ठोक-ठोक कर ! परन्तु अब क्या ? मृत्यु यह अन्नमय जीवन का अनन्तकार है, 'मरणादिति रिच्यते' राम ने विभीषण को समझाया और उसके द्वारा सब राक्षसियों को सांत्वना दिलाया । राम ने विभीषण को रावण के शरीर की उत्तर-क्रिया करने को बताया परन्तु रावण की नीचता देखकर विभीषण उसे उत्तरक्रिया से सम्मानित करना नहीं चाहता है । फिर से राम ने विभीषण को समझाया—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतां यस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥६।१११॥

राम कहते हैं, 'हे विभीषण शत्रुत्व शारीरिक मृत्यु तक रखना चाहिए। फिर मृत्यु के पश्चात उस शरीर का स्वामी बाहर निकल जाता है। उस मृत शरीर से अपनी दुश्मनी नहीं है। इसलिए हे राक्षसराज अपनी पद्धति के अनुसार रावण की उत्तर क्रिया यथावस्थित करो।' वैदिक परम्परा की यह महानता है। अन्य परम्परा के लोग मृत शरीर से कैसा बर्ताव करते हैं, यह दुनिया जानती है।

रावण के शव की उत्तर क्रिया :

कथा सत्य प्रतीत हो इसलिए रावण के शव का दाह-संस्कार बताना आवश्यक था। रावण के दाह-संस्कार से उस समय भारत में दाह-संस्कार किस प्रकार किये जाते थे और वस को लेकर किस प्रकार की संस्कृति, सभ्यता विद्यमान थी इसका पता चलता है। आज हिन्दुओं में जिस प्रकार शव के दाह-संस्कार हुआ करते हैं लगभग उसी प्रकार के दाह-संस्कार रामायणकाल में थे, यह दीख पड़ता है। रामायण के युद्धकाण्ड पर्व १११ और श्लोक १०७ से १०९ तक उसका सुन्दर शब्द चित्र आया है।

रावणं राक्षसाधीशमश्रुपूर्णं मुखा द्विजाः।
तूर्यं घोषैश्च विविधैः स्तुवद्भि श्वाभिनन्दितम् ॥६।१११।१०७॥

राक्षसाधीश रावण का शव एक शिविका में वहन किया जा रहा था और साथ में तूर्य और विविध वाद्यों का घोष किया जाता था। उपस्थित ब्राह्मण समाज के लोग रावण के लिए अश्रु ढालकर शोक करते थे। कैसा भी हो, आखिर रावण एक ब्राह्मण था।

पताकाभिश्च चित्राभिः सुमनोभिश्च चित्रिताम्।
उत्क्षिप्य शिबिकां तो तु विभीषण पुरोगमाः ॥६॥१११।१०८॥

शिविका को नाना प्रकार के पताका एवं फूलों से सजाया था। शवयात्रा के आगे एक मटकी में अग्नि लेकर भाई विभीषण जा रहा था।

दक्षिणाभिमुखाः सर्वे गृह्य काष्ठानि भेजिरे।
अग्नयो दीप्तमानास्ते तदाध्वर्यु समीरिताः ॥६।१११।१०९॥

सब लोग दक्षिणाभिमुख होकर अग्निकाष्ठ ले जा रहे थे और सबके आगे दीप्त अग्नि वहन किया जा रहा था।

शरणाभिगताः सर्वे पुरस्तात्तस्य ते ययुः।
अन्तःपुराणि सर्वाणि रुदमानानि सत्वरम् ॥६।१११।११०॥

सब पुरवासी दासदासी और अन्त:पुर की सब रानियाँ रो रही थीं। इस प्रकार रावण की शवयात्रा श्मशान की ओर जा रही थी। श्मशान में जाने के बाद चन्दन काष्ठ की चिता रचाई गई, 'चितां चन्दन काष्ठौश्च पद्मको शिरचन्दनैः।'

सब विधि वैदिक परम्परा के अनुसार किये जाते थे। वर्णन देखिये—

'शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षि विहितेन च।
तत्र मेध्यं पशुं हत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ॥६।१११।११६॥
परिस्तरणिकां राज्ञो धृताक्तां समवेशयम्।
गन्धैर्माल्यैरक्तं कृत्य रावणं दीनमानसा ॥६।१११।११७॥

रावण के साथ मारे जाने वाले मेध्य पशु लिए जा रहे थे और उनकी खाल रावण की चिता पर घी में अच्छी तरह भिगाकर छाई जा रही थी। उस पर गन्ध फूल मालाएँ चढ़ाकर दर्भ द्वारा विधिपूर्वक उदक तर्पण किया गया। आज भी हिन्दू परम्परा में लगभग इसी प्रकार अन्त्येष्टि सम्पन्न की जाती है। केवल पशुओं को मारकर उनकी खाल घी में भिगाकर चिता पर नहीं जाती है। परन्तु आज भी दग्ध अस्थियाँ मृगचर्म में बाँधकर घर के किसी खंभे पर टांग दी जाती हैं और बाद में वह अस्थिपुस्त किसी तीर्थक्षेत्र में विसर्जित किया जाता है। रावण के मृत शरीर की टोकरी फट जाने के पश्चात सब अपने अपने घर विषण चित्त से लौट आये। विभीषण द्वारा रावण-पत्नियों का सांत्वन किया गया। इसके बाद राम ने इन्द्र द्वारा दिया हुआ रथ और सारथी इन्द्र को वापस किया। अब राम पूर्ण साधक बने थे कारण अब उनमें कोई रावणवृत्ति बाकी न थी। राम आत्माराम बन गये थे। वास्तविक रामायण समाप्त हुयी। अब बाकी रहा था विभीषण को लंका के राज्य का राज्याभिषेक करवाना, कारण राम लंका का राजा बनना नहीं चाहते थे। परायी वृत्ति का मालिक कौन बने? इसलिए रावण-भ्राता विभीषण को ही लंका के सिंहासन पर बैठाया जाता है।

विभीषण का राज्याभिषेक :

वास्तव में राम ने समस्त परिश्रम और व्यूह-रचना कर रावण को मारा था और लंका का राज्य जीता था परन्तु राम अवैदिक परम्परा जैसे अन्यों का जीता हुआ भूभाग अपने राज्य में जोड़ना नहीं चाहते थे अथवा जिते हुए लंका राज्य का स्वयं स्वामी बनना नहीं चाहते थे। अवैदिक परम्परा वाले सिकन्दर, मुगल और अंग्रेजों ने भारत को कई सदियों तक अपना गुलाम

बनाये रखा था और अपना असंस्कृत जीवन भारत के सुसंस्कृत जीवन पर लादने का पशुवत् प्रयास किया था। राम वैदिक परम्परा के थे इसलिए जिते हुए भूभाग का स्वयं स्वामी बनना, लोगों की स्त्रियों का बलात् हरन करना अथवा अपनी संस्कृति, सभ्यता उन पर लादना वे अच्छा नहीं मानते थे। पराक्रम अवश्य करना और वह भी आक्रमणकारियों के आक्रमणों को परास्त करने के लिए, परन्तु आक्रमक और आक्रमित प्रदेश पर वैदिक परम्परा सम्पन्न लोगों ने अपना स्वामित्व कभी नहीं दिखाया। शत्रुओं को सबक देकर वे उन्हें उनका भू-भाग दे देते थे। वैदिक परम्परा की यह महानता राम द्वारा रामायणकार दिखाते हैं। भगवान राम ने रावण भ्राता-विभीषण को लंका के राजसिंहासन पर बैठाना चाहा। प्रथम स्वयं विभीषण ने सम्पूर्ण लंका-राज्य को राम के चरणों में डाला था परन्तु राम उसे स्वीकारते नहीं हैं और विभीषण को ही लंका का स्वामी बनाते हैं। रामायण का वर्णन है—

विभीषणामिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय।
अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम् ॥६।११२।९॥
विधिना मन्त्र दृष्टेन सुहृदगण समावृतम्।
अभ्यासिञ्चत्स धर्मात्मा शुद्धात्मानं विभीषणं ॥६।११२।१५॥

विभीषण को विधियुक्त ढंग से लंका के सिंहासन पर स्थानापन्न किया गया। यह राज्य अब राक्षसी नहीं वरन् मानवीय और आध्यात्मिक था इसलिए उस आध्यात्मिक पिंड-राज्य के सुयोग्य व्यक्ति को याने विभीषण को उस लंका-राज्र का प्रमुख बनाना पिंड-धर्म के अनुसार बिलकुल सुयोग्य और धार्मिक था। लंका-पिंडराज्य के लिए विभीषण-वृत्ति सुयोग्य थी इसलिए विभीषण को लंका का राजा बनाया गया। अपने योग्य स्वराज्य पर साधक को अधिष्ठित होना चाहिए। लंका-पिंडराज्य के लिए विभीषण सुयोग्य था और राम का राज्य था अयोध्या ! सीता को प्राप्त कर राम अयोध्या वापस लौटना चाहते हैं।

सीता का पुनः आगमन :

रावण था ब्रह्मरूप ब्राह्मण और राम था मर्यादा पुरुषोत्तम याने अपनी शक्ति मर्यादा के बाहर न जा सकने वाला साधक। इसलिए राम की सात्विक अनुभूति रूप पत्नी सीता ब्रह्मरूप ही जाने के लिए रावण उसे लेकर लंका में

आया था परंतु लंका में स्थित ब्रह्ममय संस्कार और वातावरण का प्रभाव न सीता पर पड़ा और न उसके द्वारा साधक राम पर। शास्त्रकार कहते ही हैं, 'स्वभावो दुरतिक्रम:' अपने संस्कार और स्वभाव बदलना कठिन है। ब्रह्मरूप रावण के साथ उस प्रकार के सुखमय लंका में रहकर भी सीता मर्यादा पुरुष राम को ही चाहती है। अब राम ने ब्रह्मरूप रावण को मारा था। रावण ब्रह्मरूप ब्राह्मण था परंतु बौद्धमतावलंबी था कारण उसकी लंका में सर्वत्र बौद्ध स्तूप थे जिसे रामायणकार चैत्य प्रासाद कहते हैं। हनुमान ने चैत्य प्रासाद याने बौद्ध स्तूपों का विध्वंस किया परंतु राम ने चैत्य प्रासादों को हाथ नहीं लगाया। हाथ लगाया प्रत्यक्ष रावण को। रावण याने वृत्ति है न कि कोई ऐतिहासिक व्यक्ति विशेष। वैदिक परम्परा में साधक की वृत्ति सुयोग्य करने पर जोर दिया जाता है और वह भी मत-परिवर्तन से न कि बलात् प्रचार और हिंसा कर! भारत में मुस्लिम सत्ता आने के बाद उन्होंने भारतीयों को बलात् धर्मान्तर कराया और उतना भी नहीं तो भारतीयों के पूजा-स्थानों का बहुत विध्वंस किया। इस पशुवत् पृष्ठभूमि पर राम का वर्तन बहुत उच्च दीख पड़ता है। राम ने रावण-वृत्ति बदलाई और सीता को पुनः वापस लाया परंतु रावणी संस्कृति के पूजा-स्थानों का संहार नहीं किया। आखिर राम और रावण एक ही थे, मानव थे! सच्ची मानवता भारत में ही पाली गई और बढ़ाई गई, अन्य सभ्यता और संस्कृतियों में सिवाय संहार और बलात्कार के दूसरा कुछ नहीं है। दो संस्कृतियों की दो प्रकार की प्रवृत्ति रामायणकार ने अच्छी दिखाई है।

अब भगवान राम ने हनुमान को सीता को लाने के लिए अशोक वन में भेजा, कारण सब लोग सीता को देखने के लिए बहुत उत्सुक थे। हनुमानजी सीता के सन्मुख हाथ जोड़कर खड़े हुए और उसको युद्ध का सारा समाचार सुनाया और राम के सन्मुख उपस्थित होने को कहा। सीता भी राम से मिलने के लिए बहुत उत्सुक थी। विभीषण ने सीता को उत्तम जल से नहलाया, उत्तमोत्तम वस्त्र अलंकार दिये और सीता को एक उत्तम शिविका में बैठाकर उसे राम के सन्मुख लाया, जहाँ कि सब वानर उपस्थित थे। अब सीता के उत्तम वस्त्र और अलंकार क्या थे यह सूज्ञ पाठक अब जान गये होंगे। राम के सन्मुख खड़े होते समय सीता के उर में कितनी भावनाएँ उमड़ आई होंगी? जिस सीता के लिए राम सदा शोक करते थे और जिनके लिए युद्ध हुआ वह प्रिय सीता अब सामने खड़ी थी। राम की भी भावनाएँ कितनी बार आई

होंगी ? परन्तु हुआ भलताही ! राम सीता को कहते हैं, 'सीता मैंने अपना कर्तव्य किया। अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार किसी के साथ रह सकती हो, लक्ष्मण के साथ, भरत के साथ अथवा विभीषण के साथ भी। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। रावण ने तुझे बलात् हर लिया। रावण की तुझपर वक्र दृष्टि थी। अब मैं तुम्हें कैसे अपने पास रखूं ? तुम्हें जहाँ जाना हो वहाँ तुम जा सकती हो।'

रामायण को यदि इतिहास माना जाय तो राम का यह सीता के साथ किया हुआ भाषण और वर्तन किसी विक्षिप्त एवं मूर्ख व्यक्ति जैसा मालूम होगा। भावुक लोग राम के इस वर्तन की बहुत प्रशंसा करते हैं परन्तु राम जैसे सारी घटनाएँ उनपर आ जाय तो स्यात ही ऐसे भावुक राम जैसा व्यवहार करेंगे इतना ही नहीं वरन् राम जैसा सीतारूप पत्नी से कोई व्यवहार करे तो उसे वे ही लोग विक्षिप्त और मूर्ख समझेंगे। जिस पत्नी के लिए मजनू जैसे रोना और उसको सन्मुख देखकर उसे किसी गुलाम स्त्री जैसे जबरन अन्यों के साथ रहने के लिए कहना, यह समस्त नारी-जाति पर आक्रमण और अन्याय है। एक पतिव्रता स्त्री को अन्य पुरुषों के साथ रहने के लिए कहना एक असंस्कृत एवं निर्लज्ज बात है। इस दृष्टि से राम का सीता के साथ बताया हुआ वर्तन निन्दनीय है। इस प्रकार कोई पति अपनी पत्नी के साथ वर्तन करे तो समाज-स्वास्थ्य और मानवीय आदर्श का स्तर बिगड़ जायेगा। परन्तु यह ध्यान में रखा जाय कि रामायण एक आध्यात्मिक आदर्श ग्रन्थ है, न कि प्रत्यक्ष इतिहास। इस दृष्टि से सीता याने सात्विक आध्यात्मिक अनुभूतियाँ अब कुछ समय ब्रह्मरूप ब्राह्मण रावण के निवास में रहने के कारण अब वह सीता अनुभूतियाँ विवेक के साथ याने लक्ष्मण के साथ, वैराग्यपूर्ण जीवन याने भरत के साथ और एक अति जागृत बुद्धि याने विभीषण के साथ रहे, यह कहने में रामरूप आत्माराम साधक के मन की ऊँचाई दीख पड़ती है। इस वाक्य द्वारा साधक राम सुझाते हैं कि उनकी पत्नीरूप सात्विक अनुभूतियाँ सीता अब केवल राम याने आनन्द के साथ न रहकर अब वह विवेक के साथ (लक्ष्मण), वैराग्य के साथ (भरत) और जागृत बुद्धि (विभीषण) के साथ रहकर अधिक उच्च संस्कार वाली बने और अन्त में मुक्त हो जाय।

राम का सीता को दिया हुआ यह आध्यात्मिक सुझाव हम सब भली-भाँति जानें और उस अनुसार अपने जीवन में वर्ताव करें। राम-सीता संवाद

युद्धकाण्ड के सर्ग ११५ के अन्तर्गत श्लोक १७ से लेकर श्लोक २४ तक देखिये। साधक राम के इस प्रकार विचित्र एवं अनुदार कथन का उत्तर सीता-वृत्ति एक स्वाभिमानी एवं पतिव्रता स्त्री जैसे देती है। सीता मुंहतोड़ जवाब देती है।

कि माम सदृशं वाक्यमिदृशं श्रोत्र दारूणम्।
रूक्ष भावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥६।११६।५॥

'हे आर्य राम, इस प्रकार कठोर, कटु और अनुचित बातें कह मुझे क्यों दुखवाते हो ? एक बाजारू आदमी जिस प्रकार एक बाजारू स्त्री से भाषण और वर्तन करता है उस प्रकार आप मुझसे भाषण कर रहे हैं। हे महाबाहों, आप मुझ पर विश्वास रखें। मैं निष्पाप हूँ। रावण-वृत्ति ने मुझे स्पर्श किया, यह सत्य है परन्तु नाथ मैं आपके सिवाय किसी वृत्ति-रूप पुरुष पर प्रेम नहीं करती हूँ। मुझे सिवाय आनन्दमय राम के अन्य वृत्ति-पुरुष मालूम नहीं। एक पराधीन अवला क्या करती है। आप यदि इस प्रकार मुझसे वर्ताव करना चाहते तो प्रथम मेरी वार्ता पूछने हनुमान को क्यों भेजा ? मेरे कारण इतना घमासान युद्ध कर असंख्य वीरों को मृत्यु के घाट क्यों उतारा गया ? मैं इस प्रकार मिथ्या कलंक लेकर जीवित ही नहीं रहती यदि मैं यह सब पहले जान लेती।'

बोलते-बोलते सीता का कण्ठ निरूद्ध हो गया और अश्रु नयनों से उसने देवर विवेक को चिता लगाने के लिए बताया जिस पर सीता स्वयं को अग्नि में समर्पण कर अग्निदिव्य करें। चिता रचायी गई। चिता के पास धीर कन्या सीता खड़ी होकर अग्निदेव को प्रणाम कर बोलती है—

'यथा मां शुद्ध चारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥६।११६।२५॥

मैं शुद्ध चारित्र्य हूँ परन्तु राम के मन में दुष्ट विचार आये हैं। मैं निस्कलंक हूँ। सम्पूर्ण जगत के साक्षी हे अग्नि देवता आप मेरी रक्षा कीजिये।' यह कहकर एक निष्पाप जीव चिता में अपना शरीर झोंक देता है। ज्वालाएँ अधिक ऊँची हुईं और सीता अग्नि में गायब हो गई। सब लोग तमाशा देखते रहे परन्तु एक भी मायका पूत उस निष्पाप स्त्री को जलने से बचा नहीं सका। कुछ संभावित झूठे नक्राश्रु पोंछते रहें। वाह रे संशयी राम और वाह रे उस समय का दिखावटी समाज ! एक निरपराध अब सबके समक्ष जलकर खाक बनती है, और वह भी धर्म के नाम पर !! वाह रे धर्म, वाह रे पतिधर्म, वाह रे पतिव्रता-धर्म और समाज-धर्म !!!

परन्तु भगवान दयामय हैं। दयाघनं परमेश्वर अग्नि में प्रवेश करते हैं और.अग्निदेवता को सीता को वचाने के लिए बताते हैं। ऐसा कहा जाता है कि वह षंठ समाज देखकर आखिर अग्नि नारायण को सीता की दया आई और अपनी शीतल ज्वाला रूप भुजाओं पर उन्होंने सीता को सर्वा समक्ष भगवान राम के सन्मुख रखा और स्वयं अन्तंधान हो गये। आखिर जिसका कोई नहीं उसका भगवान साथी रहता है और भगवान ने जिसे वचाया उसे वैसा ही छोड़ दिगर लोग भगवान की लीला की प्रशंसा करते हैं। आज तक सीता के ऊपर किये गये अन्याय को देखकर कोई भी राम पर आलोचना नहीं करते हैं, और कहते हैं–राम ने वहुत अच्छा किया। राम जिसके लिए रोये वह सीता हर वृत्तिकण से रो रही है परन्तु उसका रोना कौन सुनता है ?

रामनाम सब कोई कहे सीता कहे ना कोय।
एक बार सीता बने नरका नारायण होय॥

सब उपस्थितों के सन्मुख राम ने सीता का स्वीकार किया परन्तु सीता की नसीव इतने में समाप्त नहीं हुई। अयोध्या जाने के बाद फिर से एक वार राम सीता का त्याग करते हैं और वह सीता को रावण-लांछन लगाकर !

सीता को स्नानादि कर्म कर राम अपने साथ अयोध्या ले जाते हैं। विभीषण अपने पुष्पक विमान द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता को अयोध्या पहुँचाने की शाश्वती लेते हैं। रामायण में पुष्पक विमान का यह उल्लेख देखकर हमारे विद्वान कह पड़ते हैं कि देखो रामायण काल में हमारे देश में कैसे विमान थे। परन्तु आज वह विमान कहाँ गायव हो गये इस वारे में कोई नहीं वताता। अच्छा, रामायण काल में यदि सचमुच विमान वाहन थे तो रामायण काल से समकालीन बौद्ध वाङ्मय में उनका उल्लेख क्यों नहीं है ? इससे यह स्पष्ट है कि रामायण में उल्लेखित विमान याने आज जैसा आकाश वाहन नहीं वरन ध्यान का एक दिव्य मार्ग है। ध्यान वहन आकाश तत्व द्वारा होता है जिसे रामायणकार पुष्पक विमान कहते हैं। पुष्प याने फूल और पुष्पक याने फूल जैसा सुगन्धित, सुकुमार और दिव्य ध्यान-मार्ग।

अयोध्या वापस जाते समय भगवान राम सीता को वह सब स्थान दिखाते हैं जहाँ से सीता को रावण ले गया था और अन्य सारी घटनाएँ घटित हुई थीं। वास्तव में न तो पुष्पक विमान था और न राम सीता को पुष्पक विमान में लेकर अन्तराल से जाते हैं परन्तु आज जैसे हम विमान से

यात्रा कर नीचे का प्रदेश देखते हैं ठीक उसी प्रकार रामायणकार वर्णन करते हैं। इससे वाल्मीकिजी की बुद्धि और कल्पना कितनी तरल थी, इसका पता चल सकता है। आज अनेकानेक विमानों द्वारा वाल्मीकिजी की विशाल बुद्धि का परिचय होता है। हमारे शास्त्री पण्डित और रामभक्त वाल्मीकीजो को इस अचार बुद्धिमत्ता का जयघोष करे बनिस्पत केवल राम-नाम का! दण्डकारण्य की यात्रा याने मेरूदण्ड की गहन साधनाएँ हैं, यह अब हम सब जानते हैं। आश्विन शुक्ल पंचमी के दिन राम सीता सह भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पदार्पण करते हैं। आज राम और सीता को वनवास के ठीक चौदह साल हुए थे। सब लोग अयोध्या वापस आते हैं। यह सोचकर कि चौदह साल राज्य करने के कारण भरत की बुद्धि में फर्क पड़ गया होगा, राम हनुमान को भरत को सन्देश देने भेजते हैं। परन्तु भरत की बुद्धि जैसी की वैसी थी। राम का आगमन सुन भरत भावना से भरपूर हो जाते हैं और भैया राम के चरण अपनी आँसुओं से धोते हैं। राम अयोध्या के राजा बनते हैं और सीता अयोध्या की महारानी। अब साधक की वृत्तियाँ, शान्त अयुद्ध याने अयोध्या वन जाती हैं। अयोध्या-निवासी भी अपना राम राजा पाकर आनन्दित होते हैं? सारी अयोध्या राम स्वरूप और आत्मानन्द में मस्त थी।

हनुमान ने भरत को प्रथम राम के आगमन की शुभवार्ता कथन की इसलिए भरत हनुमान को एक लाख गौएँ, सौ ग्राम और सोलह उत्तम आचार-विचार की कन्याएँ समर्पण की। हनुमान तो ब्रह्मचारी थे। उन्हें इन लाख गौएँ, सौ गाँव और सोलह स्त्रियों से क्या मतलव है? गौ याने इन्द्रियाँ, ग्राम याने वृत्तियाँ और सोलह कन्या याने षौडश कलाएँ हैं जिनके बिना कोई भी पुरुष पूर्ण नहीं वन सकता। उपनिषद स्पष्ट बताते हैं। 'षोडश कलाः पुरुषः।' हनुमान को भरत यही षोडश कलारूप कन्याएँ देते हैं। रामने सीता को नवरत्नों की अमूल्य माला दी जो सीता ने हनुमान को अर्पण की। उस माला के हरएक मणी में भगवान राम है या नहीं यह देखने के लिए हनुमानजी उस माला का हरएक मणी फोड़-फोड़ कर देखते हैं परन्तु भरत की दी हुई सोलह कन्याएँ वे कहाँ रखते हैं और उनसे कौन-सा वर्तन करते हैं, इसका वर्णन रामायय में नहीं है। इस प्रकार ब्रह्मचारी हनुमान सोलह कन्याओं के पति बनते हैं।

गवां शत सहस्त्रं च ग्रामाणां च शतं परम्।
सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्यास्तु षोडशः॥ ६।१२५।४४॥

रामायणकार को हनुमान को दी हुई सोलह कन्याएँ उनकी भार्या याने पत्नियाँ थीं, यह स्पष्ट लिखते हैं। रामायण को इतिहास मानने पर ब्रह्मचारी हनुमान की यह सोलह भार्याएँ कैसी ? इसलिए रामायण भौतिक इतिहास नहीं वरन् आध्यात्मिक रूपकात्मक आदर्श साधना-जीवन है जिसका हर आध्यात्मिक साधक को अनुशरण करना चाहिए।

भगवान राम अयोध्या के राजा वनने के पश्चात् उनकी इच्छा थी कि युवराज पद लक्ष्मण को दिया जाय परन्तु विवेकरूप लक्ष्मण इस प्रकार किसी सम्प्रदाय को स्वीकारना पसन्द न करते थे। आखिर सव लोगों के आग्रह से भरत को अयोध्या का युवराज पद स्वीकारना पड़ा। अव राम अपने साम्राज्य सिंहासन पर अधिष्ठित हो गये थे। 'रामः स्वरूप साम्राज्ये अभिषिक्तोऽरीर मत या।' योगीराज वासुदेवानन्द सरस्वती कहते हैं। शास्त्र इसलिए राम की परिभाषा वताते हैं—'रमन्ते योगिनः यस्मिन् रामः' आत्माराम यही राम है।



उत्तरकाण्ड

दशम अध्याय

लेखक के मतानुसार खरा रामायण युद्ध काण्ड तक ही है कारण साधक में स्थित रावण-वृत्ति का निरसन होने के पश्चात और आत्माराम अपने हृदय-सिंहासन पर याने अयोध्या राज पर स्थानापन्न होने के पश्चात अब रामायण बाकी न थी और उसके बाद विशेष कुछ होना भी बाकी न था। योगेश्वर वासुदेवानन्द सरस्वती भी अपने नव श्लोकी रामायण में स्पष्ट बताते हैं कि रावण-वध के पश्चात राम अपने स्वरूप साम्राज्य सिंहासन पर अधिष्ठित होते हैं और रामायण समाप्त होती है। निहत्य रावणं स्वानुभूति सीतां प्रगृह्यच। रामः स्वरूप साम्राज्ये इभिविक्तोऽरीर मत्तया ॥ १ ॥ मूल वाल्मीकि रामायण अति लोक प्रिय बनने के बाद किसी विद्वान ने यह आखिरी उत्तरकाण्ड उसमें लिखकर समाया होगा। परन्तु उत्तरकाण्ड लिखने वाला अनामिक लेखक वाल्मीकि से किसी प्रकार योगानुभूति और लेखन कुशलता में तनिक भी कमी न थी। पहले नव अध्याय जैसे दशम उत्तर-काण्ड मूल नवम् अध्याय इतने ही सुरस और आकर्षक हुए। उत्तरकाण्ड की शैली लगभग मूल नव काण्डी रामायण से लगकर है। परन्तु बुद्धिमान पाठक आखिरी उत्तरकाण्ड की विभिन्न शैली समझ सकते हैं।

महाभारत में भी इसी प्रकार हुआ है। मूल महाभारत के पर्व अट्ठारह ही हैं। परन्तु महाभारत की लोक प्रियता देखकर बाद के अध्याय पर्व और किसी ने अपनी आध्यात्मिक एवं योगानुभवों की बुद्धि उपयोग में लाकर लिखे होंगे, यह लेखक का मत है। रामायण महाभारत ग्रन्थ जिस समय लिखे थे उस समय के लोग यह जानते थे कि रामायण महाभारत यह इतिहास नहीं वरन सुन्दर आध्यात्मिक रूपकात्मक काव्य-ग्रन्थ है। व्यास और वाल्मीकि की विशाल बुद्धि और प्रतिभा देखकर उस समय के लोगों ने उन्हें 'विशाल बुद्धे' और 'मुनिपुंगव' कहा था जिस बारे में उनके ग्रन्थों में निर्देश है। महाभारत के अट्ठारह पर्व के बाद लिखा हुआ अश्वत्थामा प्रकरण तो इतना सुन्दर हुआ है कि वह मूल महाभारत से भीं बढ़कर प्रतिभाशाली हुआ है। इन अपूर्व ग्रन्थों की मोहिनी संसार के समाज पर इतनी पड़ी कि सब लोग

रामायण महाभारत को एक सत्य घटनाओं का प्रत्यक्ष इतिहास मानने लगे। रामायण महाभारत ग्रन्थ केवल भारत में ही नहीं वरन उस समय के सारे सभ्य जगत में मान्यता पाकर परम आकर्षित बने थे, जो कि हर देश के पुरातन इतिहास की खोजबीन द्वारा दिखाई देता है। एक समय सारा संसार राम-भक्त था इसीलिए वैदिक धारणा का था। बाद में वैयक्तिक बड़प्पन के कारण अन्यान्य सम्प्रदाय निकले और आज का स्वरूप लेकर स्थित हुए। हिन्देशिया, चीन, मलाया, मंगोलिया, अफगानिस्तान, इराक, रोमन साम्राज्य के अवशेष इस द्वारा प्राचीन इतिहास का अध्ययन और उत्खनन द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि एक समय संसार की परम्परा और धर्म वैदिक था। उसी समय रामायण महाभारत ग्रन्थ जगन्मान्य थे।

प्राचीन रोमन एवं ग्रीक पुरातन शहरों के उत्खनन में प्राप्त मकानों की दीवारों पर रामायण और महाभारत के प्रसंग उनकी चित्र-शैली में अंकित किये गये हैं। इतनी मान्यता स्यात अन्य किसी ग्रन्थों को न मिली होगी। आशय यह कि रामायण महाभारत ग्रन्थ इतिहास नहीं वरन् आदर्श आध्यात्मिक ग्रन्थ थे और आज भी सुयोग्य यत्न द्वारा वे पुनः जगन्मान्य ग्रन्थ बन सकते हैं परन्तु उनका आज का केवल भारतीय स्वरूप और ऐतिहासिक ढांचा बदलना आवश्यक हैं। रामायण का उत्तरकाण्ड भी इसी प्रकार आध्यात्मिक रूपकों से सम्पन्न है जो कि मूल रामायण से कम रोचक नहीं है।

राम का राज्य भोग :

अयोध्या का राज्य भोग प्राप्त होने के कारण तत्पूर्व का तापसी जीवन राम और सीता दोनों भूल गये और जड़-भोग में सदा मशगुल रहने लगे। ऐसा ही होता है। देश के लिए त्याग करने वाले लोग कुछ समय तक त्याग की भावना रखते हैं और बाद में अपने किये हुए त्याग का प्रतिफल लेना चाहते हैं। इस अवस्था में सिवाय भोग और कौन-सी भावना रह सकती है? फिर देश अथवा धर्म के बारे में कोई सोचता नहीं। भोग और स्वार्थ यही उनका धर्म बन जाता है। राम और सीता के राज्य-प्राप्ति के पश्चात के जीवन में यही बात प्रमुखता से दीख पड़ती है। कुछ स्थानों पर तो राम और सीता के भोग-जीवन का वर्णन बहुत उत्तान और कई स्थानों पर अश्लील भी हुआ है। परन्तु इसमें रामायणकार का दोष नहीं है। रामायणकाल में समाज जिस प्रकार जिन बातों में रुचि लेता था उन बातों को प्रमुखता से वर्णन करना रामायणकार का काम ही था अन्यथा रामायण ग्रन्थ जैसा इतना लोक प्रिय

न बनता। योग-मार्ग में आने वाली दिव्य अनुभूतियों का वर्णन समाज-जीवन के दृष्टान्तों द्वारा करना बहुत कठिन समस्या है जो कि चेष्टा रामायणकार ने की है। परन्तु उत्तर काण्ड में राम के आदर्श जीवन को कलुषित करने योग्य बहुत स्थान पर वर्णन पाये जाते हैं। वर्णन की यह उत्तानता और अश्लीलता रामायणकार टाल सकते थे, यह लेखक को लगता है। परन्तु उन सब वर्णनों में योग-साधनानुभव अवश्य है, जो हम देखें।

एक बार राम सीतासह सभा में बैठे थे और दोनों मदिरापान कर मस्त थे।

> सीताभादाय हस्तेन मधु मैरेयकं शुचि।
> पायसा मांस काकुस्थः शचिमिव पुरंदरः ॥७।४२।१८॥

अपनी पत्नी शची को इन्द्र जिस प्रकार सुरापान करवाते थे उसी प्रकार राम अपने हाथों से सीता को सुरापान करवाते हैं। कौन-सी सुरा थी वह ? सुर याने आगे बढ़ने वाला और सुरा याने आगे बढ़ाने वाला पेय। अध्यात्म की सुरा अथवा मधु याने अतिन्द्रिय एवं दिव्य अनुभव जो कि साधक को मधुपान जैसे धुत्त बना देते हैं। साधक राम ने अपने सात्विक अनुभूतिरूप सीता को इसी आध्यात्मिक मधुपान से धुत्त किया था। उसके बाद सभा में उपस्थित सेवकों ने राम-सीता के लिए मांस और फल लाये। वास्तव में कोई भी उच्च साधक की मांस-भक्षण करने की इच्छा ही नहीं होती है कारण उसका शरीर अन्तरबाह्य शुचित बन जाता है। सच्चा उच्च आध्यात्मिक साधक, फिर वह भले ही किसी भी धर्म सम्प्रदाय का हो, उच्च आध्यात्मिक अवस्था में मांस-मदिरा और इस प्रकार के कैफी पदार्थ मन से सेवन न करेगा। फिर रामायण में इस प्रकार का अधार्मिक वर्णन क्यों? कारण यह है कि उस समय के राजा लोग इस प्रकार मांस-मदिरा सेवन करते थे इसलिए राजा राम को भी रामायणकार ने उसी प्रकार मांस-मदिरा का सेवन करते हुए दिखाया है। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से रामायणकार की यह गलती है। इस प्रकार की गलती रामायणकार पूर्व के नवम काण्डों में दिखाते हैं जिसको देखकर दशम काण्ड के रामायणकार उसी गलती को पुनः दोहराते हैं। वास्तविक शुद्ध साधक शरीर को इन परकीय पदार्थों की आवश्यकता ही नहीं रहती है। रामायणकार का वर्णन इस प्रकार है—

> मांसानि च सुमृष्टामि फलानि विविधानि च।
> रामास्याभ्य वराहार्थं किंकरा स्तूर्णं माहरन् ॥७।४२।१९॥

नाचने गाने वाली स्त्रियाँ और अन्य चतुर रूपवान वेश्याएँ सुरापान से धुत्त होकर राम के पास आती हैं और अपने-अपने कलागुण का प्रदर्शन करती हैं।

उपानृत्यश्च राजानं नृत्यगीतविशारदाः ।
बालाश्च रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशानुगाः ॥७।४२।२१॥

इस प्रकार शराब पीकर मस्त होने वाली वृत्तिरूप वेश्याओं के साथ आदर्श राम नित्य रक्त होते थे ।

मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः ।
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः ॥७।४२।२१॥

मन को मोह लेने वाली स्त्रियों से धर्मातमा राम नित्य रतिक्रीड़ा और वह भी आम सभा में करते थे और राम का यह करना उन्हें परम भूषित करने वाला था। क्या इस प्रकार के वर्णन को सही मानकर राम का यह जीवन ऐतिहासिक मानना है ? कदापि नहीं। इसलिए इस उत्तान और अधार्मिक वर्णन में अवश्य आध्यात्मिकता होनी चाहिए। प्रातःकाल धर्म-कार्य करने पर राम सभा में बैठकर लोगों की शिकायतें सुनते थे और उस पर योग्य न्याय देते थे जैसे कि अन्य राजा करते थे। तत्पश्चात सर्व काल राम सीता के साथ संभोग करने में दिनरात मस्त रहते थे। क्या आदर्श भगवान राम इस प्रकार कामी थे ? हाँ, रामायणकार तो वैसा लिखते हैं। उसका आशय केवल आध्यात्मिक है। देखिये—

पूर्वाह्णे धर्मकार्याणि कृत्वा धर्मेण धर्मवित् ।
शेषं दिवसभागार्धमन्तः पुरगतोऽभवत् ॥७।४२।२६॥

इस प्रकार रात दिन सीता साथ शरीर संभोग करने के कारण सीता को गर्भ रहना अनिवार्य था। सीता अब माता बनी। सीता के उदर में रामगर्भ धारण हुआ। सीता के उदर में अपना गर्भ स्थापित होते हुए देखकर राम बहुत प्रसन्न हुए और वे सीता की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं, सीता को साधु साध्वी कहते हैं।

दृष्ट्वा तु राघवः पत्निं कल्याणेन समन्विताम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥७।४२।२६॥

गर्भवती सीता की इच्छाएँ :

गर्भवती सीता को देखकर उसे कौन-सी इच्छाएँ होती हैं, यह राम पूछते हैं और इस प्रकार उनकी इच्छापूर्ति करने का अभिवचन भी देते हैं।

अर्थात् सीता की इच्छाएँ उसके पेट में जो राम-गर्भ था उसके गुणों को लेकर ही होंगी। सीता इच्छा करती है—

तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव ॥३२॥
गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम्।
फलमूलाशिनां देव पादमूलेषु वर्तितुम् ॥७।४२।३३॥

'हे राघव, पुण्य तपोवन में जाकर गंगातीर पर रहकर ऋषि जैसे फलमूल खाकर रहने की और तापसी जीवन जीने की इच्छा होती है।' सीता अपनी मन की इच्छा राम को बताती है। राम ने गर्भ का गुण जाना और उसी प्रकार होगा, यह आश्वासन सीता को दिया।

एवमुक्तस्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत्।
कथयस्व यथातत्वं सर्वं निश्वशेषतः ॥७।४३।९॥

'हे कल्याणी निश्चिन्त रहो। कल ही तुम उस स्थान पर जाओगी इसमें संशय नहीं है', इस प्रकार भद्र काम करने वाले राघव सीता को कहते हैं। याने बाद में एक भद्र नामक पुरुष आया जिसके कहने से भगवान राम ने सीता का त्याग कर उसे वन में भेजा, यह जो राम पर इलजाम लगाया जाता है वह कितना निरर्थक है, यह स्पष्ट होता है। इस श्लोक में रामायणकार स्वयं भगवान राम को भद्र कहते हैं, यह ध्यान में रहे।

भद्रकथा :

दूसरे दिन सभा में एक भद्र नामक व्यक्ति आता है जो कि राम से कुछ मौज-माखौल की बातें कर राम का मन रंजन करता था। राम उससे पूछते हैं—'पुरवासी मेरे विषय में कौन कौन-सी शुभ अथवा अशुभ बातें कहते हैं? उन सबको यथार्थरूप से पूर्णतः बताओ।' भद्र बोला, "राजन्! सुनिये, पुरवासी लोग चौराहों पर, बाजार में, सड़कों पर तथा वन और उपवन में भी आप के विषय में किस प्रकार शुभ और अशुभ बातें कहते हैं यह मैं बता रहा हूँ।" भद्र बताता है—

शृणु राजन् यथा पौराः कथयन्ति शुभाशुभम्।
चत्व रापणरथ्यासु वनेषूपवनेषु च ॥७।४३।१३॥
दुष्करं कृतवान् रामः समुद्रे सेतुबन्धनम्।
अश्रुतं पूर्वकैः कैश्चिद् देवैरपि सदानवैः ॥७।४३।१४॥

रावणश्च दुराधर्षो हतः सबलवाहनः ।
वानराश्च वशं नीता ऋक्षाश्च सह राक्षसैः ॥७।४३।१५॥
हत्वा च रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघवः ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत् ॥७।४३।१६॥
कीदृशं हृदये तस्य सीता संभोगजं सुखम् ।
अंकमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्घृताम् ॥७।४३।१७॥
लंकामपि पुरा नीतामशोक वनिकां गताम् ।
रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्स्यति ॥७।४३।१८॥
अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति ।
यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते ॥७।४३।१९

श्लोक ॥ ७।४३।९ ॥ में रामायणकार राम को ही भद्र संबोधन कर सीता की गर्भ-इच्छाएँ पूरी करने के लिए उसे वन में तपस्या करने भेजने का मान्य करते हैं। अब श्लोक १३ से लेकर १९ तक रामायणकार एक अन्य राम मित्र, जिसका नाम भी भद्र बताकर उस द्वारा सीता को त्याग कर उसे वन में भेजा जाय, इस प्रकार का उपदेश देते हैं। इसका यह स्पष्ट आशय है कि सीता-वृत्ति को पुनः तपस्या के लिए वन में भेजना रामायणकार का आध्यात्मिक हेतु है। साधारणतः यह समझा जाता है कि एक बाजारू धोबी की आलोचना का राम के मन पर गहरा परिणाम होकर राम ने सीता का त्याग किया और उसे वन में भेजा परन्तु मूल कथानुसार सीता की ही इच्छा वनवास में जाने की थी जिसे राम ने त्वरित पूर्ण की। राम के करने के लिए और भी आश्रय रहे इसलिए रामायणकार ऊपर निर्दिष्ट भद्र-कथा लिखते हैं। प्रजा का कहना था कि रावण के घर पर इतना समय सीता रही इसलिए उसके चारित्र्य की खरी-खोटी करने के पश्चात राम को सीता का स्वीकार करना चाहिए था। परन्तु पौरजन यह भूल गये थे कि सीता की अग्नि-परीक्षा लंका से आते समय ही हो गयी थी। अब बार बार सीता पर सन्देह करना योग्य न था। परन्तु पिता का वचन सत्य करने के लिए पिता की आज्ञा का भी उल्लंघन करने वाले कड़े राम सीता के बारे में सत्य बोलने के लिए तैयार नहीं थे। आशय यह कि सीता को पुनः वनवास करवा कर उसकी पुनः शुद्धि करवाना, यही रामायणकार चाहते हैं। इसलिए किसी एक मामूली भद्र की बात को प्रमुखत्व देकर रामायणकार राम को सीता का पुनः त्याग कर उसे वन में भेजने की कथा लिखते हैं।

सीता का पुनः वनवास :

भद्र की बात सुनकर राजा राम ने विवेक भ्राता लक्ष्मण को बुलाया और सीता की गर्भ-इच्छा के अनुसार उसे दूर वन में पहुँचाने के लिए कहा। लक्ष्मण ने सीता भाभी को भागीरथी के ज्ञान-किनारे तक पहुँचाया और इतना विवेकपूर्ण लक्ष्मण परन्तु अपनी पवित्र भाभी को अकेली उस घोर वन में छोड़ते समय उसकी आँखों में आँसु आये। अपनी माता समान भाभी का आखिरी दर्शन लेकर लक्ष्मण अयोध्या वापस लौटते हैं। उधर गर्भवती सीता उस घोर अरण्य में पड़ते झड़ते जाती है और रोती है। इतने में उस बाजू वाल्मीकिजी टहलने आते हैं और वे सीता का रूदन सुनकर उसे अपने आश्रम में ले जाते हैं। यथा समय सीता को दो जुड़वे पुत्र होते हैं, एक का नाम लव और दूसरे का नाम कुश रखा गया। लव याने एक क्षण और कुश याने निर्धार अथवा स्थिर बुद्धि जिस द्वारा साधक राम को क्षण में समाधि लग सकती है। अब रामगर्भ-वृत्ति को क्षण में समाधि लग जाती है जो कि चौदह साल वन में तपस्या कर भी नहीं लगती थी। यह कुशलव जन्म कथा द्वारा वाल्मीकिजी को इस कथा द्वारा सुझाना है।

शम्बुक वध:

राम-जीवन को ऐतिहासिक मानने पर राम जीवन पर अक्षम्य कलंक लगाने वाली यह कथा है। परन्तु अन्य रामायण-कथा जैसे इस कथा में भी पूर्ण आध्यात्मिक दिव्य आशय है। फर्क इतना ही है कि इस शूद्र शम्बुक को कोई बाहरी शूद्र न समझ कर साधक के चित्र की शूद्र शम्बुक-अवस्था माननी चाहिए जिसकी हत्या जिसे राम बनना है उस साधक को करनी चाहिए। कथा इस प्रकार लिखी है। सीता को वन में भेजने के कारण अब राम को अच्छा नहीं लगता। दिन-रात राम सीता-वृत्ति बिना बेचैन थे। किसी प्रकार वे अपना पिंड-राज्य चलाते थे परन्तु मन में बेचैनी थी। बिना साधनानुभव साधक कैसे रह सकता है? बगैर सीता राम कैसे जी सकते हैं? एक दिन एक अनुचित बात घटित हुई। एक दिन रामसभा में एक वृद्ध ब्राह्मण अपने हाथों में अपना अल्पवयीन पुत्र लेकर आया। परन्तु पुत्र मृत था। उन दिनों में मानव इतने अल्प समय में नहीं मरता था कारण यह त्रेता-युग था जिसकी मानवीय औसत आयु सौ साल की थी। ब्राह्मण पुत्र अल्पायु मर गया इसका संपूर्ण दोष वह वृद्ध ब्राह्मण राजा राम पर लगाये थे। ब्राह्मण-पुत्र अल्पायु मर गया इसका कारण यह माना जाता था कि राम के राज्य

में कहीं तो भी पापाचरण हो रहा है जिस कारण वह ब्राह्मण-पुत्र अल्पायु मर गया। उस ब्राह्मण-पुत्र को पुनः जीवित करने का दायित्व राजा राम पर है, यह कहकर वह वृद्ध ब्राह्मण उस मृत पुत्र को सभा में रखकर सभा-त्याग कर चला गया।

अब क्या किया जाय ? पहले राम सीता के वियोग के कारण बहुत दुःखी थे अब यह दूसरी आपत्ति आई। राम ने अपने गुरु वसिष्ठ को सभा में बुलवाया। वसिष्ठजी आकर देखते हैं और ध्यान द्वारा ज्ञान पाते हैं तो उन्हें वृद्ध ब्राह्मण के कथन में तथ्य मालूम हुआ। उस अल्पायु ब्राह्मण-पुत्र की मृत्यु का दोष राजाराम पर ही था कारण राजा इस नाते अपने राज्य में जो भी पापाचरण होता है और उस पापाचरण का जो प्राकृतिक परिणाम होता है उसका पूर्ण दायित्व राजा रामपर इस नाते से आता था। ऐतिहासिक ढंग से यह कथा निरर्थक एवं असंभव मालूम होती है। कारण इतने विशाल राज्य में कहीं भी कुछ हो और उसका दायित्व राजा पर बेकार का लगाया जाय, यह न्याय नहीं है और न तो किसी राजा के लिए संभव है। कोई भी पाप करे और राजा उसके उत्तरदायी कैसे बने ? परन्तु आध्यात्मिक राज की नीति वैसी ही है। इस आध्यात्मिक राज्य में याने साधक के पिंड रूप राज्य में कहीं पाप किया जाता है तो वह जीवात्मा रूप राम राजा को साक्षी रखकर किया जाता है। तो क्या ऐसे पाप का धनी जीवात्मा राजा नहीं है ? वसिष्ठजी ने पिंडराज्य में घटित पाप बराबर खोज लिया और उस पापी-जन को मारने का राम को उपदेश किया।

सुदूर शैवल पर्वत के आंचल में शम्बुक नामक एक शूद्र तपस्या करता था। उन दिनों शूद्र को तपस्या करना मना था। शूद्र केवल उच्च वर्णों की सेवा करे, बस उसके लिए यही धर्म था। परन्तु यह शम्बुक शूद्र बिना किसी से पूछे शैवल पर्वत पर तपस्या कर रहा था और वह भी ऊपर पांव और नीचे सिर कर। यह करनी रूढ कर्म के बिलकुल विपरीत थी। तो क्या आज के आसन्न वर्गों में जो ऊपर पांव और नीचे सिर कर विपरीत करनी अथवा शिर्षासन किया जाता है वह इसी प्रकार विपरीत है ? हाँ, कथानुसार वैसा ही कुछ है। परन्तु सुदूर स्थान पर एक शूद्र विपरीत करनी करे और उसके पाप से अयोध्या में एक ब्राह्मण-पुत्र अल्पायु कैसे मर सकता है ? शम्बुक के पापाचरण से ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु को कैसे जोड़ा जाय ? ऐतिहासिक ढंग से शम्बुक के विपरीत पापाचरण का सम्बन्ध ब्राह्मण-पुत्र के अल्पायु मरने से कुछ भी नहीं है। परन्तु आध्यात्मिक राज्य में शूद्र के विपरीत पापाचरण

से उसी राज्य के ब्राह्मण-पुत्र का अल्पायु-मरण अवश्य होगा। शूद्र और ब्राह्मण यह शब्द जातिवाचक न मानकर साधक के अन्तःकरण की वृत्तिवाचक मानने से यह प्रश्न छूट जायेगा।

साधक के जीवन में शूद्र-वृत्तियाँ नष्ट होती हैं तब ही उसमें सच्ची ब्रह्म-वृत्ति बढ़ सकती है। और यह ब्रह्म-वृत्ति यदि अल्पायु मर जाय तो इसका स्पष्ट कारण यह है कि उस साधक के पिंड-राज्य में कहीं तो भी शूद्र-वृत्ति बढ़ रही है और अपना स्थान पक्का करने के लिए तपस्या कर रही है। बस यही शूद्र शम्बुक की विपरीत तपस्या से अयोध्या के अल्पायु ब्रह्मण-पुत्र का मरना था। शूद्र-वृत्ति पनपने से अथवा तपस्या करने से साधक के पिंड-राज्य में स्थित ब्रह्म-वृत्ति अवश्य अल्पायु मरेगी। यही गुरु वसिष्ठ ने अन्तर्ज्ञान से जाना था। यह शूद्र था शम्बुक जो कि साधक की निजी शूद्र-वृत्ति है। शम्बुक शब्द दो उपशब्दों से बना है, एक 'शाम' याने कल्याणप्रद और दूसरा 'उक' याने उल्टी करना, दिखाना। इसलिए शम्बुक याने जो भी कल्याणकारक कर्म साधक करता है उसे ढोल पीटकर जनता के सन्मुख लाने की दिखावटी वृत्ति साधक की ब्रह्म-वृत्ति के लिए मारक है। साधना में सब कुछ करना परन्तु किसी को दिखाना नहीं चाहिए। जो साधक थोड़ा-सा कुछ कर्म कर उसे जनता को दिखाने की चेष्टा करता है उसकी उस नीच वृत्ति को रामायणकार शूद्र शम्बुक कहते हैं। इस प्रकार साधना-क्षेत्र में विपरीत करनी कर साधक की शूद्र शम्बुक-वृत्ति तपस्या करने से उसी साधना-राज्य में रहने वाले अन्य ब्रह्मवृत्ति पर उसका बुरा परिणाम होकर वह ब्रह्म-वृत्ति अल्पायु मारी जाय तो आश्चर्य ही क्या है?

इसलिए जीवात्मा राजा राम अपने आध्यात्मिक राज्य का सम्हाल ठीक न कर सके, यह अपनी गलती मान्य कर सुदूर शैवल पर्वत पर जाते हैं और वहाँ पर ऊपर पाँव और नीचे सिर कर तपस्या करने वाले शूद्र शम्बुक का गला अपने आध्यात्मिक खड्ग से नीचे उतारते हैं। इधर शूद्र शम्बुक मारा जाता है और उधर वृत्ति-रूप अयोध्या नगरी में मृत अल्पायु ब्रह्म-पुत्र रूप वृत्ति अपने आप जी उठती है। इस प्रकार राम-राज्य के नियम और नीति थी। इस आध्यात्मिक राम-राज्य को जो जानेगा उसे अपनी शूद्र शम्बुक वृत्ति का गला काटना ही पड़ेगा अन्यथा उसके राज्य का ब्राह्मण-पुत्र अल्पायु मरेगा। इस विचित्र कथा द्वारा हम इतना ही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि रामायण के समय ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र यह चार वर्ण थे और शूद्र वर्णों के लोगों को उच्च वर्ण के लोगों जैसी तपस्या नहीं करनी चाहिए इस प्रकार रूढ

नियम था। परन्तु इस कथा को ऐतिहासिक मानने से भगवान राम, जो कि सब प्राणीमात्रों को समान मानते हैं और पिता जैसे हैं, उन पर एक गरीब शूद्र की निष्कारण हत्या करने का पाप लग सकता है।

शम्बुक वध कथा आध्यात्मिक वृत्तिरूपकात्मक कथा है न कि ऐतिहासिक। शूद्र शम्बुक याने साधक की साधना करने के पश्चात उसने जो भी किया हो वह इतरजनों के सामने बताने की शूद्र-वृत्ति है जिसे कि रामायणकार शूद्र शम्बुक कहते हैं। अब शम्बुक का ऊपर पाँव और नीचे सिर करना योग्य क्यों न था? उसका खास योग साधना का अनुभवजन्य कारण है। समाधि-अवस्था में जाने वाले उच्च योगी के शरीर की अवस्था ऊपर सिर और नीचे पाँवों की पालठी इस प्रकार रहती है। परन्तु नीचे सिर और ऊपर पाँव रखने से कुंडलिनी उर्ध्वगामी न बनकर अधोगामी बनती है और योगी समाधि-अवस्था में नहीं जा सकता है। इसलिए जिसे समाधि-अवस्था में जाकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना है उसे विपरीत करनी अथवा सिर्षासन नहीं करना चाहिए यह और एक साधन रहस्य इस कथा द्वारा रामायणकार साधकों को सुझाना चाहते हैं। ब्रह्मज्ञान पाने के उत्सुक योगी पद्मासन लगाकर ऊपर सिर और नीचे पाँव करे न कि ऊपर पाँव और नीचे सिर! इस कथा द्वारा रामायणकार कितनी ऊँचे कोटि के अनुभवी, योग-साधक थे यह पता लगता है। परन्तु कथाओं को ठीक से समझा जाय।

शम्बुक कथा हमें यह बताती है कि हम साधना अवश्य करें परन्तु उसका ढोल पीटकर कीर्ति की लालसा न करें, और यदि समाधि-सुख पाना है तो पद्मासन लगाकर गहरा ध्यान लगायें, ऊपर पाँव और नीचे सिर कर समाधि-अवस्था के विपरीत करनी न करें, अन्यथा साधक में स्थित शूद्र शम्बुक दीर्घ-जीवी बनेगा और ब्राह्मण बालक अल्पायु मरेगा। जिसे राम बनना है उसे अपने अन्दर के शूद्र शम्बुक का गला काटना चाहिए जिससे कि रामराज्य का अल्पायु ब्राह्मण बालक जीवित हो उठेगा।

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था

शम्बुक-वध की कथा ध्यान में आने के लिए हमें वैदिक परम्परा में प्राप्त चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था को ठीक से समझना पड़ेगा परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि रामायण महाभारत जैसे चातुर्वर्ण्य का भी आशय हमारे ध्यान में आज तक नहीं आया वैदिक परम्परा में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था जन्मनिहाय और

जातिनिहाय न होकर उसके पीछे कई गुण और कर्म का एक वृहत शास्त्र है। गीता स्पष्ट बताती है, 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टयं गुणकर्मविभागशः' यहाँ भगवान याने जीवात्मा, जो कि हर प्राणीमात्र में हैं, मानने से आशय स्पष्ट हो जायेगा। 'मया' याने भगवान और भगवान याने जीवात्मा है। आत्मा-अवस्था पर गुण और कर्म का परिणाम होकर जीवात्मा इस प्रकार के गुण और कर्म की बनती है जो अपने गुण-कर्म के अनुसार अपना शरीररूप उपकरण इसी प्रकार बनाता है। हर एक शरीर के चारों ओर उसके गुण और कर्म के अनुसार एक तेजोवलय रहता है जिसे अंग्रेजी में 'aura' कहते हैं। इस प्रकाशवलय को अपने अपने गुण और कर्म के अनुसार एक प्रकार का निश्चित वर्ण अथवा रंग रहता है। जैसे गुण और कर्म उस प्रकार यह प्रकाशवलय अपना वर्ण या रंग फेंकेगा। इसी वर्ण पटल द्वारा व्यक्ति का वर्ण समझा जाता था। गुण और कर्म के अनुसार व्यक्तिनिहाय कई वर्ण रह सकते हैं परन्तु सुलभता के लिए शास्त्रकारों ने केवल चार प्रकार के वर्णवलय माने हैं और उन वर्णवलय के अनुसार चातुर्वर्ण्य समाज-व्यवस्था मानी है।

परन्तु यह चातुर्वर्ण्य व्यवस्था समाज के व्यावहारिक उपयोग के लिए नहीं थी जिस प्रकार आज वह मानी जाती है। यह चातुर्वर्ण्य व्यवस्था केवल आध्यात्मिक साधना के लिए एक आवश्यक पगडंडी इस नाते मानी जाती थी। चातुर्वर्ण्य द्वारा व्यक्ति की आध्यात्मिक साधना निश्चित की जाती थी जैसे कि विद्यार्थियों की ग्रहण-शक्ति और बुद्धि के अनुसार उसे कला, वाणिज्य, विज्ञान एवं तांत्रिक महाविद्यालय में प्रवेश दिया जाता है। विद्यार्थियों में भेद नहीं है परन्तु उनके गुण कर्मानुसार उन्हें विभिन्न महाविद्यालयों में प्रवेश नाकारा जाता है। उसी प्रकार चातुर्वर्ण्य व्यवस्था साधना-क्षेत्र के लिए थी, न कि सम्पूर्ण मानवीय व्यवहार के लिए। आज चातुर्वर्ण्य की सर्वत्र गलत धारणा हो गयी है। चातुर्वर्ण्य जन्मनिहाय और जाति निहाय माना जाता है जो कि अशास्त्रीय है। ब्राह्मण कुटुम्ब में जन्म लेने वाला बालक जन्मतः अध्यात्मिक क्षेत्र में ब्राह्मण माना जाता है जो कि अपने गुण कर्मानुसार क्षत्रीय, वैश्य अथवा शूद्र भी रह सकता है और तुकाराम एवं कबीर जैसे परम साधक, जन्मतः यद्यपि शूद्र अथवा मुस्लिम हैं, तो भी वे आध्यात्मिक साधना धर्म को ब्राह्मण माने जाने चाहिए। मध्य काल में यही गलती हुई जिस कारण वैदिक समाज दुर्बल और असंगठित बना। परिणाम यह था कि भारत सात सौ साल परायों का गुलाम बना और भारत में आज करोड़ों की तादात में परधर्मी बनें।

रामायण और महाभारत में अनेक सुयोग्य व्यक्तियों को ब्राह्मणत्व प्रदान किया गया था इस प्रकार के कई उदाहरण हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो स्वयं वाल्मीकि और व्यास शूद्र वर्ण से ब्राह्मण वर्ण में सन्मानित किये गये थे। उपनिषदों में भी इस प्रकार के कई उदाहरण मिलते हैं जिसमें निम्न वर्ण के लोग उच्च वर्ण में समाविष्ट किये गये थे। इतना भी नहीं परन्तु बाहर के शक, हूण, शवर, यवन, ग्रीक आदि जनों को चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में ब्रह्मणत्व दिया गया था जैसे कि बंगाल और उड़ीसा में ग्रीक ब्राह्मण बने, बिहार और उत्तराखंड में यवन भूमिहार ब्राह्मण बने, उत्तर प्रदेश के शक हूण सरजू पारीय और कान्य कुब्ज ब्राह्मण बने, महाराष्ट्र और मल्यालम् में यहूदी जन चित्तपावन और अन्य ब्राह्मण बने। वैदिक परम्परा की यह विशाल सर्व समावेशकता मध्य काल में खण्डित हुई और परिणाम यह निकला कि तदन्तर काल में भारत में आये हुए पराये जन अपना स्वतन्त्र परायापन कायम रख सके और समय पाकर अपना आक्रामक राज्य बना सके। आज तो भारत में करोड़ों की तादाद में वैदिक जन मुसलमान और ईसाई बनकर अपने मातृ समाज को खण्डित कर रहे हैं, दुर्बल बना रहे हैं और पराई संस्कृति के प्रदेश बना रहे हैं। इसका मूल कारण चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का पूर्ण अज्ञान है जिसे कि हमें पूर्णरूप से ठीक करना पड़ेगा। वैसा देखा जाय तो आज चातुर्वर्ण्य व्यवस्था न मानने से समाज का कोई नुकसान नहीं होने वाला है। उलटे उसको न मानने से एक भ्रमात्मक अवस्था अपने आप शान्त बन सकती है। परन्तु एक विज्ञान और दिव्य शास्त्र इस नाते से चातुर्वर्ण्य का अभ्यास एवं निरीक्षण करना बेकार न होगा।

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था विज्ञान :

ठीक से देखा जाय तो चातुर्वर्ण्य का मूल वेदों में भी दीख पड़ता है यद्यपि वेदकाल में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था आज और मध्य काल जैसी जाति निहाय नहीं बनी थी। अपने-अपने प्रकाश वर्ण के अनुसार व्यक्ति अध्यात्म में अपनी धारणा अथवा धर्म समझ कर उस अनुसार सुयोग्य शास्त्रीय साधना की शीघ्र प्रगति कर आत्म-ज्ञान पाये इसलिए चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था और शास्त्र वैदिक ऋषि मुनियों ने संसार के सन्मुख प्रस्तुत किया था। मानवीय जीवन के अन्य व्यवहार में इस चातुर्वर्ण्य का कोई प्रभाव अथवा अनुशासन नहीं था। उदाहरण के तौर पर पीछे बताये अनुसार एक ही

कुटुम्ब के चार सगे भाई कम अधिक बुद्धिमत्ता और पुरुषार्थ के कारण विज्ञान, कला, वाणिज्य, अभियान्त्रिकी इत्यादि जीवन-क्षेत्र में अपनी रुचि के अनुसार ज्ञान प्राप्त कर धन और मान्यता प्राप्त करते हैं। उनके धन और मान्यता में उनके पुरुषार्थ के कारण अन्तर पड़ सकता है परन्तु घर में उनके मान-सम्मान तथा व्यवस्था में कोई फर्क नहीं पड़ता। सब उस घर के समान भाई माने जाते हैं और अपने घराने की शान बढ़ाने के लिए सब भाई चाहे वह गरीब हो या धनी, बुद्धिमान हो या सामान्य बुद्धिवाला, कर्तृत्ववान हो या सामान्य क्षमता का जैसे जिद से परिश्रम करते हैं उसी प्रकार चातुर्वर्ण्य की अवस्था वैदिक समाज की रामायण महाभारत काल तक थी। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का समाज पर अनुचित परिणाम देकखर जैन और बौद्ध मत सम्प्रदाय मूल वैदिक परम्परा को पूर्ववत् सम्हालने के लिए कार्यरत रहे। आज वे भी एक भिन्न सम्प्रदाय अथवा धर्म बनने में धन्यता मानते हैं।

परन्तु चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था है न कि जन्मजात प्राप्त दैवगति। जातियों का उद्‌भव भी चातुर्वर्ण्य के आध्यात्मिक वर्ण-व्यवस्था में था न कि जन्मगति के अनुसार। जाति यह शब्द ज्ञाति इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। जो समाज इस प्रकार अपना वर्ण ज्ञात करता है उप वर्णसमाज को ज्ञानी कहा करते थे। ज्ञानी वह जो अपना वर्ण और उस अनुसार आध्यामिक साधना धर्म जानता है। ज्ञाति का अपभ्रंश जाति बना और आज तो जाति-जाति में जो झगड़ा, वैर और हिंसा चल रही है जिसका अध्यात्म नष्ट होकर अध्यात्म के नाम पर मानवता की क्रूर उपेक्षा हो रही है। इस क्रूर और अशास्त्रीय जाति-रचना को मूलतः नष्ट करना ही आज आवश्यक लगता है।

ब्राह्मण :

'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः' याने जो ब्रह्म जानता है उसे ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण बनने के लिए ब्रह्म जानना आवश्यक है। जन्मनिहाय कोई भी ब्राह्मण नहीं बन सकता। जन्मतः हम सारे शूद्र हैं परन्तु उत्तम संस्कारों-द्वारा हम ब्राह्मण बन सकते हैं। शास्त्र कहते हैं, 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्चते।' ब्राह्मण शब्द की उत्पत्ति इस प्रकार है। जो व्यक्ति ब्राह्मण बना है उसके इन्द्रिय और अतीन्द्रिय गुण और स्वभाव क्या रहते हैं, यह देखना आवश्यक है। जो ब्राह्मण बनता है उसके लिए यह आवश्यक है कि उसके

दिव्य वर्णपटल का वर्ण या रंग शुक्ल या चन्द्रमा जैसे प्रकाश वाला रहे। इसलिए ऐसे दिव्य शुक्ल वर्णी ब्राह्मणों को उत्तर भारत में आज भी शुक्ल कहते हैं। परन्तु यह भी हो सकता है कि जो-जो भी आज जाति निहाय ब्राह्मण माने जाते हैं उनके इस दिव्य वर्णपटल का वर्ण क्षत्रीय. जैसे ताम्र वैश्य जैसा पीत अथवा शूद्र जैसा धूसर घूम्र हो। फिर ऐसे कथित जन्म-निहाय ब्राह्मण चातुर्वर्ण्य को ब्राह्मण नहीं माने जायेंगे। उनको उनके वर्ण-पटल के अनुसार क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र अथवा चाण्डाल भी माना जायेगा जो कि उनका वर्ण है।

इस प्रकार शुद्ध आचरण और विचार वाले अब्राह्मण सन्तजनों के इस दिव्य वर्णवलय का वर्ण शुभ्र शुक्ल अथवा श्वेत हो सकता है और इसी कारण, यद्यपि वे आज के अशास्त्रीय जाति-व्यवस्थानुसार अब्राह्मण बने हैं वे चातुर्वर्ण्य के शास्त्रीय आधार पर ब्राह्मण बन सकते हैं। नहीं वे ही ब्राह्मण हैं जिनका वर्णपटल उनके शुद्ध गुण कर्मोंद्वारा शुभ्र शुक्ल है जैसे कि वैश्य तुकाराम, कुम्हार गोरा, सुवर्णकार नामदेव, हीन जाति की जना बाई, मुसलमान कबीर क्षत्रीय मीराबाई और नानकजी सच्चे ब्राह्मण थे। ब्राह्मणत्व के लिए वर्णपटल की शुद्धता आवश्यक है, न कि जातिनिहाय जन्म-व्यवस्था उस समय हर किसी व्यक्ति का इस प्रकार वर्णपटल देखकर उनकी वर्ण व्यवस्था बताने वाले ऋषि योगी थे। आज उस प्रकार वर्णपटल देखने वाले योगी नहीं रहे इसलिए ब्राह्मणत्व एक ही जाति का एकाधिकार बन गया है जो कि शास्त्र-दृष्टि से उनका नहीं है। आज के विद्यमान ब्राह्मण जाति के ९९ प्रतिशत लोग उनके गुणकर्मों के कारण और वर्णपटलों के कारण क्षत्रीय, वैश्य, और शूद्र जाति में फेंके जाने चाहिए इतना आज का ब्राह्मण अधःपतित बना है। यही कारण है कि दक्षिण में आज केवल अपने जन्म के कारण जो कथित ब्राह्मण बने हैं परन्तु जिनका व्यवहार ब्राह्मणत्व को शोभा नहीं देता ऐसे पाखंडी ब्राह्मण के खिलाफ बहुत तंग वातावरण है। इतरजन ब्राह्मणत्व के खिलाफ नहीं हैं, उनका विरोध पाखंडियों से है। इसलिए यदि ब्राह्मणत्व रखना है तो ब्राह्मण वर्ण के द्वार सब अन्य जाति और धर्म के लोगों के लिए खुले होने चाहिए। ब्राह्मणत्व एक जाति का एकाधिकार नहीं है। जितने भी सदआचरण करने वाले व्यक्ति हैं उच्च गुण कर्म द्वारा अपना जीवन स्तर उच्च बनाये हैं उन्हें ब्राह्मणत्व प्रदान किया जाना चाहिये। वे ही ब्राह्मण हैं जो इस प्रकार उत्तम गुण कर्म वाले हैं।

आज समाज में बड़ी धांधली और अनुशासनहीनता आ गई है। सब कोई अपने को उच्च मानता है परन्तु उस प्रकार की उच्चता के लिए वह अपने संस्कार, गुण और व्यवहार उच्च बनाने के लिए तत्पर नहीं है। इस प्रकार चलता रहे तो समाज शीघ्र अधोगति की चरम सीमा पायेगा। इसे बनाने के लिए समाज के सम्मुख ऐसा एक आदर्श जीवन रहना आवश्यक है जिसकी ओर देखकर समाज के सब लोग उस आदर्श के अनुसार अपना जीवन यापन करें। और वह आदर्श है ब्राह्मणत्व जो कि जातिनिहाय नहीं वरन् उत्तम आचार-विचार पर निर्भर है। केवल हिन्दू ही नहीं वरन् ईसाई, मुसलमान, बौद्ध और अन्य पंथीय इस प्रकार उनके सामने ब्राणह्मत्व का आदर्श रख ब्राह्मण बन सकते हैं। वैदिक परम्परा का आदर्श ब्राह्मणत्व है जो कि जातिनिहाय नहीं वरन व्यक्तिगत गुणकर्म के आधार पर पाया जाता है। वैदिक याने ज्ञानमय परम्परा में हर कोई ब्राह्मण बन सकता है। जो कि उसका ध्येय है। इसी प्रकार प्राचीन वैदिक काल में वाल्मीकि, व्यास एवं अन्यान्य ऋषि मुनि ब्राह्मण बने थे जो कि आज भी बन सकते हैं। ब्राह्मणत्व एक आदर्श है न कि जाति-व्यवस्था ! ब्राह्मणत्व के दरवाजे सबों के लिए खुले रहे और आज खुले हैं।

सच्चे ब्राह्मण का जीवन कैसा रहे इस बारे में गीता बताती है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥गीता अध्याय १८, श्लोक ४२॥

शम=अन्तःकरण का शुद्ध निग्रह, दम=इन्द्रियों पर निग्रह, शौचम्=अन्तर वाह्य की शुचिता, तपः=आध्यात्म के लिए सतत कष्ट लेने की तैयारी, क्षान्तिः=क्षमा भाव और चित्त की शान्तता, आर्जवम्=सरल निष्कपट स्वभाव, आस्तिक्यम्=आस्तिक बुद्धि जो कि सत्य को मानती है, ज्ञानम्=सत्य अवस्था की प्रत्यक्ष अनुभूति, च=और, विज्ञानम्=संसार के विभिन्न अवस्था भेद का जड़ ज्ञान और उसका अभ्यास, एव=इस प्रकार, ब्रह्मकर्म स्वभावजम्=ब्राह्मण के स्वभाविक कर्म और स्वभाव है। इस प्रकार जिसका गुणकर्म और स्वभाव हो वहीं ब्रह्म जानने वाला ब्राह्मण है जो कि किसी भी सभ्य और बुद्धिमान समाज का ध्येय है। ब्राह्मण सब समय ब्रह्मकर्म में ही रत रहेगा जिस कारण उसे निर्वाह के साधन के पीछे पड़ने का कारण नहीं। समाज के और अंग ऐसे ब्राह्मणों का प्रपंच ठीक ढंग से चले इसलिए ब्राह्मणों को अपने उत्पादन का कुछ हिस्सा देने की अन्य समाज घटकों की रीत थी और वह भी श्रद्धेय व्यक्ति के पांव पर सिर रखकर ! ब्राह्मण भी उसी प्रकार

वर्तन करते थे अनिकेत, असंग्रही और अनिच्छा वाले ! समाज के आदर्श एवं स्वास्थ्य के लिए इस प्रकार के ब्रह्म समाज की आज भी आवश्यकता है फिर वह ब्रह्म समाज किसी भी जाति अथवा धर्मीय व्यक्ति द्वारा बनाया जाये।

मानव समाज है तब तक चातुर्वर्ण्य अवश्यमेव रहेगा फिर वह हम मानें या न मानें। अन्य वर्णों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि आदर्श इस हिसाब से ब्रह्मसमाज की आवश्यकता है, परन्तु आज के ब्राह्मण समाज द्वारा इस प्रकार की पूर्ति करने वाले बहुत कम व्यक्ति मिलेंगे यह एक सत्य है।

क्षत्रप अथवा क्षत्रीय :

जिनके दिव्य प्रकाश वलय का वर्ण ताम्र रहता है उन्हें क्षत्रीय अथवा क्षत्रय कहा जाता है। इस प्रकार ताम्र वलयांकित वर्ण वाले जन अपने प्राप्त इच्छा, सत्ता अथवा देश के लिए सदा दक्ष रहते हैं और समय पर जान देना और लेना अपना धर्म मानते हैं। श्रद्धेय व्यक्ति अथवा उद्देश्य के लिए वे सदा त्याग के लिए तैयार रहते हैं। सब समाज की रक्षा का भार ऐसे त्यागी पराक्रमी और धर्म-सेवी पर रहता है। अन्य देशों में क्षत्रीय अथवा सैनिक दृष्टि से बनते हैं परन्तु वैदिक परम्परा में क्षत्रीय घरबार का त्याग कर और भूखे रहकर भी अपने श्रद्धेय व्यक्ति, धर्म और देश के लिए लड़े हैं और लड़ते रहेंगे। संसार के अन्य देशों में ईसाई धर्म की और उसके बाद मुसलमान धर्म की लहरें आईं, अत्याचार हुए, बर्बादी हुई और महिलाएँ भ्रष्ट की गईं। देश और समाज को इस बर्बादी और अत्याचार से रोकने के लिए वे सारे देश एक के बाद एक ईसाई और मुस्लिम बनते गये परन्तु भारत ऐसा एक महान देश है जो कि आज भी अपनी वैदिक गरिमा और आदर्शों को लेकर गर्व से जीवित है। इसका सारा श्रेय वैदिक परम्परा के क्षत्रीय वर्ण को है। यह त्यागी, पराक्रमी और धर्म प्रवण क्षत्रीय वर्ण आज भी अपनी गरिमा से भारत में मौजूद है। यह पुरुषार्थी समाज भारत में है तब तक संसार की कोई भी शक्ति भारत का रूप नहीं बिगड़ सकती। वैदिक परम्परा का पितृवत् पालन इस क्षत्रीय वर्ण ने किया है और करते रहेगा।

चन्द्रगुप्त, हर्षवर्धन, अशोक, विक्रमादित्य, चालुक्य, राष्ट्रकूट, प्रतिहार, रावल, राणासंग, राणा प्रताप, राजपूत, शिवाजी महाराज और मावला,

सिख, झांसी की रानी, तात्याटोपे ये सब इस वीर परम्परा के चिरजीवि तारे हैं जिनका प्रकाश इस धरती को सदा मिलता रहेगा ! क्षत्रीय वर्ण और परम्परा की भारत को सदा आवश्यकता है कारण वैदिक परम्परा के अमोल एवं शास्त्रीय सिद्धान्त दुनिया के सामने आने के लिए उनकी रक्षा प्रथम भारत में होना परम आवश्यक है। यह परम्परा पालन-कार्य क्षत्रीय वर्ण-समाज ही कर सकता है जिसके कारण सर्व वर्ण-समाज का सुचारू रूप से पालन और रक्षा हो सकती है।

वैश्य :

'विश' याने प्रजा और 'वैश्य' याने प्रजा की वृद्धि करने वाला ! वैश्य कौन-सी प्रजा की वृद्धि कर सकते हैं? अपने में स्थित अच्छी वृत्तियाँ ! शरीर स्थित आत्मा यह शरीर का राजा है और उस शरीर द्वारा सम्पादित सब वृत्तियाँ उस आत्मा की प्रजा हैं। वैश्य इस प्रजा की भली भाँति रक्षा कर उनका वर्धन करता है। वैश्य वास्तव में वृत्ति-व्यापार करें परन्तु इस प्रकार वृत्ति-व्यापार करने के बजाय आज वैश्य अन्य वृत्ति याने धन का सम्पादन कर मूल वृत्ति की ओर दुर्लक्ष करते हैं। अच्छी वृत्तियों का वर्धन कर उनका व्यापार करने वाले वैश्यों के दिव्य वर्णपटल का वर्ण पीत याने पीला रहता है। वैदिक वैश्य समाज ने भारत की वैदिक परम्परा, कला, संगीत, शास्त्र, गणित, खेती का शास्त्र, इत्यादि गरिमा की बातें सारे संसार को प्राचीन समय से मुक्त मन से दी और वह प्रेम के द्वारा न कि तलवार और अत्याचार द्वारा !

केवल व्यापार करना और अपना व्यवसाय सम्हालना इतना ही वैश्य धर्म नहीं है परन्तु व्यापार के साथ अच्छी परम्परा, कला, शास्त्र आदि मानवीय जीवन के लिए आवश्यक गुणों की भी लेन देन करना वैदिक वैश्यों का काम कर रहा है और वह सांस्कृतिक सभ्यता आज तक वैश्यों ने अच्छी तरह सम्हाली। आज के भारतीय वैश्य सिवाय धनोत्पादन और व्यक्तिगत लाभ के अन्य कोई मानवीय विचार और आचार का आदान प्रदान करते हुए दिखाई नहीं देते हैं। यह उनका स्वविस्मरण एवं स्वधर्महनन है, यह वे ध्यान में रखें। वैश्य ज्ञानमय वैदिक परम्परा के प्रहरी हैं जो काम उन्होंने गत सहस्त्रों वर्षों से संसार के कोने-कोने में जाकर किया है। जापान, चीन, मंगोलिया, साइबेरिया, मलाया, सिंगापुर, यवबाली द्विप समूह, आस्ट्रेलिया, अफ्रिका, यूरप, मुस्लिम देश, दक्षिण और उत्तर अमरिका के प्राचीन देश इन

सबों में वैदिक परम्परा की ध्वजा फहराने वाले प्राचीन वैदिक वैश्य थे जिनकी गरिमा आज भी उन देशों के प्राचीन इतिहास द्वारा और उत्खनन वस्तु द्वारा देखी जाती है। इस प्रकार का सांस्कृतिक व्यापार जो भी करते हैं वे सब वैदिक वैश्य हैं।

यही वैश्यों का पीत वर्ण लेकर बौद्ध संन्यासी सारे ज्ञान संसार में घूमे और संसार को भगवान बुद्ध का महान शान्ति सन्देश देते रहे। कल तक संसार के बहुत सारे देश बौद्ध मत के थे। बौद्ध जन वैदिक परम्परा के सच्चे वैश्य माने जाने चाहिए कारण वे उस समय वृत्तियों की लेन देन करते थे। आज का बौद्ध समाज आक्रामक बन अपनी गरिमा को मिटाना चाहता है। जो काम प्रेम से बनता है वह आक्रमण द्वारा नहीं बनता वरन् इस प्रकार के आक्रमण से शत्रु उत्पन्न होकर समाज में अबुद्ध मानव पैदा हो सकते। जो बुद्धि और प्रेम का उपयोग नहीं करता वह अबुद्ध अथवा बुत्फरोश है इसमें संशय नहीं। सच्चे धर्म का प्रचार वास्तविक वैश्य ही कर सकते हैं कारण धर्म की परिभाषा शास्त्रों ने बताई है—

'यतोभ्युदय मिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः'

याने जितना अभ्युदय अथवा सर्व प्रकार का उत्कर्ष व्यक्ति कर सके उतना करे परन्तु उस सबका निःश्रेयस याने समाज के लिए त्याग कर मन में कोई अहंकार अथवा मोह नहीं रखना चाहिए। इस प्रकार का अभ्युदय अथवा उत्कर्ष व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक जगत में करना चाहिए। समाज की व्यावहारिक और आध्यात्मिक धनसंपदा बढ़ाना वैश्यों का काम है जो कि उन्होंने प्राचीन काल से किया है और साथ ही साथ समाज-सेवा भी ! आज जो जो वैश्य वर्ण का ग्रहण करेगा उसे इस प्रकार वर्तन करना पड़ेगा अन्यथा वह आपकाजी चाण्डाल माना जायेगा। समाज के दुर्बल घटकों की आर्थिक रक्षा करना वैश्यों का धर्म है।

शूद्र :

'श' याने कल्याणप्रद आचार-विचार एवं 'उद्र' याने इस प्रकार के आचार विचारों का प्रदर्शन अथवा उद्रेक करना। हम जो भी करते हैं उसका प्रदर्शन कर ढोल पीटना और उस द्वारा समाज में मान्यता पाने की इच्छा करना, यह अहंकार अतएव क्षूद्र-वृत्ति है जो कि अध्यात्म विषय में साधक को अधःपतन की ओर ले जाती है। सब कुछ करना, सर्व शक्तिमान बनना,

परन्तु उसका हीन प्रदर्शन नहीं करना चाहिए जिससे कि समाज का आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इस प्रकार का अहंगढ़ रखने वाला समाज अधिक समय नहीं टिक सकता। ब्राह्मण ज्ञान-विज्ञान मिलाकर आत्मज्ञान की ओर अवश्य अग्रसर रहे परन्तु उसका अभिनिवेश अथवा अहंकार वह न करे अन्यथा वह ब्राह्मण और प्रकाण्ड पण्डित रहकर भी रावण जैसा राक्षस और शूद्र बनेगा। क्षत्रीय बलोपासना कर साम्राज्य विस्तार एवं देश-रक्षा अवश्य करें परन्तु उनके बल का उपसर्ग यदि समाज के अन्यान्य लोगों को होता है तो वे क्षत्रीय नहीं वरन् शूद्र हैं। क्षत्रीय समाज का पालनकर्ता होता है, न कि पीड़ा दाता। व्यासजी बताते हैं, 'परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीड़नम्।' इस प्रकार जो वर्तन न करे वह क्षत्रीय रहकर भी शूद्र है जो कि सब समय समाज की सेवा ही करे। ऐसे शूद्रों का धर्म केवल उच्च आचार-विचारवान व्यक्तियों की सेवा करना है। सेवा धर्म उनके जैसे अहंकारी स्वार्थी लोगों का परम धर्म है। वे इसके अलावा और कुछ तपस्या अथवा जपजाप्य यज्ञ हवन न करे। इसलिए शूद्र वृत्ति का धर्म केवल अन्य उच्च वृत्ति जनों की सेवा करना है।

शूद्र वर्ण अन्य वर्णों जैसा स्वतंत्र वर्ण नहीं है, ब्राह्मण, क्षत्रीय एवं वैश्य-वृत्ति वर्ण में से जो-जो व्यक्ति इस प्रकार आढ्यता, अहंकार एवं स्वार्थ दिखाता है वह सब अपने आप शूद्र-वृत्ति वाले बनते थे। इसलिए पूर्वकाल में केवल तीन ही वर्ण-वृत्तियां थीं ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य! इन वर्णों के शूद्र-वृत्ति वाले जन अपने आप शूद्र बनकर चतुर्थ शूद्र वर्ण की संख्या प्राचीन समय से बढ़ा रहे हैं। इस प्रकार देखा जाय तो शूद्र वर्ण में ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य सब वर्ण के लोग अपनी नीच-वृत्ति द्वारा सम्मिलित हुए हैं। 'आर्य बाहर से आये और उन्होंने एतद्देशीय जनों पर अत्याचार कर उन्हें अपना दास बनाया और अपनी सेवा इन दस्यु द्वारा करवाई इत्यादि विचार अनैतिहासिक एवं असत्य है। न आर्य बाहर से यहाँ आये और न उन्होंने इस देश के मूल आदिवासियों को गुलाम बनाकर उन्हें केवल अपनी सेवा चाकरी करने के लिए शूद्र बनाया। ब्राह्मण, क्षत्रीय वैश्य वर्ण से जो-जो आपकाजी, अहंकारी, दिखावटी और दूसरों को पीड़ा देने वाले दुष्ट जीव निकले उन सबों को उस समय के विचार-वानों ने चतुर्थ शूद्र वर्ण में निकाल बाहर कर दिया।

परन्तु तदन्तर काल में समाज का भला देखने वाले विचारवानों द्वारा एक अक्षम्य गलती हुई। जो-जो इस प्रकार त्रिवर्ण द्वारा शूद्र बने उन लोगों के

उद्धार की कोई अच्छी योजना उन्होंने नहीं बनाई। यह शूद्र समाज अन्य समाज से अलग रहने के कारण अछूत बना और साथ ही साथ असंस्कारित और दुर्लक्षित ! अन्यों की केवल सेवा करना इतना ही काम साधक का नहीं है कारण उस प्रकार के वर्ताव करने के लिए वह व्यक्ति प्रथम अपनी आध्यात्मिक उन्नति करे। इस प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति के लिए इस शूद्र समाज के लिए कोई अन्य सुविधाएँ नहीं दी गई। फलतः यह शूद्र समाज, जो कि अपने ही बंधुबांधव थे, अच्छे संस्कार और धार्मिक आचारों से वंचित रखे गये। सदियाँ बीत गई। यह शूद्र समाज संख्या में बढ़ता गया परन्तु वह सदियों तक अछूत, दुर्लक्षित एवं पराया रखा गया। आज हमें उन्हें पुनः अपना बनाना है। उनमें भी अच्छे आचार-विचार एवं बुद्धि संसार वाले लोग हैं। आखिर भगवान तो सब घटों में है। फिर उन अछूत शूद्रों को कहाँ तक दूर रखा जायेगा ? शूद्र अछूत भी अपने उत्तम आचार-विचार और गुण कर्म द्वारा ब्राह्मण बन सकते हैं। उनपर दया भाव नहीं वरन् उनकी सेवा करना यहीं आज हमारा परम धर्म है। इसीलिए महात्मा गांधीजी उन्हें भगवान के पुत्र याने 'हरिजन' कहते थे। परंतु दुर्भाग्यवश वह हरिजन शब्द भी कुछ लोगों को गाली जैसे लगता है। क्या वे फिर से ब्राह्मण बनना नहीं चाहेंगे ?

आज वृत्ति से समाज के अधिकाधिक लोग शूद्र बनते जा रहे हैं इसलिए हम सबों को पुनः उच्च आचार-विचार के ब्राह्मण बनना है। ब्राह्मण यह उच्च आचार-विचार की व्यक्तिगत उपाधि है न कि जाति विशेष ! हमारा भाव सबके लिए समान रहे, प्रेम हमारा धर्म रहे। भगवान इससे परे नहीं हैं। अपनी बुद्धि उत्क्रान्तवत और समभाव की रखना यही बुद्ध मत है जो कि भगवान सिद्धार्थ गौतम बुद्ध ने उस समय के वैदिक जनों को बताया था। बुद्धमत एक अलग सम्प्रदाय अथवा धर्म बनाना बुद्ध को ही मान्य नहीं है जो कि आज के नवबौद्ध बना रहे हैं। जिस पेड़ से लकड़ी निकालना उसे कुल्हाड़ी को लगाकर उसी पेड़ का सर्वनाश करना इस प्रकार का वर्तन आज के बहुतांश नवबौद्ध कर रहे हैं इसका वे शान्त चित्त से विचार करें, यह निवेदन है। जो जो भी सद्बुद्धि से व्यवहार करता है वह बौद्ध ही है फिर वह व्यक्ति भले ही किसी भी समाज का अथवा कथित धर्म का हो। समाज की भलाई के लिए समाज से अलग होकर उसका द्वेष करना अबौद्धों का काम है। गौतम बुद्ध संसार के श्रेष्ठ पुरुषों में से एक थे। उनके प्रेम का संदेश समाज में फैलाना हर किसी बुद्धिमान बौद्ध का काम है। इस महान कार्य के लिए अपने

को अपने मातृ-समाज से विलग कर एक नये विद्वेषी समाज का निर्माण करना ठीक नहीं है। जो-जो बुद्धिमान्, प्रेमी और समाज-तत्पर हैं वे सच्चा बौद्ध हैं, तथागत बुद्ध हैं ! वैदिक परम्परा याने ज्ञानमय आत्म पर बौद्धधर्म है।

आर्य अनार्यवाद और द्रविड

गत अध्यायों में हमने देखा है कि आर्य याने सब बाधाओं को चीरकर आगे बढ़ने वाला पराक्रमी व्यक्ति जो कि किसी भी वंश, पंथ, देश और मत का रह सकता है। आर्य नामक कभी न था और आज न अस्तित्व में है। मानव समाज में कई वंश हैं परन्तु उनमें से किसी एक को आर्य नाम देना आर्य संज्ञा का क्रूर उपहास और माखौल है। भारत में कई वंश और विचार के लोग बाहर से आये परंतु वे न आर्य वंश के थे और न एतदेशीय भारतीय अनार्य थे। भारत में पूर्व से ही अति उन्नत संस्कृति और सभ्यता थी जो कि द्रविदों की संसार की देन है। भारत में बाहर से आने वाले कई लोगों को और वंशियों को भारतीय सुसंस्कृत, सुविज्ञ और द्रविदों ने अपनी वैदिक उदार परम्परा को लेकर अपनाया और सुसभ्य सुसंस्कृत आर्य बनाया। आर्य शब्द वैदिक परम्परा की उच्च उपाधि है न कि वंश विशेष। अति दूर इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड में रहने वाले लोग स्वयं को आर्य कहते थे और आज भी वह अपभ्रंश भाषा द्वारा कहते हैं।

आर्य का अप उच्चारण जर्मनी में जाकर 'हर र' हुआ और इंग्लैण्ड में जाकर 'सर' बना। इरान के लोग आज भी अपने नाम के पीछे आर्य उपाधि लगाकर स्वयं को धन्य मानते हैं। भारत के दक्षिण प्रदेशों में जो कि गलती से स्वयं को अनार्य मानते हैं, आर्य शब्द का अपने उपनाम से उपयोग करते हुए दिखाई देते हैं जैसे कि अय्या, अय्यर, नय्यर, नायर, मुदल अय्यर, मुदलियार इत्यादि। इसी आर्य का अप उच्चारण उत्तर भारत में अपज्य हुआ जो कि सुलभता से 'जी' इस बहुमानार्थी शब्द द्वारा दिखाई देता है। हर नाम के पीछे उत्तर भारत में 'जी' यह उपदान लगाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि आर्य शब्द जाति वाचक अथवा वंश वाचक न होकर बहुमानार्थी है जो कि हर सुसभ्य देश में उपयोग में लाया जाता है। इसलिए पश्चिमात्यों ने भारत के इतिहास में आर्य-अनार्य वाद उत्पन्न कर जो झगड़े लगा दिये हैं वह प्रकार नीव रहित एवं मूर्ख सिद्धान्त है, यह ध्यान में आयेगा। हमारे भारतीय विद्वान वही मूर्ख सिद्धान्त न रटकर सच्चे इतिहास को अपनायें और आर्य अनार्य वाद का भूत पूरा गाड़ दें। प्रगतिशील व्यक्ति याने आर्य

है इस सिद्धान्त से सारे दक्षिण भारतीय सच्चे आर्य हैं जिनसे सारा संसार अनेक शास्त्र, विज्ञान, कला और सभ्यता सीखें। यही वे द्रुत गति से ज्ञानवान होने वाले 'द्रुविद' हैं जो कि वैदिक परम्परा को सारे संसार में फैलाने वाले प्राचीन प्रहरी हैं। इसी 'द्रुविद' का अप उच्चारण द्राविद अथवा द्राविड़ है।

द्रुविद :

वैदिक आर्य परम्परा और सभ्यता संसार के कोने-कोने में फैलाने वाले सच्चे प्रहरी यही दाक्षिणात्य द्रुविद हैं जिनको द्राविड़ अथवा द्रविड़ कहा जाता है। 'द्रु' माने अति शीघ्र द्रुत गति से और 'विद' याने ज्ञान प्राप्त करने वाले उच्च सभ्यता संस्कृति वाले ज्ञानी पराक्रमी द्रुविद लोग हैं। वैदिक परम्परा इन्हीं द्रुविदों की परम्परा है। आज का हिन्दू धर्म इन्हीं द्रुविदों की देन है। चातुर्वर्ण्य वेद ऋचाएँ, उपनिषद, अन्यन्य शास्त्र विज्ञान, कला, ज्योतिष शास्त्र, गणित इत्यादि मानवीय जीवन के लिए अति आवश्यक शास्त्र इन्हीं द्रुविदों का संसार पर ऋण है। संसार के कई देशवासी नंगे घूमते थे, कच्चा अन्न खाते थे, और उनका जीवन पशु जीवन से अधिक ऊँचा नहीं था। इनको इन द्रुविदों ने उनके देश में जाकर सभ्यता और संस्कृति प्रदान की। साधारणत: दो हजार वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड के नर-नारी पेड़ों की और पशुओं की खाल निकालकर उनके भद्दे कपड़े बनाकर जंगलों घूमते थे और पशु जैसा आहार-बिहार करते थे। इंग्लैण्ड में जाकर इन द्रुविदों ने उनको सभ्यता सिखाई और आज की सभ्यता में लाया जिसका स्मरण आज भी अंग्रेज लोग एक शब्द प्रयोग द्वारा करते हैं। अपने पूर्वज और बुजुर्गों को अंग्रेज आज भी गौरव से (Our Druvides) कहकर सम्मान करते हैं। (Druvides) याने वही द्रुविद है जो कि दक्षिण भारत के वासिंदे थे। स्वयं को अनार्य मानकर दक्षिण भारतीय लोग अपने आप पर अन्याय करते हैं। सारे भारत के द्रुविद रचनाकार हैं।

संसार की सभी भाषाओं में प्राचीन द्रुविद एवं संस्कृत शब्द आज भी पाये जाते हैं। इस पर कुछ पाश्चिमात्य इस प्रकार का तर्क निकालते हैं कि किसी एक समय यूरप के लियुआविया देश में एक आर्य सभ्यता थी जहाँ से वह आर्य सारे संसार में और विशेषत: यूरप एवं एशिया के पश्चिम देशों में याने भारत तक पहुँचे जिस कारण उन सब देशों में आज भी उनकी भाषाओं में संस्कृत के प्रचुर शब्द मिलते हैं। उनकी इस कल्पना को वे कोई ठोस आधार नहीं दे सकते हैं। और, आश्चर्य की बात यह है कि उनकी

इस कल्पना को बहुत-से भारतीय भी मान्यता देते हैं परन्तु उसके लिए आधार केवल कल्पना है। परन्तु दक्षिण अमरिका, स्पेन, पुर्तगाल, इटली, फ्रान्स, जर्मनी, नीदरलैण्ड के सब देश, पश्चिम एशिया के सब देश और बलुचिस्तान, अफगानिस्तान तक सब मुस्लिम देशों की भाषा में आज भी बहुन द्रुविद शब्द पाये जाते हैं। उसी प्रकार इन सब देशों के कई व्यक्तियों के मस्तिष्क कापाल की रचना दक्षिण भारत के द्रुविदों के मस्तिष्क कापाल जैसी दीखती है। क्या वे यह द्रुविद शब्द और मस्तिष्क कापाल-रचना उसी प्रकार उन देशों से दक्षिण भारत में आयी है? पाश्चिमात्य विद्वान उनके पाश्चिमात्य जीवन को उच्च दिखाने के लिए कुछ निराधार और मनमाने सिद्धान्त प्रस्थापित करते हैं जिन्हें कि कुछ भारतीय विद्वान भी मान्यता देकर स्वयं को धन्य मानते हैं। परन्तु इस प्रकार की वृत्ति नीरी पराधीन वृत्ति है जिसमें कोई सत्य नहीं है।

सत्य यह है कि दक्षिण भारत के सुसंस्कृत, सुविज्ञ, सुसभ्य, कलावान द्रुविद आर्य अपनी मूल द्रविद भाषा और नयी सुसंस्कृत संस्कृत भाषा लेकर सारे संसार से अपना व्यापारिक सांस्कृतिक संवंध अति प्राचीन काल से रखते थे जिस कारण इन सव देशों में द्रुविदों के उपनिवेश-क्षेत्र थे जहाँ से उन सब देशों की वोल-चाल की भाषा में द्रुविद एवं संस्कृत शब्द पाये जाते हैं और उनके देश के कई व्यक्तियों में द्रुविद शरीर-रचना मिलती है। दक्षिण अमेरिका के देश तो द्रुविदों के स्पष्टतया उपनिवेश-केन्द्र थे। जिस कारण दक्षिण अमेरिका के मूल जनों की भाषा और शरीर-रचना में दक्षिण भारतीय द्रुविद जा बसा है। दक्षिण यूरप और पश्चिम एशिया के सब देश प्राचीन द्रुविदों के उपनिवेश-केन्द्र थे। जिस कारण उन देशों में भी द्रुविद सभ्यता और भाषा शब्द एवं शरीर-रचना भी पाई जाती है। सर्व यूरोपीय भाषा की जननी प्राचीन कालीन भाषा मानी जाती है जो कि तमिल भाषा का अपत्य है। प्राचीन तमिल भाषा में 'लात' और 'तेनेगी' यह दो शब्द थे जिनका आशय जो हुई हो, गई और 'तेनेगी' याने भाषा इस प्रकार है। लात+तेनेगी यह दो उपशब्द मिलाकर 'लातिन' भाषा शब्द प्रयोग बना है जो कि सर्व यूरोपीय भाषा का मूल माना जाता है। परन्तु स्वयं लातिन भाषा संस्कृत और प्राचीत तमिल भाषा का अपत्य है।

आर्य संस्कृति और सभ्यता उसी प्रकार आर्य भाषा-भाषियों का यह दक्षिण भारतीय द्रुविद मूल है जिसके बारे में विचार करना विद्वान आवश्यक नहीं मानते। परन्तु अब इस प्रकार शास्त्रीय ढंग से इन सब बातों का विचार

करना आवश्यक है अन्यथा गलत सिद्धान्त और उस अनुसार गलत व्यवहार का व्यापार पूर्व जैसा आज भी चलता रहेगा जो कि मानवीय सभ्यता और एकता के लिए परम विघातक है। लेखक की यह धारणा है कि द्रुविद संसार केवल भारतीय ही नहीं अपितु सारे संसार का सांस्कृतिक एवं आवश्यक मानवीय जीवन का मूल स्त्रोत है जो कि आज भी अपनी प्राचीन गरिमा से सारे संसार के जीवन में पाया जाता है। आर्य अनार्यवाद अविचारी पश्चिमात्य विद्वानों का जानबूझकर प्रसारित किया हुआ सिद्धान्त है जो कि भारतीय जीवन को विच्छेद कर रहा है। इन गलत सिद्धान्तों का विरोध करना मानव-जाति के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। अति पूर्व के जावा, सुमात्रा, आस्ट्रेलिया, मलाया, सिंगापुर आदि देश तो साफ-साफ इन्हीं द्रुविदों के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उपनिवेश-केन्द्र थे, इसमें शंका करने का कोई कारण नहीं है। आज वे देश भले ही मुस्लिम अथवा अन्य पंथविशेष के बने हों परन्तु उनका मूल द्रुविद सभ्यता और उपनिवेश में है, यह विचार सत्य है जिसको सारी दुनिया जाने।

आर्य सभ्यता अनार्य माने गये द्रुविदों की सभ्यता है जिसका मूल आज भी संसार के लगभग सभी सभ्य देशों में पाया जाता है। द्रुविद यही सच्चे आर्य हैं जो कि वे स्वयं समझें और संसार को समझायें।

अश्वमेध यज्ञ

एकादश अध्याय

भगवान राम ने इस प्रकार शूद्र शम्बुक का वध किया। उधर शम्बुक मारा गया और इधर अयोध्या की राम-सभा में मृत पड़ा हुआ ब्राह्मण बालक सजीव होकर उठ खड़ा हुआ जिसका रहस्य अब हम जान गये हैं। परन्तु इतना सब करने पर भी राम के मन की उद्विग्नता हटी नहीं। और, कारण भी वैसा ही था। राम ने लोगों की और एक दृष्टि से स्वयं सीता की इच्छा से सीता को गर्भवती अवस्था में वन में भेजा था जिस कारण राम का मन सीता बिना सदा बेचैन रहा करता था। किसी ढंग से राम का उद्विग्न मन और बेचैनी कम न होती थी। अब क्या किया जाय? इस पर गुरु वसिष्ठ ने एक उपाय बताया और वह यह था कि राम अश्वमेध यज्ञ करें जिससे कि राम का मन शान्त हो जायेगा। बुद्धि का आश्रय लेकर यदि विचार किया जाय तो एक गरीब जानवर घोड़े का गला काटकर एक भगवान माने गये राम को किस प्रकार मनः स्वास्थ्य मिलने वाला था? क्या राम क्रूर स्वभाव वाले पशु-वृत्ति के थे? इसी प्रकार महाभारत में भी सब कौरवों का संहार होने के पश्चात राजा युधिष्ठिर यज्ञ करते हैं। क्या मतलब है कि राम और युधिष्ठिर जैसे आदर्श पुरुष भी पशुओं की हत्या में रस लेकर अपना मन शान्त करते हैं? इसलिए इस प्रकार के अश्वमेध यज्ञ का सच्चा आध्यात्मिक आशय कुछ भिन्न होना चाहिए जो कि हम देखें।

केवल कुम्भक अवस्था :

प्राणायाम प्रक्रिया सिद्ध होने पर साधक इस प्रकार विचित्र अनुभव पाता है कि उसका श्वास किसी समय बन्द पड़ जाता है परन्तु साधक का मानसिक सन्तुलन छोड़ साधक शरीर का कुछ भी नहीं बिगड़ता। इस प्रकार की अवस्था को केवल कुम्भक अवस्था अथवा रामायणकार और महाभारतकार के शब्दों में अश्व-अवस्था कहते हैं। साधक के शरीर की यह उच्चतम अवस्था है। यह प्रकृति की भी उच्चतम अवस्था है। परन्तु साधना में एक मर्यादा तक सह सकने वाला साधारण साधक इस प्रकार की उच्चावस्था अधिक समय नहीं सह सकता है। साधारण साधक शरीर की प्राकृतिक अवस्थाओं से सदा अभ्यस्त रहने के कारण ऐसे साधक की जीवात्मा इस प्रकार श्वास

बिना अथवा अश्व-अवस्था में अधिक समय नहीं रह सकती। ऐसे मर्यादाशील राम साधक इस प्रकार के अश्व-अवस्था में अपने मन का संतुलन और स्वास्थ्य बिगाड़ देते हैं और उस केवल कुम्भक अथवा अश्व-अवस्था को बन्द कर उससे बाहर आना चाहते हैं। याने उस अश्व-अवस्था का वे मेघ करना चाहते हैं। यही मर्यादा पुरुषोत्तम राम साधक के मनस्वास्थ्य के लिए अश्व-यज्ञ करना है न कि प्रत्यक्ष किसी अश्व का गला घोंटकर उसकी जान लेना है। सीता याने साधकरूप राम की साधना में उसके मर्यादित साधना-शक्ति के अनुसार पायी जाने वाली अनुभूतियाँ हैं। यह नित्य की साधारण अनुभूतियाँ याने सीता अब पुनः वन में जाकर याने अधिक तपस्या कर अपनी साधारण अवस्था अधिक उन्नत करना चाहती है। उस साधना-चेष्टा का फल यह रहेगा कि अब उस राम स्वरूप साधक की अनुभूतियाँ केवल मर्यादित आनन्द आदि में न रहकर उससे बढ़कर अति उच्च केवल कुम्भक-अवस्था अथवा अश्व-अवस्था रहेगी जो कि मर्यादाशील साधक राम नहीं सह सकता।

इस प्रकार की अश्व-अवस्था मर्यादा पुरुषोत्तम राम नहीं सह सकते इसलिए उनका मन घबड़ा जाता है और मन में असंतोष रहता है। इस प्रकार राम सीता अनुभूति-त्याग के कारण अपने मन का संतुलन खो बैठते हैं जिस लिए उस केवल कुम्भक-अवस्था का अथवा अश्व-अवस्था का ही मेघ करना याने नष्ट करना मर्यादा राम के लिए आवश्यक बन जाता है। इसलिए राम को अश्वमेध यज्ञ करने के लिए गुरू वसिष्ठ बताते हैं जो कि साधक की बुद्धि की इष्ट-अवस्था है। 'वस' और 'इष्ठ' यह दो उपशब्दों से वसिष्ठ शब्द बनता है। साधक में जो इष्ठ बुद्धि-शक्ति बसती है उसे रामायणकार वसिष्ठ गुरू कहते हैं जो कि हर साधक में मौजूद रहती है। साधना में आने वाले प्रत्यक्ष गहन अनुभव पाने के कारण लेखक इस प्रकार अश्वमेघ यज्ञ का रहस्य उद्‌घाटन कर सकता है अन्यथा अन्य पण्डितों जैसे अश्वमेध यज्ञ का आशय गरीब जानवर घोड़े का गला काटकर उस दुष्ट कर्म द्वारा राम जैसे आदर्श पुरुषोत्तम ने अपना मन स्वस्थ कर राम याने आत्मानन्द मानना इस प्रकार का आशय लेखक भी लगाता। परन्तु अश्वमेध का सच्चा आशय मनस्वास्थ्य के लिए अपनी अश्व-अवस्था का मेघ करना ही है इसमें लेखक को तनिक भी सन्देह नहीं है। यह विषय अति जटिल और प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित है इसलिए जिन श्रेष्ठ साधकों को इस प्रकार के गहन योगानुभव का दर्शन है वे ही लेखक के इस अनुभूतिपूर्ण लेख को समझ पायेंगे।

अन्य साधारण राम का अश्वमेध यज्ञ याने प्रत्यक्ष गरीब घोड़े का गला घोंटकर उस नृशंस कर्म द्वारा भगवान राम के मन को अपूर्व मनः शान्ति मिली इस प्रकार की अधार्मिक कल्पना कर सकते हैं।

अश्वमेध यज्ञ याने केवल कुम्भक अवस्था का त्याग कर शरीरभाव पर आता है जो कि मर्यादा पुरुषोत्तम साधक राम करते हैं और अपनी मनःशान्ति पाते हैं।

वेदों में अश्वमेध, गोमेध एवं अजामेध यज्ञ :

वेद ऋचाओं में अश्वमेध यज्ञ, गोमेध यज्ञ एवं अजामेध यज्ञ इन शब्द-रचनाओं के बिलकुल गलत आशय लगाकर मध्यकाल के हिन्दू पण्डितों ने और शास्त्रकारों ने अश्वमेध याने प्रत्यक्ष अश्व अथवा घोड़े को मारना, गोमेध याने प्रत्यक्ष गौ को मारना एवं अजामेघ याने प्रत्यक्ष बकरों को मारना इस प्रकार आशय निकाल कर अपने जिह्वा लौल्य को गलत ढंग से वेदों द्वारा धार्मिक आधार दिया। इस अधार्मिक एवं अनाध्यात्मिक बातों का गौतम बुद्ध ने कड़ा विरोध किया था जो कि वेदों के आधार पर ही था। वेदों में अश्वमेध यज्ञ, गोमेध यज्ञ एवं अजामेध यज्ञों के बारे में क्या लिखा है, वह देखेंगे।

अश्वमेध यज्ञ :

वेदों में अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख निम्न प्रकार है:—

यमश्विना ददथुः श्वेतम् अश्वम् अश्वाध्याय शश्वदित्स्वति।
तद्वादात्नं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्थः ॥

ऋग्वेद १८।१२१।६॥

घोड़ा इस आशय के लिए यदि अश्व शब्द माना जाय तो उसी ऋचा में पुनः घोड़ा इस आशय के लिए वाजी शब्द क्यों आया? इतना ही नहीं वरन् अश्वमेध याने प्रत्यक्ष गरीव जानवर घोड़ा याने वाजी को काटना, यह अर्थ नहीं मानना चाहिए। इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख ऊपर निर्दिष्ट ऋचा में आया है। अश्वमेध यज्ञ के लिए 'श्वेतं अश्वं' आवश्यक है जिसका मेध कर साधक समस्त पृथ्वी पर अपनी कीर्ति फैला सकता है। यह श्वेत अश्व याने प्राणायाम् द्वारा प्राप्त केवल कुम्भक अवस्था है। प्राणायाम का अभ्यास करने के कारण साधक को प्रथम कई प्रकार के वर्ण साधना करते समय भ्रमध्य में दीख पड़ते हैं। प्रथम लाल, पीले, हरे, नीले वर्णवर्तुल दिखाई देते हैं। सर्व प्रथम लाल

वर्ण दीखेगा जो कि सामान्य अवस्था का दर्शक है। साधक की अवस्था उच्च से उच्चतर होने के कारण वह वर्णवर्तुल क्रमागत पीत, हरित, नीला बनेगा। अधिक अभ्यास के पश्चात वह घने हरित नील वर्ण अधिकाधिक फीके बनकर फिर सारा विश्व एक प्रकार के दिव्य नीलिमा में बरतते हुए दिखाई देता है। द्रष्टा और दृश्य नील वर्ण के बन जाते हैं जिसका सुन्दर वर्णन योगेश्वर ज्ञानेश्वर महाराज ने अपने अनेक अभंगों द्वारा किया है। इस नील-अवस्था के बाद फिर श्वेत याने चन्द्रमा के प्रकाश जैसी वर्ण-अवस्था आती है जो कि सर्वश्रेष्ठ है।

श्वेतम् अश्वम् :

इस दिव्य श्वेत वर्ण-अवस्था में साधक का श्वास अपने आप बन्द हो जाता है जिसे वेद अश्व-अवस्था कहते हैं। इसीलिए वेद इस अति उच्च अवस्था का अपनी शूत्रमय भाषा में वर्णन है, 'भमश्विना ददथुः श्वेतम् अश्वम्'। इस श्वेतम् अश्वम्-अवस्था का योगी परम योगी, महावीर माना जाता है। सारे संसार की मूल प्राकृतिक अवस्था यही है जिससे सारा दृश्यमान संसार निर्माण होता है। जैन सम्प्रदाय इस अति उच्च अवस्था वाले परम योगी को 'श्वेताम्बर' कहते हैं। परंतु दुर्भाग्यवश ज्ञानवान् जैनी भी इस श्रेष्ठ अवस्था का योग-रहस्य न जानकर केवल अपने साम्प्रदायिकों को श्वेत याने सफेद वस्त्र पहनाकर धन्यता मानते हैं। जिस श्रेष्ठ साधक के चारों ओर अन्तर्बाह्य श्वेत वर्ण दिखाई देता है याने जो सर्वत्र श्वेत वस्त्र पहना है, जो स्वयं श्वेताम्बर है जिसे जैन साम्प्रदाय में श्वेताम्बर जैन याने ज्ञानी कहते हैं। यही सम्प्रदाय अन्य प्रकार से जैनों में दिगम्बर नाम से जाना जाता है जिसने यह श्वेताम्बर-अवस्था प्राप्त की है और जिसे अब किसी वस्त्र आवरण की आवश्यकता नहीं है वह सच्चा दिगम्बर माना जाता है। इसी दिगम्बर और श्वेताम्बर अवस्था का वर्णन हिन्दू परम्परा में शिवजी के रूप में किया है। शिवजी श्वेत याने शुभ्र वर्ण के दिखाये हैं। उनका सब परिवार याने पत्नी गौरी पृष्ठभूमि का हिमालय, नन्दी, चन्द्रमा और शंख सब शुभ्र याने श्वेत वर्ण के बताये हैं। परन्तु शिवजी बिना वस्त्र के याने दिगम्बर ही हैं। दत्तात्रय देवता भी शुभ्र वर्ण को और दिगम्बर बताये हैं।

इस सब कल्पनाओं का मूल ऊपर निर्दिष्ट वैदिक ऋचा को वर्णित 'श्वेतम् अश्वम्' अवस्था है जिसका सम्बन्ध केवल कुम्भक की उच्च अवस्था से है। इसी केवल कुम्भक याने श्वास रहित अवस्था का गलत आशय निकालकर मध्यकाल के अश्वमेध यज्ञ में अश्व को पकड़कर उसका मुंह और नथुनें एकदम

बन्द कर उसे मुक्कों से मार-मार कर उसकी जान लेते थे और फिर उसके मांसखंड पकाकर खाते थे। मूल 'श्वेतम् अश्वम्' अवस्था की यह कितनी क्रूर विडम्बना है, यह विचारवान् व्यक्ति सोच सकते हैं। उसी प्रकार अजामेध अथवा गोमेध यज्ञों में भी अजा अथवा गौओं का मुख और नथुनें कपड़ों से बाँधकर याने उनका श्वास बन्द कर उन्हें मुक्कों से मारा जाता था और उनका मांस-भक्षण किया जाता था। यही गलत वैदिक रीति आज भी ईसाई अथवा मुसलमान पंथ में चली आई है। परमेश्वर के प्रसाद के लिए वे शुभ्र गौ अथवा बकरा अधिक पसन्द करते हैं परन्तु उनको मुक्कों से न मारकर शस्त्र से गला काटकर मारते हैं। ईसाई और मुस्लिम में गोमांस का इसी से धार्मिक प्रयोग है।

'श्वेतम् अश्वम्' का मध्यकालीन इरानी सम्प्रदाय याने सूफी सम्प्रदाय है जिसमें सूफी शुभ्र याने सुफेद वस्त्र पहनता है और भगवान को अपना प्रेयस प्रेयसी मानकर कुछ साधना करता है। शुभ्र का अपउच्चारण 'सूफ' है जिस साम्प्रदाय के लोग सूफी माने जाते हैं। ईसाई और मुस्लिम सम्प्रदायों के धर्म प्रचारक इसी शुभ्र वर्ण के कपड़े पहनते हैं जो कि श्वेतम् की कल्पना है। इससे यह सिद्ध है कि एक समय सारा संसार वैदिक 'श्वेतम् अश्वम्' की परम्परा से उन्नत था परंतु आज उस वैदिक परम्परा की भ्रष्ट नकल अन्य प्रकार से कर उन सम्प्रदायों के अनुचर प्रत्यक्ष वैदिक परम्परा के खिलाफ काम कर उसमें अपना धर्म मानते हैं। यह उसी प्रकार है जैसे कि जिस माता से जन्म लेना उसी से दुर्व्यवहार कर उसको नष्ट करने की इच्छा करना। सर्व धर्म सम्प्रदायों का मूल है वैदिक परम्परा और ज्ञान सूत्र जो कि वेद-ऋचाओं में लिखा है। इस प्रकार के अवैदिक सतों का विरोध बुद्धमत ने किया था जिसका संचार समस्त वैदिक संसार में था। इससे भी यह सिद्ध है कि एक समय सारा संसार गलत था योग्य वैदिक मतों से प्रभावित था जिसको ठीक रास्ते पर लाने के लिए भगवान गौतम बुद्ध अपने सारे जीवन तक यत्नशील थे। वैदिक परम्परा की गलतियाँ वैदिक संसार के लोगों के ध्यान में आती गई जिस अनुपात में बौद्धमत का प्रचार भी बढ़ता गया। इसलिए बौद्धमत याने वैदिक जीवन के सुधार का प्रामाणिक प्रयत्न है।

अपने मत का प्रचार करने के लिए बौद्धों ने स्वर्गवाद और आत्मवाद पर विशेष जोर न दिया कारण इस प्रकार के हिंसात्मक यज्ञों द्वारा हिंसक स्वर्ग में जाता है। इस प्रकार की झूठी कल्पना तत्कालीन वैदिक शास्त्री पण्डितों ने रूढ की थी। कल्पित स्वर्ग के लिए इह जगत में हिंसात्मक तर्क

को स्थापित कर वे लोग सीधे स्वर्ग में जाना चाहते थे। बुद्ध इस काल्पनिक स्वर्ग का विरोध किया और आत्मा का भी कारण आत्मज्ञान के नाम पर पशु हिंसा, दंभ, श्रेष्ठ कनिष्ठता की भावना और अर्थहीन कर्मकाण्डता बढ़ रही थी। गौतम बुद्ध ने उस निष्क्रिय आत्मा को निकालकर समभाव प्रेम और समाज-प्रवणता सिखाई जिसे समझना सरल था। आत्मानात्म वाद एक कठिन कल्पना अथवा अनुभूति है। परन्तु परस्पर प्रेम और कर्तव्य परायण का प्रभाव जनों पर अधिक पड़ा जिस कारण बुद्ध पंथ सारे विश्व में बढ़ा। परन्तु उसमें भी भोग-प्रवृत्ति, ढोंग और लोभ का प्रादुर्भाव होने पर बुद्ध धर्म भी सारे संसार से नष्ट हुआ। नव पंथ प्रचारक इन बातों पर ध्यान दें अन्यथा उनकी भी हालत पुराने बुद्ध पंथ जैसी हो सकती है।

गोमेध यज्ञ :

आज गोमेध यज्ञ वैदिक परम्परा प्राप्त ईसाई महम्मदी सम्प्रदायों में गलत ढंग से चालू है। प्राचीन काल में भी आज जैसा गोमेध यज्ञ भारत में भी चालू रहा होगा, यह मानने के लिए स्थान है। एक श्लोक है जिसमें गोमेध का उल्लेख आया है। श्लोक इस प्रकार है जिसका सही आशय आज भी नहीं जाना जाता है।

अग्नि होत्र गवालंभं संन्यासं पल पैतृकम्।
देवशच्च सुतोत्पत्ति कलौ पंच विवर्जयेत्॥

इससे प्राचीन समय में गवालंवन याने गोमेध यज्ञ हुआ करता था, यह दीखता है। गोमेध का गलत आशय मानकर भारत में भी अन्य देश जैसी गोहत्या चालू रही होगी, यह ऊपर निर्दिष्ट श्लोक द्वारा दिखाई देता है। गवालंबन याने गोमेध अथवा गोहत्या है। वैदिक परम्परा में गौ का आशय केवल गौ यह जानवर ही न होकर अपनी इन्द्रियाँ भी हैं। इसलिए वैदिक समय में भारत में गोमेध याने इन्द्रिय-दमन यह शास्त्रीय कल्पना अवश्यमेव होनी चाहिए जिसका अन्य गलत आशय निकाल कर जैनों में अपनी इन्द्रिया इतनी दमन करे कि उसकी क्रिया-शक्ति ही नष्ट हो, इस प्रकार की गलत परम्परा शुरू की गयी थी। ईसाई और मुसलमानों ने गौ याने गाय मानकर उसका मांस खाना शुरू किया तो जैनों ने गौ याने सच्चे भाव से इन्द्रियाँ मानकर उनकी हत्या याने भयानक ताड़न शुरू किया जैसे कि हाथ-पांव निष्क्रिय करना, मौन रखकर मुख को दुर्बल करना, अनशन कर इन्द्रियाँ सुखाना और केशलुञ्चन आदि कर आत्म-ताड़न करना। मूल वैदिक परम्परा की

गलत गोमेध की धारणाएँ ईसाई, मुस्लिम और जैन पंथों में किस प्रकार होती गयी, यह आज के उपस्थित गोहत्या और इन्द्रियों को ताड़न करना इन कल्पनाओं के द्वारा हम देख सकते हैं।

वैदिक गोमेध का मूल्य आशय है गो.संयम याने इन्द्रियों पर संयम रखना। गोलालन भी नहीं, गो ताड़न भी नहीं परन्तु आत्मोन्नति के लिए गोपालन कर गोवर्धन करना, यह वैदिक परम्परा का श्रेष्ठतत्व संसार को अपने भगवान गोपाल कृष्ण इस आदर्श द्वारा भगवान व्यासजी ने दिया है। गोपाल कृष्ण साधक ही गोवर्धन कर अपने गोकुल याने शरीर को, जीवित को बचा सकता है और वर्धित कर सकता है। भगवान गोपाल कृष्ण और गोवर्धन कल्पना आध्यात्मिक आदर्श है न कि ऐतिहासिक सत्य है। शरीर का याने इन्द्रियों का लालन कर याने गो माँस-भक्षण कर आत्मज्ञान प्राप्त न होगा, गो ताड़न याने इन्द्रियों का ताड़न कर आत्मज्ञान न मिलेगा, आत्मज्ञान प्राप्त होगा इन्द्रियों की नियत शक्ति वर्धन कर याने बढ़ाकर उस द्वारा सुयोग्य ज्ञान-विज्ञान पाने से। इसी आध्यात्मिक आदर्श को भगवान वेद व्यास योगेश्वर गोपाल कृष्ण कहते हैं जो कि अपने गोकुल याने शरीर की गुप्त शक्तियाँ याने गोप-गोपियों की उस शक्तिवर्धन गोवर्धन के नीचे रख इन्द्र याने इन्द्रियों की अहंभाव अवस्था से रक्षा करना है।

योगेश्वर गोपाल कृष्ण: एक आध्यात्मिक आदर्श :

इन सब गलत धारणाओं से ऊपर जाने के लिए भगवान वेद व्यासजी ने संसार के सन्मुख एक आदर्श रखा जिसका नाम उन्होंने योगेश्वर गोपाल कृष्ण रखा है। इन्द्रियों का स्वामी गोपाल कृष्ण अपनी इन्द्रियों का याने गो का सुयोग्य पालन कर उनकी स्वाभाविक शक्तियाँ बढ़ाना है इसलिए उसे गोपाल कृष्ण कहा है जो कि इन्द्रिय रूप शक्तियों का वर्धन करने से याने गोवर्धन कर उस महान शक्ति-संचय के नीचे उनका इन्द्रियों का अहंभाव रूप अस्तित्व याने इन्द्र के वर्षा-ताड़न से अपनी गोपनीय शक्तियाँ याने गोप-गोपियों की रक्षा करना है। उस आदर्श को प्रथम योगेश्वर बनना पड़ता है जिस कारण वह अपने में विश्व की अनन्त शक्तियाँ कर्षण कर सकता है। इसी कर्षण-शक्ति द्वारा जीवात्मा को कृष्ण कहा गया है। कृष्ण शब्द की परिभाषा इस प्रकार है। 'कर्षयति इति कृष्ण:' याने जो विश्व की सर्व शक्तियाँ अपने में कर्षण करता है उसे कृष्ण कहा जाता है। यह गोपाल कृष्ण सदा बासुरी बजाता है और उस द्वारा गौओं को और

गोप-गोपियों को आत्मरूप आनन्द में बहलाता है। यह कौन-सी बाँसुरी है ? यह बाँसुरी है अनाहत नाद की जो कि उच्च योगेश्वर अपनी उच्च अवस्था में सुन सकता है। इसलिए भगवान गोपाल कृष्ण के कर-कमलों में सदा अनाहत नाद उत्पन्न करने वाली बाँसुरी दिखाते हैं। अनाहत नाद कई प्रकार के होते हैं उनमें से बाँसुरी का नाद भी एक अनाहत नाद है। इसी अनाहत नाद द्वारा भगवान गोपाल कृष्ण अपनी गौ और गोप-गोपियों का मनोरंजन करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण पर सब इन्द्रियाँ (गौ, गोप, गोपी) मोहित रहती हैं।

भगवान राम इस प्रकार गोपाल कृष्ण बन अश्वमेध यज्ञ करते हैं। परन्तु वेदों में जो 'श्वेतम् अश्वम्' अश्वमेध के लिए बताया है वह 'श्वेतम् अश्वम्' भगवान राम को अश्वमेध में उपयोग करने के लिए गुरु वसिष्ठ नहीं बताते हैं। वे बताते हैं 'कृष्णम् अश्वम्' याने काला अश्व। रामायण में लिखा है—

तत् सर्वमखिलेनाशु प्रस्थाप्य भरताग्रजः।
हयं लक्षण सम्पन्नं कृष्ण सारं मुमोच ह॥ ७।९२।१॥

साधना में श्वेत वर्ण अनुभव करना उतना कष्ट कारक नहीं रहता जितना कि कृष्ण वर्ण अनुभव। कृष्ण वर्ण अनुभव याने शून्यावस्था है जो कि श्वेतम् अश्वम् याने केवल कुम्भक-अवस्था से भी बहुत उच्च और कष्ट साध्य है। रामायणकार राम को इस अत्युच्च 'कृष्ण अश्व' अवस्था से बचाना चाहते हैं इसीलिए वे राम द्वारा कृष्ण अश्व-अवस्था का मेध याने बन्द करना चाहते हैं। यह कृष्ण-अवस्था साधकों के लिए सहना बहुत कठिन है।

भगवान राम इस प्रकार अपने में स्थित कृष्णसार हरिण के अनुसार काले अश्व को मुक्त कर सैर-संचार करने लगते हैं। अश्वावस्था याने श्वास-विरहीन अवस्था को प्रथम मुक्त करना पड़ेगा याने उस अश्व को मुक्त करना पड़ेगा। उस अश्व को जो योगी पकड़ेगा वही भगवान राम जैसे उच्च साधक है परन्तु वह साधक राम के अन्दर की ही उच्चावस्था है जिसे रामायणकार लव और कुश कहते हैं। लव याने क्षण में और कुश याने साधना का चरम लक्ष्य समाधि-अवस्था है। वनवास में गई हुई सीता को वाल्मीकि आश्रम में दो जुड़वे पुत्र होते हैं जिन्हें रामायणकार लव-कुश कहते हैं। राम प्रेरित अश्वमेध यज्ञ में यह दो जुड़वे आते हैं। वाल्मीकि उन्हें रामायण गाने के लिए भेजते हैं। परन्तु न राम जानते हैं कि लव-कुश उनके पुत्र हैं और न लव-कुश जानते हैं कि उनके पिता राम हैं। लवकुश अपने आकर्षित कण्ठ से रामायण कहते हुए अयोध्या में घूमते हैं। वे स्वयं आनन्दविभोर बनते हैं और श्रवण करने वालों को भी बनाते हैं।

स शिष्याव ब्रवीद धृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा ॥ ७।९४।५ ॥

सर्व अयोध्यावासियों को इन बालकों ने अपने रामायण गायन द्वारा पागल बना दिया था। सब अयोध्यावासी इन दो बालकों के पीछे-पीछे घूमते थे। आखिर यह वार्ता भगवान राम के कान पर आती है और उन्हें राम रामायण गाने के लिए अपनी सभा में बुलाते हैं। रामायण सुनकर राम भी विभोर होकर स्वयं को भूल जाते हैं।। वह रामायण उन्हीं की जीवनी थी। यह रामायण किसने उन्हें सिखाया, यह राम उन्हें पूछते हैं। उत्तर था, 'वाल्मीकि ने।' फिर पूछने पर उत्तर दिया जाता है कि रामायण की श्लोक संख्या चौबीस सहस्त्र है और उसके काण्ड केवल छह हैं। परन्तु आज की प्रचलित रामायण में सात काण्ड हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मूल वाल्मीकि रामायण के काण्ड छह हैं न कि सात।

सातवा काण्ड और किसी ने लिखकर मूल रामायण में घुसेड़ दिया है। देखिये

वाल्मीकिः भगवान कर्ता संप्राप्तो यज्ञ संविधम् ।
संनिबद्ध हि श्लोकानां चतुर्विशत् सहस्त्रकम् ।
काण्डानि षट्कृतानि ह सोत्तराणि महात्मना ॥ ७।९४।२५।२६।२७ ॥

यहाँ पर वाल्मीकि पुनः अपने को भगवान कहते हैं और यज्ञतपस्या कर उन्होंने यह षट् काण्डों का और चौवीस हजार श्लोकों की रामायण वनायी, यह वताते हैं। इससे स्पष्ट है कि रामायण कोई इतिहास नहीं वरन् तपस्यापूत गहन अनुभूतियां हैं।

वहुत दिन तक भगवान राम इस प्रकार उन लवकुश बालकों द्वारा रामायण सुनते हैं।

रामो बहुन्यहान्येव तदगीतं परमंशुभम् ।
शुश्राव मुनिभिः सार्धं पार्थि वैः सह वानरै ॥ ७।९५।१ ॥

उन बालकों द्वारा राम जानते हैं कि उनकी माता सीता है ।।७।९५।२।।

तस्मिन्गीते तु विज्ञाय सीता पुत्रौ कुशीलवौ ।
तस्याः परिषदो मध्ये रामोवचनम ब्रवीत् ॥

सभा में बैठे हुए सब भद्रजनों की सलाह लेकर राम कुश-लव को सीता को उस सभा में ले आने के लिए कहते हैं और वताते हैं कि सीता पापरहित होगी तो स्वयं वाल्मीकि सीता को लेकर सभा आयें। राम सीता का पुनः स्वीकार अवश्य करेंगे जब कि स्वयं सीता सभा में सिद्ध करती है कि वह निष्पाप और निर्दोष है। बच्चे वाल्मीकिजी को राम का सन्देह बताते हैं

और वाल्मीकिजी सीता को लेकर राम-सभा में आते हैं। सर्वसमक्ष राम सीता को बताते हैं कि सीता यह सिद्ध करे कि वह निष्पाप और निर्दोष है। स्वयं वाल्मीकि सीता के बारे में विश्वास देते हुए कहते हैं—

इमौ तु जानकी पुत्रावुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ७।९६।१८ ॥

'मैं सत्य कहता हूँ कि लवकुश राम-सीता के जाये जुड़वे पुत्र हैं जिनका जातक यम ने किया है।' परन्तु वाल्मीकि वचन को कौन सुनता है ?

किसी के अपमान की कोई मर्यादा होती है। अब अपना अपमान सीता नहीं सह सकती थी। वह जनसमुदाय के सामने आकर कहती है—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ ७।९७।१५ ॥

मैं रघुनाथ के सिवा अन्य किसी पुरुष का मन से भी चिन्तन नहीं करती, यदि यह कथन सत्य है तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दे।

पृथ्वी माता ने विवर कर दिया और सर्व लोगों के देखते-देखते सीता पृथ्वी के अन्दर रसातल में गायब हो गई। प्रकृति-पाई हुई चीज याने शरीर पुनः पृथ्वी तत्व में समा गया। सीता अपने मायके गई। सारे पौरजन खुली आँखों सीता का मिट्टी में मिलना देख रहे थे और राम भी ! सारे जीवन में सिवाय दुःख और परित्याग के सीता को कोई सुख न था। पति राम एक परायी बुद्धि का मर्यादा पुरुषोत्तम था जिसके लिए सीता ने सब कुछ निछावर कर दिया था। 'तुमरे कारण सब सुख त्यागा' मीराबाई कहती है।

'करुणा करो राम मोरी' सीता का दुःखसागर उसके निराधार जीवन के साथ चला गया। सचमुच सीता पर सारा जीवन अन्याय हुआ था राम द्वारा और सब लोगों द्वारा ! सीता का दुःखसागर अपनी कक्षा बढ़ाता गया।

रसातलं प्रविष्टायां वैदेह्यां सर्वं वानराः।
चक्रुशुः साधुसाध्वीति मुनयो राम संन्निधौ ॥७।९८।१॥

उपस्थित सब ऋषिमुनि और वानर सीता का जयघोष करते हैं और सीता को साधु-साध्वी कहते हैं।

अब राम से रहा नहीं जाता। राम का भी अन्तकाल समीप आता है। शरीर के सिवाय जीवात्मा कैसे रह सकती है ? सीता बिना राम कैसे रह सकते हैं। 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' राम की बुद्धि भी अब विपरीत बन जाती है। राम विवेक रूप लक्ष्मण को उनका त्याग करने को कहते हैं। लक्ष्मण की आँखों में आँसू आये। जिस राम के लिए लक्ष्मण ने नींद तक हराम कर

सारा जीवन व्यतीत किया वह बन्धु राम अब लक्ष्मण को दूर हटने के लिए कहते हैं। लक्ष्मण सीधे सरयू के किनारे जाकर हाथों में जल लेते हैं और अपनी प्राणवायु का निरोध कर लक्ष्मण सरयू में समा जाते हैं। सीतारूप से साधक राम का वृत्ति-पिंड पृथ्वी में समा गया था अब साधक राम का भ्राता विवेकरूप लक्ष्मण भी निर्वाण गति को प्राप्त करता है। अब रहे स्वयं राम ! राम का भी मन अब उब जाता है और भगवान राम निर्वाण का सोचते हैं। यह बात सर्व अयोध्या-वासियों को मालूम हुई और अपने प्रिय राम के साथ सारी अयोध्या नगरी सरयू की तरफ सरकने लगी।

राम का निर्वाण समय :

आगे राम और पीछे सर्व अयोध्या नगरी के पुरवासी सरयू की तरफ जा रहे थे आत्मसमर्पण करने। क्या सारा शहर इतनी-सी छोटी सरयू नदी में डूब मरेगा ? हाँ वैसा ही हुआ। राम के साथ सर्व अयोध्या नगरी सरयू में आत्मविसर्जन करने लगी। शरीर का स्वामी आत्मा अब परमात्मरूप सरयू में समर्पण करती है। अयोध्या याने शान्त-वृत्ति और अयोध्या नगरी के पौरजन याने साधक का पिंड अथवा जड़शरीर। जड़शरीर और आत्मा अब रामरूप से निर्वाणरूप सरयू में प्रवेश करती है। रामजीवन समाप्त हुआ। बाल्यकाल जो भी अच्छा गया था सो तो ठीक गया परन्तु युवावस्था से भगवान राम पर संकट और दुःखों की जो परम्परा आती है उसका संसार में जोड़ नहीं है। पिता का वचन असत्य न हो इसलिए वनवास स्वीकारने वाला, भाई की भलाई के राज्य-त्याग करने वाला आदर्श भ्राता, परिवार पर प्रेम रखकर भी समय आने पर उसपर समान शान्तभाव रखने वाला प्रेमी पति और कार्य समाप्त होते ही स्वयं को सरयू में शान्त करने वाला परम योगी राम सरयू की तरफ सारी अयोध्या को लेकर आत्मसमर्पण करता है और इस प्रकार आदर्श राम-जीवन समाप्त होता है।

रामजीवन मानव-जाति के स्मरण में सदा रहेगा और उसके साथ रामायण ग्रन्थ भी। जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिभाव से रामचरित्र सुनेगा अथवा पढ़ेगा वह निष्पाप बनकर अमर जीवन प्राप्त करेगा।

यः पठेच्छृणुयान्नित्यं चरितं राघवस्य ह।
भक्तया निष्कल्मषो भूत्वा दीर्घमायुर वाप्नुयात् ॥७।१११।१९॥

॥ इति शम् ॥

वैदिक विश्व प्रकाशन

योगी मनोहर कृत

(अ) प्रकाशित पुस्तकें :—

1. World Ideal Bhagawan Gopal Krishna (अंग्रेज़ी)
२. विश्व आदर्श योगेश्वर गोपाल (हिन्दी)
३. मृत्यु के बाद : जन्म के पूर्व (महाभारत रहस्य) (हिन्दी)
४. जन्मापूर्वी व मृत्युनन्तर (मराठी)
५. वैदिक विश्व (प्रचार पुस्तिका) (हिन्दी)
६. साधना एवं साधक (हिन्दी)
७. साधना एवं साधक (मराठी)
८. रामायण रहस्य (मराठी)
९. रामायण रहस्य (हिन्दी)
१०. दिव्य अनुभूति (मराठी)
११. वस्त्र हरण (हिन्दी)
१२. कुण्डलिनी Kundlini (मराठी-अंग्रेजी)

(आ) आगामी प्रकाशन :—

१३. सर्वधर्म समन्वय (हिन्दी-अंग्रेजी)
१४. वैदिक सणांतील योग रहस्य (मराठी)
१५. पंच कन्या (मराठी)
१६. पंच कन्या (हिन्दी)
१७. संगीत ते समाधि (मराठी)
१८. संगीत से समाधि (हिन्दी)
१९. बृहत रामायण (हिन्दी)
२०. बृहत महाभारत (हिन्दी)
२१. उपनिषद रहस्य (हिन्दी)
२२. भगवद् गीता (हिन्दी)

—: पता :—

योगी मनोहर

तुलसीबाग मार्ग, नागपुर—२